MAGP-08

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

समकालीन समस्याएं और गाँधी

MAGP-08

वर्धमान महावीर खुला विश्विद्यालय, कोटा

समकालीन समस्याएं और गाँधी

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विष्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरूण कुमार

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ.) एन. राधाकृष्णन

पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. (डॉ.) एम. एल. शर्मा

आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. (डॉ.) के.एस. भारती

विभागाध्यक्ष (गांधी एवं विचार)

टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नगापुर

पाठ लेखन

प्रो. (डॉ.) एम. विल्लियम भास्करन 1

डिपार्टमेंट फॉर गाँधीयन थोट एंड पीस साईंस

गाँधीग्राम रूरल युनिवर्सिटी

डिंडीगल, तमिलनाडु

डॉ. पंकज गुप्ता 2,3,6

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, कोटपुतली

जयपुर (राजस्थान)

प्रो. (डॉ.) रोनाल्डो जे. टरचक 4

(सह लेखक)

आचार्य (सेवानिवृत)

मेरीलेण्ड विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

प्रो. (डॉ.) नीतिन दास गुप्ता श शर्मा 4

(सह लेखक)

आचार्य, गुरूदास कॉलेज

कोलकत्ता

डॉ. रूपा मंगलानी 7

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय, कोटपुतली

जयपुर (राजस्थान)

प्रो. (डॉ.) प्रियंकर उपाध्याय 8

मालवीय शान्ति अनुसंधान केन्द्र

बनारस

प्रो. (डॉ.) वी. के. राय 10

आचार्य , राजनीति विज्ञान

इलाहबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच 11

पूर्व कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आचार्य , राजनीति विज्ञान

राजस्थान विश्वविद्यालय

जयपुर

डॉ. फूल सिंह गुर्जर 5, 9
व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, झालावाड
झालावाड (राजस्थान)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

प्रो. (डॉ.) एल आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

प्रो. (डॉ.) कर्ण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्याल
कोटा

उत्पादन : जनवरी 2016 ISBN No. : 978-81-8496-594-0

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि, कोटा के लिये कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

MAGP-08

वर्धमान महावीर खुला विश्विद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	शान्ति के लिए प्रयास और शान्ति सेना	1-15
इकाई - 2	गाँधी एवं आतंकवाद	16-25
इकाई - 3	गाँधी एवं साम्प्रदायिक समस्या	26-36
इकाई - 4	लैंगिक समानता की समस्या और गाँधी	37-52
इकाई - 5	अस्पृश्यता उन्मूलन और गाँधी	53-67
इकाई - 6	भ्रष्टाचार की समस्या और गाँधी	68-79
इकाई - 7	ग्रामीन अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और गाँधी	80-91
इकाई - 8	गाँधी एवं मानव सुरक्षा	92-109
इकाई - 9	शिक्षा व्यवस्था की पुनर्संरचना और गाँधी	110-124
इकाई - 10	गाँधी एवं भाषाई समस्या	125-137
इकाई - 11	गाँधी एवं आधुनिक सभ्यता	138-161

इकाई – 1

शान्ति के लिए प्रयास और शान्ति सेना

इकाई रूपरेखा

1.0 उद्देष्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शान्ति सेना की आवश्यकता

1.3 गाँधी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का विचार

1.3.1 शान्ति सेना का जन्म

1.3.2 शान्ति सेना की क्रिया विधि का सैद्धान्तिक आधार

1.3.2.1 सत्य की खोज

1.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम

1.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार

1.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य

1.3.2.5 आंतरिक शान्ति

1.3.3 शान्ति सैनिक की योग्यतायें

1.4 सारांश

1.5 अभ्यास प्रश्न

1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित के बारे में आपना समझ विकसित कर सकेंगे:-

- शान्ति सेना का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्य|
- शान्ति सेना का महत्व एवं आवश्यकता|
- गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का चिन्तन|

1.1 प्रस्तावना

इतिहासकारों की दृष्टि में बींसवी शताब्दी मानव इतिहास की सर्वाधिक खून खराबे वाली शताब्दी रही है| सम्पूर्ण विश्व में युद्ध एवं खूनी क्रांतियों के साथ साथ सुनियोजित हत्याओं एवं विनाश ने मानवता को अतुलनीय पीड़ा एवं कष्ट दिया है| इससे भी अधिक कष्ट दायक रहा, स्थानीय स्तर पर इस युद्ध एवं हिंसा को विवादों के हल के लिए स्वीकार्यता मिलना|

महात्मा गाँधी ने विवादों के हल के लिए इन संगठित एवं असंगठित हिंसक आंदोलनों के विपरीत, विवादों के हल के लिए अहिंसा का मार्ग न सिर्फ विकसित किया बल्कि उसे प्रयुक्त भी किया| उन्होंने कहा अहिंसा को प्रतिहिंसा से समाप्त नहीं किया जा सकता, इसके लिए एक मात्र मार्ग अहिंसा ही हो सकती है| उनके अनुसार मानवता के पास सबसे बड़ा हथियार अहिंसा ही है| मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन शब्दों में अभिव्यक्ति दी "वर्तमान समय में प्रश्न हिंसा और अहिंसा के मध्य चुनाव का नहीं है, अहिंसा और अस्तित्वविहीनता में से किसी एक का चुनाव करना पड़ेगा|"

गाँधी जी इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि हिंसक आंदोलन और युद्ध, प्रतिहिंसा या निष्क्रियता से समाप्त नहीं किए जा सकते| उनका विश्वास था कि जो कुछ तलवार से अर्जित किया गया है, वो एक दिन तलवार के कारण ही छिन भी जाएगा| इसीलिए उन्होंने शांति के लिए कार्य करना चाहा, जिसकी हर गतिविधि एवं रूप में अहिंसा है| उन्होने युद्ध की ही भाँति शांति को भी एक नियोजित रूप देना चाहा, इसके लिए एक संगठित, समर्पित, प्रशिक्षित एवं निशस्त्र स्वयंसेवकों के संगठन के बारे में सोचा जो अहिंसा के माध्यम से शांति स्थापना के लिए कार्य करे| गाँधी जी ने इस अहिंसक संगठन को शांति सेना का नाम दिया| उन्होंने इस विचार को 1938 में इस प्रकार समझाया "कुछ समय पहले मैने शांति सेना के संगठन का सुझाव दिया, जिसके सदस्य अपने जीवन को दंगो, मुख्य रूप से साम्प्रदायिक दंगो को सुलझाने में लगा दें| यह सशस्त्र बल एवं पुलिस, यहाँ तक कि सेना को भी प्रतिस्थापित कर सके|"

इक्कीसवीं सदी अपने प्रारम्भ में ही युद्ध की विभिषिका की साक्षी रही है| युद्ध सिर्फ उन्ही देशों को प्रभावित नहीं करता जो प्रत्यक्ष लड़ रहें हैं, बल्कि उन पर भी अपना विपरीत प्रभाव डालता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध से दूर है| दूसरे क्षेत्रों में अच्छा कार्य करते हुए भी, संयुक्त राष्ट्र युद्ध की विभिषिका को टालने में असफल रहा है| शांति स्थापना में आमुखीकरण एवं प्रशिक्षण के अभाव में शांति स्थापक संगठन असफल सिद्ध हुए| राष्ट्रीय स्तर पर भी अपराध एवं सामूहिक हिंसा के मामले दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, बाजूद इसके कि पुलिस एवं अन्य कानून स्थापित करनें वाले बलों एवं संस्थानों में वृद्धि हुई है| ये असफलताऐं इन संगठनों की पारम्परिक कार्य प्रणाली (हिंसा एवं बल प्रयोग) पर प्रश्न चिन्ह लगाती है| क्या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विवादों को हल करने एवं शांति स्थापना में यह कार्यप्रणाली प्रासंगिक है ? गाँधी जी ने शांति सेना के विचार को भारत में साम्प्रदायिक हिंसा एवं विश्वयुद्ध की संभावनाओं को समग्र रूप से हल करने के रूप में देखा|

उनके अप्रत्याशित निधन के कारण शांति सेना का विचार मूर्तरूप नहीं ले सका हालांकि उनका जीवन एवं मृत्यु शांति सेना के लिए आदर्श प्रारूप थे| गाँधी जी के बाद विनाबा भावे और जयनारायण ने उनके इस विचार को मूर्त रूप देने का प्रयास किया| भूदान आंदोलन के दौरान उन्होनें प्रत्येक गाँव में शांति सेना स्थापित करने का प्रयास किया|

1.2 शान्ति सेना की आवश्यकता

वर्तमान सभ्यता के विकास ने मानवता के सामने अनेकों बहुमुखी एवं बहुआयामी चुनौतियाँ प्रस्तुत की है| जबकि दूसरी ओर इनसे निपटने के तरीके हमेशा एकपक्षी ही रहें हैं, तथा जो तरीके अपनायें गये वो हिंसा उन्मुख थे| हिंसक तरीको के बढ़ते प्रयोग तथा उन पर निर्भरता ने समाज, राष्ट्र एवं वृहद् स्तर पर विश्व को भ्रष्ट किया है| यह कहा जाता है कि जब हिंसा सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हो तो यह मानव नैतिकता, बौद्धिकता, विज्ञान, श्रम, धन, संसाधन, समय, तकनीकी आदि को मानव सेवा से उन्मुख कर विनाशोन्मुख बना देती है|

वर्तमान विश्व, हिंसा एवं अस्तित्व के प्रश्न से संबधित चार प्रमुख मुद्दो पर जूझ रहा है, जिनको सुलझाने के लिए नई पहल एवं संस्थानों की आवश्यकता होगी| ये हैं-

1. विवादों से निपटने के तरीके
2. हिंसा
3. संरक्षा एवं सुरक्षा तथा
4. विकास का अभाव

1. विवादों से निपटने के तरीके

विवाद मूलतः बुरे या विनाशात्मक नहीं होते हैं| विवादों को सृजनात्मक या विनाशात्मक रूप दिया जा सकता है| यह निर्भर करता है कि विवादों को किस रूप में ग्रहण किया गया तथा किस प्रकार उनसे निपटा गया| यदि विवादों को ठीक प्रकार से नहीं निपटा जाये तो ये हिंसक बन जातें हैं तथा विनाश का कारण बनतें हैं और यदि ठीक प्रकार से निपटा जाए तो विकास ओर उन्नति को जन्म देतें है|

डॉ. केनिथ बोल्डिंग ने विवादों से निपटनें के तरीको को प्रक्रियात्मक एवं अप्रक्रियात्मक तरीको में वर्गीकष्त किया है| अप्रक्रियात्मक का अर्थ है, बिना किसी तय प्रक्रिया या मानदण्डों का अनुसरण किए विवादों से निपटना जिसमें मूलतः हिंसा एवं उत्पीड़न का सहारा लिया जाता है| हिंसक कार्यवाही की तीव्रता शासन की शक्ति पर निर्भर करती है, और इसकी परिणति शत्रुता एवं स्थायी विवाद के रूप में होती है|

जबकि प्रक्रियात्मक तरीके, वर्गीकृत एवं सुनियोजित प्रतिक्रिया होती है| जिसकी परिणति दोनों ही पक्षों के लिए सुखद होती है| इस प्रक्रिया में मूलतः अहिंसक तरीके अपनाए जातें है, इनमें शामिल है-

i. समझौता:- इसमें दोनों पक्षों को एक साथ बैठाकर आपसी बातचीत के माध्यम से एक ऐच्छिक समझौते के द्वारा विवाद का हल किया जाता है|

ii. न्यायिक प्रक्रिया:- राज्य की शक्तियों एवं कानून तंत्र के माध्यम सें अंतिम निर्णय पर | जाता है|

iii. बीच बचाव:- तृतीय पक्ष के माध्यम से आपसी समझौते के द्वारा विवाद का हल किया जाता है|

iv. मध्यस्थता:- पूर्व आपसी सहमति के आधार पर तृतीय पक्ष को मध्यस्थ बनाकर विवादों का हल किया जाता है|

v. मिश्रित प्रक्रिया:- वर्तमान समय में विवादों के हल के लिए एक से अधिक तरीकों को भी काम में लेतें हैं, ताकि शीघ्र एवं उचित हल मिल सके| इसी लिए इन्हें मिश्रित प्रक्रिया कहा जाता है|

विवाद की स्थिति में शीघ्र एवं प्रभावी हल प्राप्त करने के लिए लोगों को इन प्रक्रियाओं के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी| गाँधी जी ने शांति सैनिक को इन प्रक्रियाओं के लिए भली भाँति प्रशिक्षित करने की बात की थी|

2. हिंसा

विश्व समुदाय के समक्ष दूसरी सबसे बड़ी चुनौती हिंसा है| हिंसा इस समय जीवन के हर पहलू में व्याप्त है| घरेलु हिंसा से लेकर आतंकवाद एवं विश्व युद्ध तक हिंसा के विभिन्न रूप हैं| एक अध्ययन के अनुसार हिंसा प्रत्येक स्तर पर हर जगह व्याप्त है| जैसे कि :

- अमेरिका एवं रूस की तर्ज पर भारत और पाकिस्तान द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों ने पूरे विश्व को परमाणु हथियारों की दौड़ में शामिल कर दिया है| मिसाइल क्रांति ने भी अनेकों विकासशाील देशों की सुरक्षा चिंता को बढ़ाया है|

- एक ध्रुवीय विश्व में अमेरिका के नेतृत्व में, विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशाील देशों की सीमा अतिक्रमण ने पूरे विश्व को युद्ध के कगार पर खड़ा कर रखा है|

- किसी विशिष्ट आस्था या विचार से सम्बंधित व्यक्ति या संगठनों द्वारा सुनियोजित आंतकवाद ने विश्व के अनेको भागों को त्रस्त कर रखा है|

- सेमुएल हंटिग्टन के अनुसार नवीन वैश्विक विवाद तंत्र की शुरूआत संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर समाजों एवं देशों के मध्य संघर्ष से हुई|

- घरेलु एवं सामाजिक जीवन में दिन प्रतिदिन हिंसा विविध रूपों में बढ़ती जा रही है| जो वृहद् स्तर पर समाज एवं मानव के अस्तित्व पर भी खतरा बनता जा रहा है|

- हिंसक विवादों से निपटने के लिए सुसंगठित एवं सुनियोजित शांति सेना जैसे संगठनों की आवश्यकता होगी| वैश्विक अहिंसक शांति स्थापना के लिए पूरे विश्व में प्रयास चल रहे हैं|

3. संरक्षा एवं सुरक्षा

मानव मात्र के लिए सिद्धान्तों एवं संगठनों से सम्बंधित एक प्रमुख प्रश्न संरक्षा एवं सुरक्षा का है| 'यदि आप शांति चाहते हैं, तों युद्ध त्यागने के लिए तैयार रहें' के सिद्धान्त को सभी देशों द्वारा स्वीकार करना होगा| अधिकतर देश प्रति वर्ष अपनी सकल आय का 15 से 20 प्रतिशत हिस्सा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सुरक्षा पर खर्च कर रहे हैं| गत शताब्दी में लगभग 250 छोटे बड़े युद्ध विश्व के विभिन्न भागों में लड़े गऐ जिनमें लगभग पाँच करोड़ लोगों ने जान गवाँई | हथियारों के लिए बढ़ती अंधी दौड़ ने न केवल हिंसक प्रक्रिया को तीव्र किया है, बल्कि संपूर्ण विश्व को विध्वंष के कगार पर ला खड़ा किया है| आधुनिक युद्ध की विध्वंषकता संगठित एवं अमानवीय हो चुकी है| थामस मेर्टन के

अनुसार आधुनिक युद्ध में वास्तविक समस्या सामनें का युद्ध नहीं है, बल्कि सुदूर योजना केन्द्रों से संगठित तकनीकी विध्वंश है|

आधुनिक तकनीकी वृहद् हिंसा अमूर्त, सामूहिक, व्यापार जैसी, अपराध बोध से मुक्त है, जिसके कारण व्यक्तिगत हिंसा से हजारों गुना घातक एवं प्रभावी है|

पूर्व सावियत संघ के राष्ट्पति गोर्बाचोव ने कहा था कि सुरक्षा का विचार हमेशा ही गलत अर्थों में ग्रहण किया जाता रहा है, जबकि इस विचार को शांति के प्रसार एवं स्थायी शांति स्थापना के अर्थों में लेना चाहिए|

इन सब के विपरीत दूसरे पहलू पर भी विचार करें| 27 देशों में किसी प्रकार की सेना नहीं है| अनेकों देशों के नागरिकों ने अपने आपको वृहद्संहारक हथियारों एवं युद्ध के विरूद्ध संगठित किया है| इस परिप्रेक्ष्य में शांति स्थापना एवं प्रसार में शांति सेना की भूमिका बहुत ही प्रासंगिक हो जाती है|

4. विकास का अभाव

विकसित एवं विकासशील देशो में आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ती जा रही है| 20 प्रतिशत धनाढ्य विश्व की, 20 प्रतिशत सबसे गरीब राष्ट्रों की तुलना में आय 150 गुना अधिक है| विश्व बैंक के आकलन के अनुसार लगभग 1.5 अरब लोग विश्व में निरपेक्ष गरीबी की हालात में जीवन यापन कर रहें हैं| जिसकी प्रतिदिन आय एक डॉलर से भी कम है|

गाँधी जी ने कहा था कि जब तक बड़े राष्ट्र शोषण एवं हिंसक प्रवृति को नहीं छोड़ेंगे जिसकी कि परिणति युद्ध एवं एटम बम के रूप में होती है, तब तक विश्व में शान्ति की बात करना बेमानी होगा इस परीप्रेक्ष्य में शांति, जिसका अर्थ होगा ऐसी दुनिया जो असमानता, युद्ध, आतंक एवं हिंसा से मुक्त हो, की बात मरिचिका ही सिद्ध होगी| कभी कभार सशस्त्र बल, प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में भूख एवं बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करते है तथापि हमें एक ऐसे बल की आवश्यकता है जो सतत् रूप से न्याय एवं समानता पर आधारित समाज निर्माण के लिए कार्य करे |

1.3 गाँधी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का विचार

गाँधी जी के लिए शांति सेना का विचार उनके जीवन का एक अनवरत विकासशील विचार था| यद्यपि उन्होंने इस विचार को प्रमुखता से शांति सेना नाम दिया तथापि उन्होनें शांति दल, सत्याग्रही सेना, शांति के सैनिक, राष्ट्रीय स्वयंसेवी सिपाही, शांति की सेना, अहिंसा के सिपाही, अहिंसक सेना, अहिंसक स्वयंसेवी सेना, सत्याग्रही टुकड़ी तथा निशस्त्र सेना जैसे नामों से भी अपने विचार को अभिव्यक्ति दी| यह अपने आप में शांति सेना के सतत् विकासशील विचार को व्यक्त करता है| जिसके चलते उन्होने मौटे तौर पर इसकी संरचना, क्रियात्मक विधियाँ और इसके सदस्यों की गुणवत्ता तय की|

1.3.1 शान्ति सेना का जन्म

गाँधी जी का यह विचार एक दिन के चिन्तन की देन नहीं था| उनके लिए अहिंसा मात्र एक दर्शन नहीं बल्कि दैनिक अभ्यास का विषय थी| फिर भी उन्होंने इसे एक संगठित रूप देने से पहले अनेकों कसौटियों पर परखा| इसी परिप्रेक्ष्य में शांति सेना के विचार पर भी पूरे जीवन प्रयोग किए|

गाँधी जी की शांति स्थापना की सफलता की कहानी दक्षिण अफ्रीका से प्रारम्भ होती है, जहां वे एक कानूनी सलाहकार के रूप में गए थे परन्तु उन्होनें दादा अब्दुल्ला शेख और शेख तैयब हाजी खान मोहम्मद के मध्य विवादों को सुलझानें में मध्यस्थ की भूमिका अदा की| इस घटना ने उन्हें बदल दिया और बाद में कितने ही विवादों को सुलझानें में उन्होनें भूमिका निभाई| उन्होंने इस घटना को अपनी आत्मकथा में इस रूप में उल्लेखित किया "यह सबक मेरे जीवन में इस कदर गहरे तक उतरा कि बीस वर्ष के वकील के रूप में बितायें जीवन में से अधिकतर समय सैकड़ों व्यक्तिगत मामलों में समझौते कराने में बीता|"

अक्टूबर 1913 का ट्रांसवाल मार्च (जिसे उन्होंने शांति की सेना कहा जिसमें 2037 पुरूष, 127 महिलाऐं तथा 57 बच्चे थे), डरबन में 1897 का इंडियन एम्बुलेंस दस्ता, तथा 1899 का क्षुधा राहत कार्य, जोहान्सबर्ग में 1904 का ब्लैक प्लेग राहत कार्य तथा 1910 में टॉलस्टॉय फार्म की स्थापना (सत्याग्रही परिवारों के पुर्नवास हेतु) को शांति सेना के विचार के अंकुरण काल के रूप में देखा जा सकता है|

भारत वर्ष में गाँधी जी ने अनेक अवसरों पर शांति स्थापना हेतु विभिन्न स्तरों (व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय) पर अथक प्रयास किए|

उनकी नवोन्मुख एवं संरचनात्मक भूमिका से चम्पारण किसानों का मुद्दा (1917), अहमदाबाद के मिल श्रमिकों का मुद्दा (1917) तथा खिलाफत आंदोलन (1920) के मुद्दे को हल किया जा सका| उनके संगठनात्मक प्रयासों से 1921 में राष्ट्रीय स्वयं सेवी दल (शांति सेना का पूर्व रूप), उत्तर पश्चिय मोर्चे पर 1929 में खुदाई खिदमतगार, 1930 में 79 सत्याग्रहियों के साथ नमक सत्याग्रह में उनकी सीधी भूमिका तथा 1947 में नौखाली एवं बिहार के शांति मिशन को, शांति सेना के गठन के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है| उनके सीधे सीधे शांति सेना के निर्माण के प्रयासों के अलावा विभिन्न समयों पर शांति हेतु उनके द्वारा किऐ गए कार्य भी शांति सेना के गठन एवं विकास की दिशा में प्रयास के रूप में देखे जा सकते है|

इन सभी शांति एवं शांति संबंधी प्रयासों में गाँधी जी ने विविध रूपों में शांति सैनिक की भूमिका अदा की| उनके सकल रूप में शांति एवं अहिंसा हेतु किए गए प्रयास मानव जाति के उन्नयन हेतु नए आयाम के रूप में स्थापित हुए|

1.3.2 शान्ति सेना की क्रिया विधि का सैद्धान्तिक आधार

गाँधी जी के अनुसार एक आदर्श शांति सैनिक को पाँच मूल सिद्धान्तों पर कार्य करना चाहिए –

1.3.2.1 सत्य की खोज

1.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम

1.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार

1.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य : प्रेम, सौहार्द एवं सेवाद्ध

1.3.2.5 आंतरिक शान्ति

इन पाँचो आयामों में सहसम्बन्ध अन्तर्निहित है तथा समग्र रूप से ग्रहण करने चाहिये| इन पाँचों आयामों पर कार्य करने वाला ही एक आदर्श शांति सैनिक हो सकता है, जबकि इन पाँचों आयामों का एक साथ अनुसरण करने की भी अपनी सीमायें है| उनका विश्वास था कि आदर्श रूप से अहिंसक लोगों की सेना कभी नहीं हो सकती| यह सिर्फ उनके द्वारा बन सकती है, जो सत्यनिष्ठा से अहिंसा में विश्वास करते है| फिर भी यदि कोई व्यक्ति इनमें से एक या दो घटकों पर खरा नहीं उतरता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वो शांति सैनिक नहीं हो सकता| यद्यपि संगठन के केन्द्रीय व्यक्तियों के लिए पाँचों आयाम महत्वपूर्ण हैं तथापि प्रत्येक शांति सैनिक आवश्यक नहीं कि वे पाँचों आयामों पर खरा उतरे| एक या दो आयामों का पूर्णता से पालन करने वाला भी शांति सैनिक हो सकता है|

1.3.2.1 सत्य की खोज

गाँधी जी ने अपने पूरे जीवन काल में अनवरत बढ़ते समर्पण एवं विनम्रता के साथ सत्य की खोज जारी रखी| उन्होने सत्य को निरपेक्ष सत्य, सापेक्ष सत्य एवं समतुल्य सत्य में विभेदित किया| इश्वरीय सत्य एवं सापेक्ष सत्य उनके जीवन के लिए अटल सत्य थे| उनका विश्वास था कि हिंसा और विवाद सत्य की अनदेखी से उत्पन्न होतें है| चूंकि विशुद्ध एवं वास्तविक सत्य को समझने में व्यक्ति विशेष की अपनी सीमाऐं होती हैं, अतः उन्होनें सुझाव दिया कि अपनी आत्मानुभूति एवं सतत प्रयासों से दूसरो में सत्य की अनुभुति करनी चाहिए| उनके लिए सत्य एक लक्ष्य था, जिस तक अहिंसा के माध्यम से ही | जा सकता था| वो कहते थे जहाँ अहिंसा है, वहीं सत्य है और सत्य ही ईश्वर है|

उनके अनुसार एक शांति सैनिक के लिए निम्न माध्यमों के द्वारा अनवरत सत्य की खोज आवश्यक थी|

- अहिंसक वार्तालाप

उनके अनुसार वार्तालाप के दौरान ,श्रवण, बर्ताव, बोलने के दौरान तथा कायिक या सांकेतिक रूप से किसी प्रकार भी भावनात्मक चोट न |यी जाये| इसे विनम्र वार्तालाप कहा जा सकता है| अहिंसक वार्तालाप को हम दो प्रमुख घटकों

के रूप में देख सकतें है| पहला किस प्रकार हम खुद को व्यक्त करते है, और किस रूप में दूसरे कि सुनते या ग्रहण करते है| इसका अर्थ है हम क्या चाहते हैं, जब दूसरें से इन सबका प्रतिउत्तर प्राप्त करतें है| दूसरा हम अपने संवाद में प्रतिरोधक, रक्षात्मक तथा हिंसक प्रतिक्रिया को कम से कम कर दें|

गाँधी जी ने विनम्र वार्तालाप का सम्पूर्ण जीवन में अभ्यास किया, यहाँ तक कि जब उन्हें राजनीतिक विरोधियों की आलोचनाओं का सामना करना पड़ा, तब भी अपने विनम्र वार्तालाप को नही छोड़ा|

- संवाद

दूसरों के अन्दर निवास करने वाले सत्य को जानने एवं उसका सम्मान करने के लिए संवाद आवश्यक है| संवाद मात्र सूचनाओं एवं ज्ञान के आदान प्रदान की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह वांछित एवं सफल मानव सहसम्बंधों की स्थापना का माध्यम है| प्रत्येक व्यक्ति अंतिम रूप से वास्तविकता को विभिन्न रूपों में ग्रहण करता है, सिर्फ संवाद के माध्यम से ही उस अंतिम सत्य को समग्र रूप में समझा जा सकता है| संवाद के दौरान लोग एक दूसरे को सुनते हैं तथा प्रतिक्रिया देते हैं, जो उनके मध्य सम्बंध स्थापित करने तथा जारी रखने में सहयोगी है|

- पारदर्शिता

पारदर्शिता का अर्थ है - स्वयं के जीवन तथा दूसरे के साथ सम्बंधों में पारदर्शिता| गाँधी जी ने कहा था, ‘‘सत्य गोपनीयता से घृणा करता है, आप जितने पारदर्शी होगें, उतने ही सत्य के निकट होगें|‘‘

- सर्वधर्म समभाव

सत्य के सभी रूपों (ईश्वर) में आस्था रखना, इसका अर्थ है सभी धर्मों का उसी प्रकार सम्मान करना जैसे की आप अपने धर्म का करतें हैं, इसे इस प्रकार से भी परिभाषित किया जा सकता है ‘‘व्यक्ति अपने स्वधर्म में स्थित रहे तथा दूसरे धर्म के लोगों एवं आस्था के प्रति आदर पूर्ण रहे|‘‘

- आत्ममूल्यन

यह वो प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को एवं अपने कार्य को प्रकष्ति एवं संस्कष्ति से जोड़ना सीखता है| यह व्यक्ति को, स्वयं को मात्र एक दमित बिम्ब स्वीकार करने से रोकता है एवं व्यक्तिगत क्षमताओं को अपेक्षित सम्मान देने हेतु सक्षम बनाता है| यदि ऐसा संभव होता है तो करोड़ो गरीब एवं दमित लोग जाग उठेगें एवं स्थापित शक्ति केन्द्रों को उखाड़ फेकेगें|

- रूपान्तरण

रूपान्तरण, नए सत्य की प्राप्ति पर बदलने की आत्मेच्छा की प्रक्रिया है| जब गाँधी जी ने अहिंसक क्रांति के बारे में समझाया तो उन्होनें कहा "यह शक्ति को अवरूद्ध करने की योजना नहीं है|" यह योजना है अन्तर्सम्बधों को रूपान्तरित करने की, जिसकी परिणति शांति पूर्वक शक्ति स्थानान्तरण के रूप में होगी|

1.3.2.2 प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव तथा रोकथाम

शांति सेना के लिए सबसे महत्वपुर्ण कार्य था, प्रत्यक्ष हिंसा के विविध रूपों यथा हत्या, घात, प्रहार, सम्पति का विनाश, युद्ध इत्यादि से बचाव एवं उनकी रोकथाम| गाँधी जी का विश्वास था कि सिर्फ अहिंसा के माध्यम से ही इन समस्याओं का हल हो सकता है| उनहोंने कहा था मानवता को हिंसा से दूर रखने का एक मात्र उपाय अहिंसा ही है| अणु बम के युग में शुद्ध अहिंसा ही हिंसा के समस्त प्रकारों का प्रतिकार कर सकती है|

प्रत्यक्ष हिंसा से बचाव एवं उसकी रोकथाम के लिए निम्न विधियों को प्रयोग किया जा सकता है:-

- विवादों का शान्तिपूर्ण हल एवं शांति स्थापना

  संवाद, परामर्श, मध्यस्थता, साथ ही साथ कानूनी एवं न्यायिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सौहार्द्र पूर्ण माहौल में विवादों का हल एवं शांति स्थापना द्वारा|

- आपात बीच-बचाव

  एक शांति सैनिक को विवाद के उग्र होनें से पहले ही दोनों समूहो के बीच एक तटस्थ बल की भाँति कार्य करना चाहिए ताकि युद्ध और दंगों की स्थिति से बचा जा सके|

- वैकल्पिक बचाव

  जब कभी भी राज्य पर बाहरी ताकतों का हस्तक्षेप बढ़े तो बाहरी ताकतों को उनके साथ असहयोग एवं अवज्ञा के माध्यम से राज्य से बाहर निकाल फैंकें|

- निःशस्त्रीकरण

निःशस्त्रीकरण से तात्पर्य है एक पक्षीय, द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सहमति के आधार पर हथियारों का उत्पादन, वितरण एवं उपयोग की रोकथाम | गाँधी जी कहा करते थे कि जब तक महा शक्तियाँ अपने आपको निःशस्त्र करने का निर्णय नहीं लेती, शांति स्थापना नहीं हो सकती|

1.3.2.3 संगठनात्मक हिंसा का प्रतिकार

विश्व में इस समय संगठनात्मक हिंसा एक बड़ी समस्या है जो असमानता, अन्याय, शोषण आदि के माध्यम से होती है| इस प्रकार की संगठनात्मक अन्तर्निहित हिंसा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा मानव जीवन के अनेकों पहलुओं में व्याप्त है| इसे चुनौती देना चाहिए और इसके लिए सत्य एवं अहिंसा पर आधारित नए संगठनों के निर्माण की आवश्यकता है| इसके लिए निम्न गतिविधियाँ जरूरी हैं :-

- अहिंसक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया (सत्याग्रह)

  जब न्याय, स्वतंत्रता आदि के आधारभूत प्रश्न समक्ष हों तो सत्याग्रह आवश्यक है| एक बार जब विवादों के हल के दूसरें तरीके असफल हो जाऐं तो न्याय एवं स्वतंत्रता की स्थापना के लिए सत्याग्रह के रूप में प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया की आवश्यकता होगी| असहयोग एवं आत्म-तप तब सत्याग्रह का रूप ले लेता है, जब सत्य,प्रेम एवं आध्यात्म उसमें सम्मिलित हो जाए| इस अहिंसक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के लिए योजना, संसाधन, प्रशिक्षण एवं नेतृत्व आदि की आवश्यकता होती है|

- सृजनात्मक कार्य

  वैकल्पिक एवं समानान्तर शांति स्थापना के लिए दूर गामी कार्यप्रणाली है - सृजनात्मक कार्य| ब्रिटिश समय में खादी एवं ग्रामोद्योग संघर्ष का पयार्य बन गया था|

- अहिंसक संगठन एवं प्रबंधन क्षमता

  गाँधीजी हिंसा को चुनौति देने के लिए संगठन बनाते थे| उन्होनें समझाया एक रूढ़िवादी सोच के साथ संगठन संभव नहीं हैं| सभी अहिंसक ताकतों की एकता आवश्यक है| मै प्रयोगों के माध्यम से इसकी संभावनाओं को सिद्ध करता रहा हूँ| उन्होनें अहिंसा के प्रकार एवं अभ्यास के लिए अनेक संगठन स्थापित किए|

1.3.2.4 अहिंसक नीतियाँ तथा जीवन मूल्य : प्रेम, सौहार्द एवं सेवाद्ध

गाँधीजी के अनुसार बहादुरी किसी को मारने में नहीं बल्कि खुद को खपाने में है| उनके लिए अहिंसा मानव जीवन का सर्वोपरि कानून था| इसलिए उन्होनें हिंसा के प्रत्येक रूप (व्यक्तिगत, सामूहिक, मानवेत्तर प्राणियों की हत्या, प्रेम

एवं दया का मानव एवं अन्य जीवों के प्रतिअभाव) को पूर्णतः अस्वीकार किया| शान्ति सैनिक अपनी कार्यप्रणाली के दर्शन में जब अहिंसा को अपनाता है तो उसे साथ ही साथ युद्ध (सामुहिक हिंसा) का प्रतिकार तथा प्रेम, सद्भाव, समभाव, एवं प्राणी मात्र के प्रति सेवा भाव का प्रसार करना चाहिए| आदर्श रूप से इसे अभ्यास में लाने के लिए उन्हें स्वयं को निम्न गतिविधियों में लगा देना चाहिए:-

- राहत, पुनर्वास एवं मानव सहायता

जब भी प्राकृतिक आपदाऐं मानवता पर आक्रामण करेगी, इन सबकी आवश्यकता होगी| गाँधी जी चाहते थे कि शांति सैनिक अग्नि शमन, प्राथमिक चिकित्सा, राहत सामग्री के वितरण, एम्बुलेंस सहायक के रूप में तथा राहत शिविरों के आयोजन में प्रवीण हो|

- वैकल्पिक जीवन शैली

शांति सैनिक उपभोक्ता वादी जीवन शैली को छोड़कर अहिंसक एवं उदार जीवन शैली अपनाऐं| गाँधी जी कहते थे जों अहिंसा व्रत धारण करें, उसके परिवार में, पड़ोसियों के प्रति, व्यापार में, संगठन एवं सार्वजनिक बैठकों में, तथा यहाँ तक कि अपने विरोधियों के साथ भी उसके व्यवहार में अहिंसा परिलक्षित हो|

- अन्तर्वैयक्तिक एवं अंतर सामूहिक सम्बंध

गाँधी जी दो व्यक्तियों या समूहों के मध्य बेहतर सम्बंधों को स्थानीय सेवा के समकक्ष मानते थे| वो कहते थे कि इन सम्बंधों के माध्यम से असामाजिक तत्वों की समस्या को हल किया जा सकता है|

- पर्यावरण मैत्री

इसका अर्थ है अपने चारों और स्थित जैविक एवं अजैविक घटकों से मैत्री सम्बन्ध| हमें उन गतिविधियों में शामिल नहीं होना चाहिए जों पर्यावरण विनाश का कारण बनें|

1.3.2.5 आंतरिक शान्ति

एक शांति सैनिक को शांति एवं सृजनात्मकता से परिपूर्ण होना चाहिए| एक व्यक्ति जो आंतरिक रूप से शांत नहीं होगा, बाहर भी शांति स्थापना नहीं कर पाएगा| यह ठीक है कि आंतरिक एवं बाह्य शांति में एक सम्बन्ध होता है, फिर भी बाह्य अशांति को उत्तरदायी ठहराकर आंतरिक शांति से पलायन नहीं किया जा सकता| गाँधी जी के अनुसार योग, प्रार्थना, ध्यान, नीरवता, उपवास आदि के माध्यम से शांति सैनिक को आंतरिक शांति का प्रयास करना चाहिए| वो कहते थे "मेरा सबसे बड़ा हथियार, मेरी मूक प्रार्थना है|" उनके अनुसार एक शांति सैनिक के लिए ईश्वर में अटूट

विश्वास, सेनानायक के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता, तथा सेना की आंतरिक एवं बाह्य इकाइयों में सहयोग आवश्यक है, तथा प्रशिक्षण अभ्यासों के माध्यम सें आंतरिक शांति प्राप्त की जा सकती है|

गाँधी जी ने उपर्युक्त संदर्भ में निम्नलिखित बातों पर बल दिया:-

- शांति एवं अहिंसा के लिए प्रशिक्षण

इसमें शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण शामिल है| गाँधी जी ने एक बार कहा था - एक सैनिक एवं शांति सैनिक के कुछ प्रारम्भिक प्रशिक्षण समान होगें| उन्होनें कहा था यदि बौद्धिक क्षमता हिंसक आंदोलनों में महत्वपूर्ण है तो यह अहिंसा के लिए उससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है| उनके अनुसार जिस प्रकार से सैनिक मारने का प्रशिक्षण प्राप्त करता है उसी प्रकार शांति सैनिक के लिए अहिंसा हेतु मरने का प्रशिक्षण आवश्यक है|

- शांति खेल

प्रतियोगी खेलों के स्थान पर, शांति पूर्ण समाज की स्थापना के लिए सहयोगात्मक खेल सीखने एवं खेलने चाहिए|

- रूपान्तरण अभ्यास

योग, ध्यान, प्रार्थना, आत्मनिरीक्षण तथा ऐसी ही तकनीकों के माध्यम से अहिंसा को जीवन में पूर्णता से उतारा जा सकता है|

शांति सेना के सिद्धान्त एवं आयाम शांति सैनिक बनने के लिए आवश्यक है, परंतु एक शांति सैनिक इस आयामों की समग्रता से बनता है| गाँधी जी एक दुर्लभ प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे जिन्होनें अपने समय एवं भविष्य के लिए शांति सेना की आवश्यकता को समझा | उन्होनें कहा था "यह मेरा अटूट विश्वास है कि यदि हमारे पास पर्याप्त संख्या में अहिंसक शांति सैनिक हो तो बिना करोड़ों रूपये खर्च किये हम शांति स्थापना में सफल हो सकतें है|" उनके अनुसार ऐसी सेना जो वास्तविकता में अहिंसक नहीं है, शांति की स्थापना नहीं कर सकती| गाँधी जी के बाद के युग में शांति सेना के विचार को ज्यादा विस्तार मिला|

1.3.4 शान्ति सैनिक की योग्यतायें

गाँधी जी ने शांति सैनिक की योग्यताओं के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शान्ति सैनिक का अहिंसा में पूर्ण विश्वास हो, जो कि ईश्वर में पूर्ण आस्था के बिना संभव नहीं है| ईश्वरीय शक्ति एवं आशीर्वाद के बिना वो कुछ नहीं कर सकता| इसके बिना उसमें बिना क्रोध, डर या बदले की भावना के मरने का साहस उत्पन्न नहीं होगा| यह साहस इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि ईश्वर सभी के हृदय में निवास करता है, तथा ईश्वर की उपस्थिति में भय का अस्तित्व

नहीं हो सकता| ईश्वर की सर्वव्यापकता के ज्ञान का अर्थ है सभी जीवों के प्रति सम्मान, यहाँ तक कि जिन्हें हम विरोधी या असामाजिक कहतें हैं उनके हृदय में भी ईश्वर निवास करता है| मनुष्य पर जब पाशविकता होवी हों तो इस अपेक्षित हस्तक्षेप के माध्यम से मानव की क्रोध की तीव्रता को दूर किया जा सकता है| गाँधी जी ने शांति सैनिक के लिए निम्न योग्यताऐं सुझाई :-

1. यह शांति का दूत पृथ्वी पर मौजूद सभी धर्मों के प्रति समान आस्था रखें| जैसे कि यदि वह हिंदू है तो, भारत के सभी, दूसरे धर्मों का सम्मान करें| इसके लिए आवश्यक है, कि देश में प्रचलित दूसरे सभी धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का उसे ज्ञान हो|

2. कार्य एकल या सामूहिक रूप से किया जा सकता हैं| अतः स्थानीय स्तर पर सेना के निर्यात के लिए साथियों की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं है|

3. सामान्यतः कहा जाता है, शांति का कार्य स्थानीय व्यक्तियों द्वारा अपनी ही जगह पर किया जा सकता है|

4. यह शांति का दूत, शांति की स्थापना अपनी व्यक्तिगत सेवा एवं सम्बंधों के आधार पर स्थानीय लोगों के साथ अपनी ही जगह या चुने हुए क्षेत्र में करेगा ताकि किसी भी अप्रिय स्थिति के साथ निपट सके एवं उसे किसी दूसरे पर निर्भर न रहना पड़े|

5. कहने की आवश्यकता नहीं हैं, कि शांति सैनिक का चरित्र निर्दोष हो तथा वो अपने निष्पक्ष व्यवहार के लिए जाना जाए|

6. सामान्यतः तूफानों की पूर्व में चेतावनी मिल जाती है, यदि ऐसा है तो, शांति सेना को विनाश की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि स्थिति को पूर्वानुमान के आधार पर संभालने का प्रयास करना चाहिए|

7. इस आंदोलन की सफलता के लिए कुछ पूर्णकालिक स्वयंसेवकों का होना अच्छी बात है, परन्तु यह अत्यावश्यक भी नहीं है| इसके पीछे भावना जितना हो सके, उनको अच्छे एवं सच्चे पुरूषों एवं महिलाओं को जोड़ना है| जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से स्वयंसेवक शांति सेना से जुड़े, जो अपने क्षेत्रों के ऐसे लोगों के साथ सम्बंध स्थापित कर सकें जो शांति सैनिक की योग्यताऐं रखते हों|

ये सामान्य सुझाव हैं, प्रत्येक केन्द्र इन सुझावों के आधार पर अपना विधान बना सकता है|

1.4 सारांश

गाँधीजी ने कहा था "मेरा जीवन ही मेरा संदेश है|" एक आदर्श शान्ति सैनिक कैसा हो इसकी सीख भी हम गाँधीजी के जीवन शैली को समझ कर प्राप्त कर सकते हैं| उन्होंने सर्वप्रथम 1938 में कांग्रेस पार्टी के समक्ष यह विचार

रखा कि उसे एक शान्ति सेना का गठन करना चाहिए और तब से 1948 तक, यानि लगभग एक दशक तक, शान्ति सेना के गठन और कार्य सम्बन्धी अनेक दिशा-निर्देश दिये और कार्य किए| परन्तु उनके समय विभिन्न प्रयासों के उपरान्त भी शान्ति सेना का जो सपना गाँधीजी ने संजोया था वह साकार नही हो सका| उनके पश्चात विनोभा भावे, जयप्रकाश नारायण, इत्यादि के विभिन्न प्रयासों के कारण शान्ति सेना आांशिक रूप में तो विकसित हुआ और उसने भूदान और ग्रामदान जैसे आन्दोलनों में सक्रिय कार्य भी किया परन्तु जिस व्यापक स्तर पर गाँधीजी ने इसकी कलपना की थी वह आज भी साकार नहीं हुआ है| फिर भी सुखद बात यह है कि न केवल भारत में पर विश्व के पटल पर भी ऐसे प्रयास जारी हैं जिसके कारण हम आशान्वित हैं कि एक दिन गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत शान्ति सेना का सपना जरूर पूरा होगा और समाज एवं विश्व में हिंसा को रोकने एवं शान्ति निर्माण के कार्य को सम्पन्न करने में शान्ति सेना प्रभावी भूमिका अदा करेगा|

1.5 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति सेना का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्यों को समझाइये|
2. शान्ति सेना से सम्बन्धित गाँधीजी के विचार समझाइये|
3. शान्ति सेना की क्रियाविधि के सैद्धान्तिक आधार और शान्ति सैनिक की यागयतायें समझाइये|

1.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम.के., सत्य के साथ मेरे प्रयोग (आत्मकथा), नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1988
2. गाँधी, एम.के., नॉन वायलेंस इन पीस एण्ड वार, अहमदाबाद: नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1949
3. पारीख भीखू, कोलोनियलिस्म ट्रेडिशन एण्ड रिफार्म: एन एनालिसिस ऑफ गाँधीस पॉलिटिकल डिस्कोर्स, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989
4. बोन्दुरां जे., कोंक्वेस्ट ऑफ वायलेंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बाई, 1959
5. वेबर, थोमस, द शान्ति सेना: फिलॉसोफी, हिस्ट्री एण्ड ऐक्शन, ओरियन्ट ब्लेकस्वेन, नई दिल्ली, 2009
6. भास्करन एम. विल्लियम, इण्डियन परस्पेक्टिव ऑन कानफ्लिट रेसोल्यूशन, गाँधी मीडिया सेंटर, थिरूवनन्थपुरम (केरल), 2004

इकाई – 2

आतंकवाद की समस्या एवं गाँधी

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देष्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आतंकवाद व हिंसा

2.3 गाँधी के विचार व अहिंसा की अवधारणा

2.4 आतंकवाद एवं गाँधी

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है :-

- आतंकवाद की परिभाषा करना, उसकी प्रकृति को समझना व हिंसा और आतंकवाद के सम्बन्ध को जानना|
- गाँधी के विचारों को समझना और उनकी आदर्श व्यवस्था में अहिंसा की अनिवार्यता को पहचानना|
- आधुनिक आतंकवाद का स्वरूप और आतंकवाद जनित समस्या|
- हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि ऐसी वर्तमान समस्याओं का समाधान कहाँ है? क्या वास्तव में आतंक और हिंसा से समस्या सुलझ सकती है?

2.1 प्रस्तावना

आज हम जब देश की तरक्की और बढ़ती हुई विकास दर की बात करते हैं तथा बढ़ती आमदनी के साथ कम्प्यूटर व मोबाइल क्रांतियों की चर्चा करते हैं तो कहीं टीस उठती है उन सामाजिक मान्यताओं व मूल्यों के टूटने की जो सदियों में बमुश्किल बनती हैं| सबसे बड़ी चिन्ता घर-परिवार और उसके जरिए समाज के टूटने की होती है क्योंकि घर-परिवार के साथ देश में जाति व धर्म के नाम पर बढ़ रहे हैं झगड़े, गरीब-अमीर के बीच की बढ़ रही है खाई और लुट रहा है आम आदमी का अमन-चैन| यकीन ही नहीं होता यह इंसान उन्हीं की संतान और उन्हीं का खून है जो बात करते थे नैतिकता की, धर्म की, सामाजिक एकीकरण और सौहार्द की| चारों ओर वर्चस्व है घोटालों का, भ्रष्टाचार का और लोकतंत्र के मंदिर में अनुलेखनीय घटनाओं का| बहस के अंत में निष्कर्ष केवल इतना है जितना भूख बढाओगे अपनों से दूर, बरबादी के उतने ही करीब होते जाओगे|

यही आज मानव जीवन की विडम्बना है कि जिसे हम अच्छा समझ रहे हैं, उन्नति मान रहें हैं वही कहीं अंदर ही अंदर, कुरेद कर हमें खोखला कर रहा है| साम्प्रदायिकता, जातिगत गुटबंदी, भाषावाद, क्षेत्रवाद तथा उनके आधार पर पृथक राष्ट्र अथवा राज्य की बातें हमें विखंडन की ओर ले जाती हैं| आर्थिक व सामाजिक असमानता के कारण उपजा नक्सलवाद एक प्रकार से सरकार की सत्ता को चुनौती देने को तैयार है| मानव जीवन चहुँ ओर हिंसक गतिविधियों से घिरा है, मनुश्य की बढ़ती हुई इच्छाओं ने उसे एकाकी बना दिया है| राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी है और मनुष्य एक दूसरे का षत्रु हो गया है| हर व्यक्ति अपनी सोच और दायरे का विस्तार करने तथा प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की कोशिश में है| इससे जीवन में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है, सामंजस्य व समरसता घटी है| जैसे समाज में रिष्तों का खून हो रहा है वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैचारिक, साम्प्रदायिक व जातीय मतभेद हिंसा को जन्म दे रहे हैं| जों-जों यह चक्र आगे बढ़ रहा है विष्व स्तर पर आतंकवाद का बढ़ना जारी है| आज जरूरत है हिंसा से प्रतिहिंसा की ओर बढ़ने वाले कदमों को रोकने की, और शांतिपूर्वक मतभेदों को समाप्त करने की |

2.2 आतंकवाद व हिंसा

राजनीति विज्ञान विषय के अध्ययनकर्ता के रूप में हमें यह ज्ञात है कि किसी भी विषय पर व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में हमेशा विचारों की एकरूपता नहीं हो पाती, अतः एक ही विषय पर विभिन्न दृष्टिकोण जन्म लेते हैं| इन से ही अलग-अलग विचारधाराओं की उत्पत्ति होती है| एक ही मुद्दे पर परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों से लोगों में मतभेद उत्पन्न होते हैं| किसी भी विचार का समर्थक अपने को सही मानकर दूसरे के विचारों को समझने का प्रयत्न भी नही करता| विचारों का यही संघर्श जब अपने चरम पर पहुँचता है तो वह हिंसात्मक होकर आतंक का रूप लेता है| वैचारिक क्षेत्र में यह संघर्श आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, जातीय व राजनीतिक किसी भी प्रकार का हो सकता है|

आतंकवाद अपने आप में नया नहीं है| जब भी, अपनी सोच से तालमेल के लिए तथा जनमानस व सरकार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, कोई व्यक्ति या समूह किसी ऐसी हिंसात्मक घटना को अजांम देता है कि जनता का, भयभीत हो कर, ध्यान उसकी ओर या उसके द्वारा उठाये गए मुद्दे पर जाये तो वह आंतकवाद कहलाता है| तथापि आंतकवाद को लेकर शैक्षणिक स्तर पर कोई आम सहमति नहीं है| वैश्विक समाज इस अपराध की कोई सर्वव्यापी परिभाषा नहीं कर पाया है क्योंकि आतंकवाद राजनीतिक रूप से एक संवेदनशील मुद्दा है| संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1994 में आंतककारी गतिविधियों की भत्र्सना करते हुए, राजनीतिक संदर्भ में उसकी परिभाषा की कोशिश की:- 'कोई भी अपराधिक कृत्य जिसका उद्देष्य सामान्य जनता में राजनीतिक, दार्शनिक, वैचारिक या धार्मिक आधार पर भय और आतंक फैलना हो, जायज नहीं है और इसे आतंकवाद कहा जायेगा'|

परन्तु ब्रूस होफमेन (Bruce Hoffman) के अनुसार किसी भी संगठन या व्यक्ति को आतंकवादी मानना या कहना सापेक्षित है| यदि आतंकपीड़ित पक्ष के नजरिये से देखा जाये तो कृत्य निश्चित रूप में निंदनीय है; परन्तु यदि कृत्य को अंजाम देने वाले के दृष्टिकोण से समझें तो निष्कर्ष अलग है| हमें नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी बात के दो पक्ष होते है और केवल एक पक्षीय निर्णय नहीं लिया जा सकता| उदाहरण के लिए, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के क्रांतिकारी, ब्रिटिश सरकार की नजर में आतंकवादी थे परन्तु राष्ट्रवादियों के लिए सबसे बड़े राष्ट्रभक्त| इसी विरोधाभास से कभी अराजकतावादियों को, तो कभी राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों, समाजवादियों व रूढ़िवादियों को आतंकवादी कहा गया| इसी तरह कुछ लोग व्यवस्था का विरोध करने वाले संगठन तथा धार्मिक समूहों को भी आतंकवादियों की श्रेणी में रखते हैं| इन से अलग राज्य-जनित आतंकवाद है जहाँ राजसत्ता आमजन में भय फैलाती है| संक्षेप में, आतंकवाद के विविध रूप -स्वरूप व उसकी सापेक्षता के कारण कोई भी ठोस परिभाशा कर पाना मुश्किल है|

आतंकवाद एक ऐसी अपराधिक गतिविधि है जो अपने प्रभाव क्षेत्र से इतर भी बहुत सारे लोगों को प्रभावित करती है| ऐसे हिंसात्मक कार्यों के द्वारा वे जनसामान्य, सरकार तथा दुनिया का ध्यान अपने मुद्दों की ओर आकृष्ट करते हैं| इसी लिए वो ऐसे लक्ष्यों को चुनते हैं जिससे विरोध का सबसे व्यापक असर होता है| उदाहरण के लिए 9-11 सितम्बर, 2001 को अमरीका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला तथा 26 नवम्बर 2008 को मुम्बई में ताजमहल होटल पर आंतकारियों का तांडव| ये आतंकवादी स्वयं अपने आप को वैध मानते हैं, जबकि आतंकपीड़ित व्यक्ति उन्हें ऐसे दुष्ट मानव के रूप में देखते हैं जिन्हे मानव जीवन की कोई कद्र नहीं है|

इक्कीसवीं शताब्दी ने तो आतंकवाद के दरवाजे खोल दिये है और विषेशकर सितम्बर 11, 2001 के बाद से तो हिंसा व आतंक छूत की बिमारी की तरह फैले हैं| आधुनिक युग में आतंकवाद किसी व्यक्ति या समूह की अपनी प्रतिक्रिया नहीं है वरन् राष्ट्रीय सीमाओं से परे, संगठित व अनुशासित लोगों का वो समूह है जिनका अपना अलग दर्शन, नैतिकता और मूल्य होते हैं| हथियारों और संगठन के अलावा उनकी शक्ति उनकी सोच और चितंन में होती है| आतंकवाद आज एक व्यवसाय के रूप में फैल रहा है| आतंकवादी संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नवयुवकों

की भरती करते हैं| इसके लिए वे न केवल बेरोजगारों को आसान तरीके से पूँजी, हाथियार और विदेश भ्रमण के साधन उपलबध कराते हैं वरन् आकस्मिक शक्ति प्रदान कर उन्हे दिशाभ्रमित भी करते हैं और अपने मकसद को पूरा करने में कामयाब हो जाते हैं| आज आतंकवाद ने अपनी एक विश्वस्तरीय पहचान बना ली है| आतंकवादी, सामूहिक हिंसा के द्वारा, आम जनता में भय का संचार करते है| ऐसा करके वो सत्ता में बैठे लोगों का ध्यान आकृष्ट करते है जिससे उनके अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति हो सके| उनकी गतिविधियाँ पूरी तरह हिंसात्मक होती हैं और उनके कुछ संगठन, जैसे 'अलकायदा' और 'तालिबान' आदि की सत्ता राज्य के बराबर ही हैं| कुछ मामलों में राज्य स्वयं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, राज्य-समर्थित आतंकवाद तथा प्रतिक्रियात्मक आतंकवाद का स्त्रोत बन गया हैं| आतंक के मामलों में अधिकतर हिंसा का प्रयोग राज्य के विरूद्ध ही होता है| इस के विपरित अधिनायकवादी राज्य में स्वयं राज्य ही आतंक के लिए जिम्मेदार होता है| इन सब का अंत अहिंसा में विष्वास के द्वारा ही सम्भव है|

2.3 गाँधी के विचार तथा अहिंसा की अवधारणा

गाँधीजी के विचार कोई 'वाद' नहीं हैं| उनका विचार अपने पीछे किसी सम्प्रदाय को छोड़कर जाने का नहीं था और न ही उन्होने किसी सुसम्बद्ध दर्शन या विचाराधारा का निर्माण किया है| उन्होने केवल अपने समक्ष उपथित होने वाली समस्याओं का समाधान किया है| यद्यपि वे हिन्दू धर्म के समर्थक थे तथापि उनके विचारों में संकीर्णता और हठधर्मिता नहीं थी| उन्होने विष्व के अन्य सभी धर्मो से ग्रहण करते हुए उन सभी तत्वों को स्वीकार किया जो मनुश्य के लिए श्रेष्ठतर थे| धर्म के प्रति अडिग आस्था रखते हुए उन्होने धर्म और नैतिकता में कोई अंतर नहीं किया| धर्म मनुश्य की समस्त क्रियाओं को नैतिक आधार प्रदान करता है| ईश्वर के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी| उन्होने लिखा, "मेरी दृष्टि में ईश्वर परम सत्य एवं प्रेम है वह शुद्धतम मूल तत्व है|"

उनके विचारों में सत्य का सतत् अन्वेषण है; बुराई से संघर्ष करने में अहिंसक साधनों का प्रयोग, साध्य एवं साधनों की पवित्रता पर बल, व्यक्ति तथा समाज का नैतिक पुननिर्माण है| टॉलस्टॉय की कृति 'स्वर्ग तुम्हारे अन्दर है' को पढने के बाद गाँधी ने स्वयं स्वीकार किया कि "इस पुस्तक के अध्ययन ने मेरी समस्त शंकाओं को दूर कर दिया और मुझे अहिंसा में दृढ़ विश्वास करने वाला बना दिया|"

गाँधी जी के विचार में मानव जीवन का परम लक्ष्य आत्मानुभूति है जिसका अर्थ है निरपेक्ष सत्य का ज्ञान| यह भी उसे एकांत में रह कर नहीं वरन् समाज में रहकर इस शर्त पर प्राप्त होगा कि उस में आत्मत्याग की भावना हो| यही भावना उसे समाज के हित में व्यक्तिगत हित का बलिदान करने की प्रेरणा देगी| स्वयं गाँधी ने लिखा है, "जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा, बिल्कुल उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी| यह नियम निरपवाद है|" इसलिए यदि साधन पवित्र नहीं है तो साध्य भी पवित्र नहीं हो सकता है| अतः उन्होने पातंजलि के आत्मशुद्धि के साधन पाँच यम क्रमशः सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह को स्वीकार किया| इन से मानव चित्त निर्मल होगा तथा आत्मा को बल मिलेगा| इसके साथ ही उन्होने छः नियम जोड़े थे-अस्वाद, निर्भीकता, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म- समानता,

स्वदेषी का व्रत तथा अस्पृश्यता का निवारण| उन यम और नियमों का पालन करने वाला सत्याग्रही निष्चित तौर पर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा| राज्य में, ऐसा व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा| वह शासन इस प्रकार से करेगा कि वह अपने पड़ोसी के लिए कभी बाधा नहीं बनेगा|

गाँधी जी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे अतः अहिंसा के आधार पर एक नवीन आदर्ष समाज या राज्य का निर्माण करना चाहते थे| उनका आदर्श राज्यविहीन लोकतंत्र था क्योंकि वे राज्य को नैतिक, दार्शनिक, आर्थिक व ऐतिहासिक दृष्टि से निरर्थक मानते थे| राज्य व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करता है, उसकी मौलिकता को नष्ट करता है जबकि मानव जीवन का लक्ष्य आत्मानुभूति है जो उसे स्वतंत्रता से ही प्राप्त होती है| गाँधी ने लिखा है कि 'राज्य कानून के द्वारा मानव व्यक्तित्व का विनाश करके मानव जाति की अधिकतम हानि करता है'| आगे उन्होंने स्पष्ट किया कि राज्य हिंसा का केन्द्रिय व संगठित रूप है| व्यक्तियों में आत्मा होती है, पर राज्य आत्महीन यंत्र है| वह हिंसा पर जीवित रहता है और उसे हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी उत्पत्ति हिंसा से हुई है| राजनीतिक सत्ता से उनका तात्पर्य है - राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की क्षमता| जब व्यक्ति स्वयं ही नियमित व आत्मानुशासित हो जाये तो प्रतिनिधित्व की भी जरूरत नहीं होगी| यह स्थिति ज्ञानमय अराजकता की होगी क्योंकि समाज का निर्माण विकेन्द्रीकरण एवं स्वेच्छापूर्ण सहयोग पर आधारित होगा| इसकी विशेषता होगी स्वतंत्रता एवं समानता, जहाँ आखिरी व्यक्ति पहले व्यक्ति के बराबर होगा| यह समाज अहिंसक होगा, समाज में आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होगा, समाज में संरक्षणता होगी जिससे सब कुछ का प्रयोग सभी के हित में होगा| उनकी उस अहिंसक व्यवस्था में कोई भी तन्दरूस्त आदमी, जिसने ईमानदारी से कुछ भी नहीं किया हो, कुछ भी पाने का अधिकारी नहीं होगा|

सत्य का उपासक बिना सम्पूर्ण समर्पण के कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता और यह सम्पूर्ण अहिंसा पालन के द्वारा ही होगा| सत्य में अहिंसा छिपी है और अहिंसा में सत्य, दोनों एक सिक्के के दो रूख हैं| सत्य और अहिंसा का पालन करने वाला परिग्रह नहीं करता, वो केवल अधिक पूंजी का संरक्षण करता है| आज संरक्षणता का सिद्धान्त चाहे कल्पना लगे परन्तु यह भी सच है कि यदि राज्य हिंसा के द्वारा पूंजीवाद को दबाने की कोशिश करेगा तो स्वयं हिंसा में फंस जायेगा और फिर अहिंसा का विकास नहीं होगा| अतः समाज में अहिंसा केवल व्यक्ति का गुण नहीं है अपितु एक सामाजिक गुण भी है| गाँधी जी ने अहिंसा को अर्थव्यवस्था के साथ भी जोडा है| ये उनका विश्वास है कि प्रकृति हर रोज उतना ही पैदा करती है जितना हमारी जरूरत है| लेकिन कुछ लोगों के संग्रह की प्रवृत्ति से अन्य लोगों को अपने हक से वंचित होना पड़ता है - यह भी एक प्रकार की हिंसा है| ऐसी अर्थविद्या जिससे व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि हो, वो पापपूर्ण है| किसी देश के द्वारा दूसरे देश के शोषण की अनुमति या फिर मजदूर को योग्य मेहनताना न देकर, शोषण करना भी हिंसा का दूसरा रूप है| इसके लिये मशीनीकरण व बड़े स्तर का औद्योगिकरण जिम्मेदार है| सच्चा अर्थशास्त्र तो समाजिक न्याय की हिमायत करता है| आर्थिक समानता पूंजी की असामनता के झगड़े को मिटा देगी| गाँधी का विचार है कि यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है तो उसे बहुत

सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना होगा क्योंकि यदि केन्द्रीकरण रहा तो उसे कायम रखने के लिये हिंसा जरूरी हो जाती है| साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध तथा प्रतिद्वन्द्विता मुख्यतः औद्योगिक व्यवस्था का परिणाम है| भौतिकतावादी सभ्यता भी शोषण व हिंसा की जड़ हैं| उन से मुक्ति का मार्ग है आर्थिक समानता, श्रम के लिए रोटी का सिद्धान्त, मशीनों का न्यून उपियोग तथा कुटीर उद्योगों का विकास|

सामाजिक स्तर पर हरिजनों के प्रति भेदभाव, स्त्रियों को शिक्षा, सम्पत्ति आदि अधिकारों से वंछित करना, विधवाओं के प्रति दुराग्रहपूर्ण व्यवहार, बाल-विवाह सभी चूंकि मानव मात्र की समानता व स्वतंत्रता के अधिकार के विरूद्ध है अतः गाँधी इन्हें भी हिंसा के रूप में परिभाषित करते हैं| समानता को गाँधी ने व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दोनों रूप में लिया| जिस समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य जाति, धर्म, सम्पत्ति, रंग के आधार पर भेदभाव हो वह समाज हिंसा पर आधारित माना जायेगा क्योंकि ऐसे में व्यक्ति को आत्मानुभूति का अवसर मिलना संभव नहीं होगा| राष्ट्रीय स्तर पर भी सभी राष्ट्रीय जनसमूह परस्पर समान हैं| जिस प्रकार राष्ट्रीय जीवन में व्यक्तिगत समानता आवश्यक है उसी प्रकार अन्तर्राश्ट्रीय जीवन में राष्ट्रीय स्वतंत्रता व समानता जरूरी हैं| एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्रीय जनसमूह के ऊपर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना हिंसा है; साम्राज्यवादी नीति का द्योतक है| गाँधी जी ने इसे सामाजिक अन्याय मानते हुये समानता की धारणा का निषेध कहा है|

2.4 आतंकवाद एवं गाँधी

यदि विश्व पटल पर घटने वाली घटनाओं का विश्लेषण करें तो सितम्बर 11, 2001 के एकदम बाद गाँधी और अहिंसा के प्रति उनके आग्रह को अनुपयोगी मानते हुये आतंकवाद के विकल्प के रूप में बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया गया| परन्तू दूसरी तरफ प्रतिक्रिया स्वरूप 'आतंक के खिलाफ युद्ध' तथा 'zero percent tolerance to terrorism' जैसी अमरीकी नीति भी आतंकवाद को नियंत्रित करने में असफल रही| दो इस्लामिक राष्ट्रों पर आक्रमण और अमरीकी सैन्य नियंत्रण के पश्चात् भी, जिसमें हजारों अमरीकी सैनिकों के साथ हजार इराकी व अफगानियों की जान गई, एक अन्तहीन इस्लामिक जिहाद् का युद्ध शुरू हो गया| ऐसे में गाँधी और उनके चिंतन को दोबारा देखने और अध्ययन करने की जरूरत है|

यद्यपि आज कुछ परिस्थितियों में नीतिगत रूप में हिंसा का प्रयोग हो जाता है तथापि देखा जाये तो हिंसा का प्रयोग स्वयं अपने आप में आत्मघाती है - प्रयोगकर्ता के लिये भी और जिसके विरूद्ध हिंसा हुई उसके लिए भी| अहिंसा एक षाष्वत सत्य है जो अनादि है - समय व परिस्थिति के सारे बंधनों से मुक्त| हिंसा में मृत्यु है, एक प्रक्रिया का अंत है जबकि अहिंसा अजर अमर है|

जहाँ तक प्रश्न गाँधी जी का है उन्हें आतंकवाद कैसे भी और किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं है, विशेष तौर पर तब जब पूरा विश्व विनाश और विध्वंस के ज्वालामुखी पर बैठा हो| गाँधी की आतंकवाद पर प्रतिक्रिया और टिप्पणी से

स्पष्ट है कि वे एक व्यवहारिक दृश्टिकोण के समर्थक थे| जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आये तो पूरा देश राष्ट्रवादी जन आंदोलन से जूझ रहा था जिसमें शक्ति का व्यापक प्रयोग भी हो रहा था| 1909 में मदन लाल ढींगरा ने लंदन में एक ब्रिटिश अधिकारी की हत्या कर उस घटना को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ा| क्रांतिकारियों का मानना था कि इस प्रकार की घटनाओं से आतंक फैला कर वे ब्रिटिश शासन को उखाड़ने व कमजोर करके भारत छोड़ने के लिये मजबूर करने में सफल हो जायेंगे| 1919 में अमृतसर में, ब्रिटिश सरकार ने देशवासियों के शांतिपूर्ण विरोध को हिंसात्मक तरीके से कुचला| उधर राष्ट्रवादियों में सुभाष चन्द्र बोस बंगाल में तथा पंजाब में गदर पार्टी के सदस्य, विदेशों से हथियार प्राप्त कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे क्योंकि उनका मत था कि केवल हिंसा के द्वारा ही ब्रिटिश सरकार की शक्ति को तोड़ा जा सकता है|

उनकी इस प्रतिक्रिया ने गाँधी के अहिंसा के प्रति विचारों को और अधिक दृढ़ता प्रदान की और उन्होंने क्रांतिकारियों के विचारों को राजनीतिक व्यवहारिकता के आधार पर चुनौती दी| अपना मत स्पष्ट करते हुये गाँधी ने कहा कि छुटपुट की आतंक फैलाने वाली हिंसात्मक घटनाओं से सफलता हासिल नहीं होगी| इसके विपरीत, ब्रिटिश शासन का विरोध, भारतीय राष्ट्रीय चरित्र का हिस्सा बन जाना चाहिए| उनके ऐसे विचार 'हिन्द स्वराज्य' में लिपिबद्ध हैं| इस पुस्तक का उद्देश्य ही आतंकवाद (हिंसा) का विरोध है| गाँधीजी का तर्क था कि संघर्ष हमेशा दो स्तर पर होता है: व्यक्तियों के बीच तथा सिद्धान्तों के बीच| किसी भी विषय पर तर्क करने वाले का अपना मुद्दा होता है और मतभेद एक ही मुद्दे पर अलग-अलग लोगों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण का होता है| अतः मतभेद या संघर्ष को समाप्त करने के लिये ऐसे मतभेदों को समाप्त करना जरूरी है| किसी भी विवाद या संघर्ष के समाधान के लिये अपने साथ-साथ विरोधी के पक्ष को भी जानना बहुत जरूरी है| ऐसे में गाँधी ने 'सत्याग्रह' को सबसे उचित माना है|

गाँधी जी ने स्पष्ट कहा है कि लक्ष्यों की पवित्रता, साधनों के औचित्य को सिद्ध नहीं करती, वरन् अंत में लक्ष्य और साधन एक ही हैं| अतः दोनों की पवित्रता उतनी ही आवश्यक है| अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम किसी भी हद तक गिर जायें यह गाँधीजी को स्वीकार्य नहीं था| अतः क्रांतिकारियों की हिंसात्मक गतिविधियों से यदि भारत स्वतंत्र भी हो जाता है तो भी इस तरह के 'हत्यारों के शासन' से हम कोई भी लाभ प्राप्त नहीं कर पायेंगे| उनके ऐसे विचार हमें आतंकवाद पर उनकी प्रतिक्रिया के करीब लाते हैं| गाँधी ने कभी भी कर्महीनता का पक्ष नहीं लिया और कायरता को नीचता माना| साथ ही उन्होंने कहा कि जहाँ कायरता और हिंसा के बीच चुनाव होगा वहाँ मैं हिंसा का चुनाव करूंगा क्योंकि वीरोचित हिंसा कायरपूर्ण अहिंसा से कहीं बेहतर है| स्पष्ट तौर पर राजनीतिक कारकों से प्रेरित आतंकवाद के विरूद्ध होने के बावजूद वे क्रांतिकारियों के प्रति सख्त नहीं थे| गाँधी का उनके प्रति दृष्टिकोण सहानभूति का था प्रतिशोध का नहीं| उनके अनुसार आतंक का विचार गलत है स्वयं आतंकवादी नहीं|

उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उच्च नैतिक मूल्यों का पक्ष लेते हुये गाँधी ने कहा कि हिंसा केवल प्रतिहिंसा को जन्म देती है| यह तर्क कि 'आतंक का सामना केवल बल व शक्ति से ही हो सकता है' से गाँधी सहमत नहीं थे क्योंकि

यह तो आतंकवादियों के स्तर तक गिरना होगा| ऐसी हिंसा व प्रतिहिंसा समाज के नैतिक चरित्र को भ्रष्ट कर देती हैं| युद्ध या संघर्श में यदि विरोधी को शत्रु ही मान लिया जाये तो आगे बातचीत या समझौते की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती और ऐसे में समस्या सुलझने के स्थान पर उलझ जाती है| इसलिए गाँधी जी ने आतंकवाद को रोकने के लिए सुझाव दिया कहा कि -

- हिंसात्मक कृत्य को मार्ग में रोको, यह प्रयास अहिंसक परन्तु सुस्पष्ट हो;
- आतंकवाद के पीछे छिपे मुद्दों को जानो और समझो तथा उन कारणों को दूर करो;
- उच्च नैतिक मापदण्डों का निर्धारण करो|

2. 5 सारांश

गाँधी जी ने अपने समय में उसी तरह से हिंसा और आतंकवाद का सामना किया था जैसा हम आज अनुभव करते हैं| उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साम्राज्यवादी, राज्यजनित आतंकवाद का अहिंसा के द्वारा सफलतापूर्वक सामना किया| तमाम विरोधों के बावजूद उनका आंदोलन अहिंसात्मक रहा और सफल भी हुआ| अहिंसा और शान्ति ही आखिरकार सफलता का मार्ग खोलती है| उस युग में अहिंसा ही आतंकवाद को नियंत्रित व समाप्त करने का विकल्प है|

गाँधी जी के सिद्धान्तों के बारे में प्रश्न किया जाता है कि क्या ये वास्तव में सफल होंगे? आलोचकों का यह प्रश्न जितना उचित है उतना ही यह प्रश्न भी प्रासंगिक है कि क्या पिछले दशक के दौरान हिंसात्मक साधनों के प्रयोग के द्वारा हम आतंकवाद को मिटाने में सफल हुए हैं? पिछले कुछ वर्षों का इतिहास साक्षी है कि ऐसे कार्यों से मध्य पूर्व में जिहादी और आतंककारी गतिविधियाँ बढ़ी हैं| आज ये न केवल इस्लामिक राष्ट्रों तक सीमित है वरन् इनका प्रभाव वैश्विक है| कुछ समय पूर्व उत्तरी आयरलैण्ड में जिस तरह से अहिंसक साधनों (बातचीत व समझौतों) के द्वारा सदियों पुराने आतंकवाद को समाप्त करने में सफलता मिली वह गाँधीजी के अहिंसक विचारों की सार्थकता व व्यवहारिकता को प्रमाणित करता है| गाँधी जी का किसी भी विषय के विवाद या मतभेद पर यही दृष्टिकोण रहा है कि दोनों पक्षों को ध्यानपूर्वक सुना व समझा जाये| सवाल यह कि क्या ऐसी संवेदनशील प्रक्रिया कश्मीर या अरब इजराइल समस्या के समाधान के लिये नहीं अपनायी जा सकती? शायद ऐसा किया जाना सम्भव है, परन्तु उसके लिये अहिंसा में सामान्य विष्वास की जरूरत हैय जरूरत है संकल्प, दृढ़ता तथा उसे लागू करने की प्रबुद्ध राजनीतिक इच्छा शक्ति की क्योंकि हिंसा का प्रयोग सफलता की कोई गारण्टी नहीं देता|

जहाँ तक वैश्विक स्तर पर जिहादी युद्ध का प्रश्न है, यह न तो राज्य को प्राप्त करने की लड़ाई है और न ही उनकी कोई भौगोलिक सीमा निर्धारित है और न ही जिहादियों का कोई राजनीतिक स्वरूप निर्धारित है| जिहाद, विचार और विश्व व्यवस्था के बीच संघर्ष है, अर्थात् एक ही वस्तु को अलग-अलग नजरिए से देखने का परिणाम है| यहाँ शत्रु व्यक्ति

नहीं, विचारधारा है| ये विचार हमें गाँधी और उनके चिन्तन के बहुत करीब ले आती है और उसके सही होने का भी प्रमाण देते हैं| गाँधी के विचारों को आज के युग में कसौटी पर यदि जाँचे तो अन्य घटनाओं की भांति, यहाँ भी, वे हिंसात्मक कृत्य को बीच में ही रोकने के पक्षधर थे| उनका तर्क था कि वैधानिक जाँच के बाद किसी भी आतंकवादी कार्य को घटित होने से रोका जा सकता है| उदाहरणतः मध्यपूर्व एशिया में हिंसा और आतंककारी घटनाओं का विश्लेषण यदि हम करें तो यह नतीजा सामने आता है कि यहाँ पारस्परिक मुसलमानों की इच्छा है कि उन्हें अमरीकी व यूरोपीय नियंत्रण से मुक्ति मिले, वहीं उदारवादियों का यह मत है कि उनकी सांस्कृतिक विविधता व मूल्यों को बनाये रखते हुए लोकतांत्रिक शासन की स्थापना हो| इन उद्देश्यों कि पूर्ति के लिए छोटे, मगर अहम, परिवर्तन किये जाने जरूरी है| ऐसा होने से अतिवादी व चरमपथियों का प्रभुत्व स्वतः घट जायेगा और हिंसात्मक आतंकवादी गतिविधियों पर नियंत्रण लगाने में भी सफलता हासिल होगी|

आतंकवाद को एक समय में हिंसक उन्माद की स्थिति से जोड़कर एक मनोवैज्ञानिक व्याधि माना गया था| बाद में 'हमास' व 'अलकायदा' जैसे संगठनों के द्वारा आत्मघाती हमलों की बढती घटनाओं से यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में ऐसे हमले में धार्मिक हैं? क्या गरीबी की त्रासदी किसी को वाकई आतंकारी बना सकती है या पूर्ण रूप में ना उम्मीदी कि स्थिति मनुष्य को आतंकवाद की ओर लाती है| सन् 2004 की एक रिपोर्ट में कहा गया कि गरीबी, जनसंख्या, मध्यपूर्व एशिया के संघर्श के अतिरिक्त वैश्विक स्तर पर धार्मिक पुर्नाजागरण आतंकवाद का अहम कारण है| इन कारणां के अलावा दो अन्य बिंदू महत्वपूर्ण हैं:

- आतंकवादियों कि अपने प्रति अन्याय की भावना
- यह विश्वास की हिंसा के द्वारा ऐसे अन्याय का प्रतिकार सम्भव है

अतः कोई भी देश व समाज आज इनसे सुरक्षित नहीं और आतंकवाद सभी के लिए चिंता का विषय है| गरीबी, बेरोजगारी, अन्याय, भ्रष्टाचार व शिक्षा की कमी मूलतः इस के जिम्मेदार कारक तत्व माने जाते हैं| गाँधी के चिंतन में इन सारी समस्याओं का काफी हद तक समाधान है| उनके आर्थिक विकेन्द्रीकरण तथा गाँवों की आत्मनिर्भरता के विचार जहाँ गरीबी व रोजगार की समस्या का विकल्प है वहीं सामाजिक समानता, राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण तथा बुनियादी शिक्षा का सिद्धांत अन्याय, भ्रष्टाचार व अशिक्षा का समाधांन है| एक पूर्णतः आत्मनिर्भर ऐच्छिक व परस्पर सहयोग पर आधारित दलविहीन लोकतंत्र समरसता का वो स्वरूप है जहाँ हिंसा का कोई महत्व नहीं हैं| विध्वंस तथा विघटन के इस दौर में गाँधीजी का चिंतन ही मार्गदर्शन करता है अन्यथा इतिहास में इक्कीसवीं शताब्दी को मानव सभ्यता के अंत की शुरूआत के रूप में जाना जायेगा|

2.6 अभ्यास प्रश्न

1. आतंकवाद की परिभाषा करते हुए भारतीय राजनीति के समक्ष चुनौतियों की व्याख्या करें|
2. आतंकवाद की समस्या के क्या समाधान हो सकते हैं? सुझाव दीजिए|
3. क्या गाँधी जी की अहिंसा की अवधारणा आतंकवाद की समस्या को सुलझाने मे सक्षम है? स्पष्ट करें|

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महात्मा गाँधी, ग्राम स्वराज्य, नवजीवन प्रकाषन मंदिर, अहमदाबाद
2. महात्मा गाँधी, सर्वोदय, नवजीवन प्रकाषन मंदिर, अहमदाबाद
3. महात्मा गाँधी, मेरे सपनो का भारत, नवजीवन प्रकाषन मंदिर, अहमदाबाद
4. अनिल दत्त मिश्रा, चेलेन्जस ऑफ 21स्ट सेंट्यूरी: गाँधीयन ऑल्टरनेटिव्स, मित्तल पब्लिशर, 2003
5. प्रेमा कुमार, गाँधी: ए ह्यूमेनिस्ट मॉडल, आकांशा पब्लिशर, 2010

इकाई – 3

गाँधी और साम्प्रदायिकता

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देष्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संकल्पना

3.3 भारत में साम्प्रदायिकता: उद्भव व विकास

3.4 महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयास

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त

- आप साम्प्रदायिकता की अवधारणा को समझ सकेंगे|
- भारत में साम्प्रदायिकता के उदय व विकास को जान सकेंगे|
- साम्प्रदायिकता पर गाँधी के दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे|
- साम्प्रदायिकता के निवारण हेतु गाँधीय साधनों की उपादेयता को समझ सकेंगे|

3.1 प्रस्तावना

साम्प्रदायिकता वर्तमान वैश्वीकृत एवं उदारीकृत युग में भी भारत के समक्ष प्रमुख चुनौती के रूप में अडिग है| जिससे भारत की समृद्धि, शांति, स्थिरता एवं विकास के मार्ग में निरंतर अवरोध की स्थिति बनी रहती है| साम्प्रदायिकता की समस्या भारत में औपनिवेशिक शासन की देन है| यह एक कृत्रिम रूप से निर्मित सामाजिक समस्या थी जिसे अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की स्थिरता हेतु राजनीतिक रंग दिया और उसका लाभ उठाया| भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा उत्पन्न की गई राजनीतिक चेतना व राष्ट्रवाद की भावना को क्षीण करने हेतु ब्रिटिशों द्वारा मुस्लिम नेताओं को अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में प्रोत्साहित किया गया जिससे साम्प्रदायिकता की भावना पृथकता व अलगाव में परिवर्तित हो गई परिणामस्वरूप भारत का विभाजन हुआ किंतु इसके बावजूद साम्प्रदायिकता की भावना समाप्त नहीं हुई अपितु राष्ट्रीय एकता के समक्ष एक शाश्वत समस्या बनी हुई है|

3.2 संकल्पना

साम्प्रदायिकता सम्प्रदाय शब्द से निर्मित है जिसका साधारण अर्थ है-अपने सम्प्रदाय से आबद्धता अथवा पहचान| यह साम्प्रदायिकता का सकारात्मक अर्थ है| किंतु जब साम्प्रदायिकता एक ऐसी प्रवृति बन जाती है जिसमें अपने धर्म या सम्प्रदाय विशेष से कट्टर लगाव रखना तथा उसके हितों को राष्ट्रीय हितों से सर्वोपरि मानना व उसके लिए संघर्ष करना सम्मिलित हो तो साम्प्रदायिकता विभाजनकारी एवं नकारात्मक प्रवृति के रूप में उभरती है| विंसेट स्मिथ के अनुसार, "एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषायी समूह को एक ऐसी पृथक सामाजिक एवं राजनीतिक इकाई मानता है जिसके हित अन्य समूहों के हितों से पृथक होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं| ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता कहा जायेगा|''

यहाँ यह स्पष्ट है कि किसी धर्म को स्वीकार कर आचरण करना साम्प्रदायिकता नहीं है| रशीदुदीन खान के अनुसार कर्मकांड में लिप्त होना, अंधविश्वास, अज्ञानता, जादू-टोना पर विश्वास आदि साम्प्रदायिकता में नहीं आते| साम्प्रदायिकता अज्ञात भय अथवा पक्की परम्पराओं के कारण अपने व्यवहार और अपने सम्बन्ध में व्यक्ति की अतार्किक, अवैज्ञानिक और पुरानी सोच मात्र है| साम्प्रदायिकता आधुनिकीकरण के दौर से गुजर रहे बहुल समाज में एक समुदाय द्वारा अपनी पहचान को कायम रखने हेतु राजनीतिक मुखरता का परिणाम है| आमतौर पर यह संकीर्ण, स्वार्थी, विभाजनकारी तथा आक्रामक दृष्टिकोण से युक्त किसी धार्मिक समूह से सम्बद्ध होती है| ऐसे समाज में राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण बनने तथा राजनीतिक सौदेबाजी के लिए धर्म या संस्कृति का राजनीतिकरण हर समुदाय चाहे वो बहुसंख्यक हो या अल्पसंख्यक सबसे आसान रास्ता बन जाता है|

संक्षेप में साम्प्रदायिकता एक ऐसी राजनीतिक रणनीति है जो राष्ट्रवाद को बहुजातीय, बहुधार्मिक एवं बहुभाषी समुदायों पर आक्रमण के रूप में परिभाषित कर विरोध करती है और अपने समुदाय के हितों व अन्य समुदाय के हितों को परस्पर विरोधी मानकर उन्हें प्राप्त करने हेतु असंवैधानिक व आक्रामक साधनों का प्रयोग करती है|

3.3 भारत में साम्प्रदायिकता: उद्भव व विकास

सर्वधर्म समभाव व गंगाजमुनी संस्कृति के प्रतीक भारत को साम्प्रदायिकता की आग में झौंकने का घृणित कृत्य औपनिवेशिक शासन के दौरान महज निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु किया गया था| हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक विरोध की घटना और अलगाव का आंदोलन ब्रिटिश शासनकाल में ही अस्तित्व में आया| सर जाॅन मेनार्ड के अनुसार, ''बेशक यह सच है कि यह फूट और विघटन वृत्ति न होती, तो ब्रिटिश सत्ता भारत में पैर नहीं जमा सकती थी और न इस समय टिक सकती थी| हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य उसी विघटन की वृत्ति का एक लक्षण है| यह भी सच है कि दोनों समुदायों के बीच वैमनस्य ब्रिटिश राज में शुरू हुआ, ...वरना पद्धति हिन्दु और मुस्लिम जनता शांति के साथ अपने-अपने उन्हीं देवस्थानों में साथ-साथ शांतिपूर्वक पूजा करती रही थी|''

1600 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के समय भारत की सत्ता हिन्दु-मुस्लिम शासकों के अधीन थी| अंग्रेजों ने भारत में अपने पैर टिकाने हेतु दोहरी नीति अपनाई| उन्होंने हिन्दुओं को कम्पनी में नौकरियों में प्रोत्साहित कर मुसलमानों के प्रति उपेक्षित रवैया अपनाया जिसका परिणाम बहावी आंदोलन के रूप में मुस्लिम असंतोष का अभिव्यक्तिकरण था| 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हिंदु-मुस्लिम एकता अंग्रेजों को खतरा लगने लगा| अतः उन्होंने ''फूट डालो और राज करो'' की कुटिल नीति अपनायी| अब अंग्रेजो की नीति पूर्णतः मुसलमानों को संतुष्ट करने तथा भारतीय जनता के दो फाड़ करने की रही ताकि उनके द्वारा किये जा रहे सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरूद्ध उत्पन्न प्रखर विरोध व असंतोष को दबाया जा सके| इस नीति के परिणाम स्वरूप ''मुहम्मडन-एंग्लो-औरियण्टल डिफेन्स एसोसिएशन' की स्थापना हुई| लार्ड कर्जन ने मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति के तहत 1905 में साम्प्रदायिकता आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया| 1906 में मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा हेतु ढाका में 'ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग' की स्थापना की गई| इसी लीग की मांग पर 1909 में मार्ले-मिण्टो सुधारों में साम्प्रदायिक आधार पर पृथक चुनावों की व्यवस्था का समावेश किया गया| यहीं से भारतीय राजनीति के दुखद अध्याय का प्रारंभ हो गया| 1916 के लखनऊ पैक्ट में लीग का अस्तित्व मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार किया गया जो पूर्णतः गलत कदम था| इस नीति पर चलते हुए 1919 के मोण्टेस्क्यू-चेम्सफोर्ड एक्ट द्वारा न केवल मुसलमानों को अपितु सिक्खों, यूरोपियनों और आंग्ल भारतीय समुदायों के लिए भी पृथक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपना कर साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का विस्तार किया गया|

राष्ट्रीय नेताओं द्वारा ऊपरी तौर से एकता बनाने की नीति ने भी साम्प्रदायिकता को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई| जब कभी कोई धार्मिक मतभेद होता तो विभिन्न समुदायों के शीर्ष नेताओं से विचार विमर्श किया जाता था जो उनके वास्तविक नेता कभी नही थे| जबकि जन साधारण को उपेक्षित रखा जाता था| इस नीति का परिणाम रहा कि साम्प्रदायिक नेतृत्व सामुदायिक समूहों को अपने स्वार्थ विशेषकर राजनीतिक स्वार्थ साधने हेतु मरने-मारने के लिए प्रोत्साहित करते रहे|

इस प्रकार औपनिवेशक शासन की नीतियों एवं राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा इनका सामाजिक व पंथनिरपेक्ष आधार पर दृढता से मुकाबला करने में असफलता ने साम्प्रदायिकता की आग को ओर अधिक प्रज्जवलित कर दिया जिसका सर्वाधिक गम्भीर परिणाम भारत का विभाजन था और जिसकी त्रासदी भारत आज भी झेल रहा है|

3.4 गाँधी और साम्प्रदायिकता

अहिंसा गाँधी का जीवन दर्शन था और सत्य का साक्षात्कार उनकी सार्थकता| विचार के स्तर पर सबके साथ सद्भाव एवं कर्म के स्तर पर सबकी सेवा ही गाँधी की अहिंसा का मूल तत्व था| साम्प्रदायिकता एकता भी मानव मैत्री की अन्य प्रवृतियों की तरह गाँधी की अहिंसा का जीवंत अंग रही| गाँधी कहा करते थे कि साम्प्रदायिक विद्वैष यदि समाप्त नहीं होता तो वह उनकी अहिंसा की विफलता ही नही अपितु जीवन की निरर्थकता भी है|

महात्मा गाँधी के अनुसार साम्प्रदायिकता की समस्या भारत के लिए नवीन है| वे इसके लिए अंग्रेजी शासन को जिम्मेदार मानते थे जो भारत में साम्प्रदायिक असामंजस्य के माध्यम से अपने साम्राज्य को स्थायी बनाना चाहते थे| महात्मा गाँधी ने स्पष्ट लिखा है, "क्या जब ब्रिटिश शासन नहीं था और अंग्रेज लोग यहाँ दिखायी नही पड़ते थे, तब हिंदु-मुसलमान और सिख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते रहते थे? हिंदु इतिहासकारों और मुसलमान इतिहासकारों ने उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि उस समय हम बहुत हद तक हिल-मिलकर और शांतिपूर्वक ही रहते थे और गांवों में तो हिंदु मुसलमान आज भी नहीं लड़ते, उन दिनों वे बिल्कुल नहीं लडते थे| यह लड़ाई-झगडा पुराना नहीं है| मैं तो हिम्मत के साथ यह कहता हूँ कि वह ब्रिटिश शासकों के आगमन के साथ ही शुरू हुआ है|"

गाँधी का अहिंसा में अटूट विश्वास उन्हें हर समय साम्प्रदायिक हिंसा के सम्मुख अडिग रखता था| उनका मानना था कि साम्प्रदायिक एकता के लिए अहिंसा संजीवनी है किंतु यह कायरों की नहीं दुर्बल हृदयों की नहीं अपितु वीरों की, सिर पर कफन बांध कर चलने वालों की अहिंसा होनी चाहिए| जिसने अहिंसा को उसके सम्पूर्ण शौर्य में अपने भीतर उतारा तथा अपने कर्म में प्राणवंत किया हो| महादेव देसाई के शब्दों में "व्यक्ति समाज, देश एवं विश्व की ऐसी कौन-सी व्याधी है, हिंसा है जो अहिंसा को समर्पित ऐसे बलबीर के सम्मुख अपनी हठ कायम रख सके|"

गाँधी ने साम्प्रदायिक एकता को व्याखित करते हुए कहा था, ''साम्प्रदायिक एकता दिलों की अटूट एकता का नाम है और जो आदमी राष्ट्रीयता की भावना को समझते हैं वह एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते| यदि ऐसा करते हैं तो वह एक राष्ट्र समझ जाने के योग्य नहीं है| दुनिया के किसी भाग में भी राष्ट्रीयता और धर्म पर्यायवाची शब्द नहीं है| न कभी ऐसा भारत में हुआ है|"

महात्मा गाँधी का कहना था कि अगर हिन्दुस्तान में सभी अपने धर्म का पालन करें तो सारा हिन्दुस्तान खुश हो सकता है| उनके अनुसार आवश्यकता यह नहीं है कि एक धर्म हो, बल्कि यह है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो| गाँधी ने तो बहुत पहले घोषित कर दिया था कि, "मै ऐसी आशा नहीं करता हूँ कि मेरे

सपनों के आदर्श भारत में केवल एक ही धर्म रहेगा, यानी वह सम्पूर्णतः हिन्दु या ईसाई बन जायेगा| मैं तो यह सोचता हूं कि वह पूर्णतः उदार और सहिष्णु बने और उसके सब धर्म साथ-साथ चलते रहें|''

गाँधी का मानना था कि साम्प्रदायिक हिंसा का मुख्य कारण धर्म के सार तत्वों को ग्रहण नहीं कर पाना है| राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु धार्मिक कट्टरपन, अज्ञानता और अंधविश्वास के कारण एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के प्रति अमानवीय व्यवहार करते हैं| इसलिए हम धर्म के नाम पर धार्मिक उन्माद में हिंसक हो जाते हैं| इसके निदान हेतु गाँधी हमें धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने एवं ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल देते है| उनके अनुसार सभी धर्म एक ही स्थान पर पहुंचने के अलग-अलग रास्तें हैं| अगर हम एक ही लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं तो अलग-अलग रास्ते में क्या हर्ज है? वास्तव में जितने मनुष्य है उतने ही धर्म है| धर्म अत्यंत व्यक्तिगत वस्तु है| धर्म का संचार, ज्ञान, मत, पंथों के बीच की दीवारों को हटाकर सहिष्णुता उत्पन्न करता है|'' गाँधीजी सब धर्मों के गहरे अध्ययन के बाद इस परिणाम पर पहुंचे थे कि सभी धर्मों के बुनियादी सिद्धान्त एक हैं, अंतर रूढियों और कर्मकाण्ड और ऊपरी रीति रिवाजों में है| परंतु रूढियाँ और कर्मकाण्ड हमेशा बदलते रहते हैं पर धर्म के बुनियादी सिद्धांत कभी नहीं बदलते| सभी धर्म यह उपदेश देते हैं कि दुनिया में सब इन्सान भाई-भाई हैं एक इन्सान बराबर-बराबर है, न उनमें कोई बड़ा है न छोटा न ऊँच हे न नीच है| प्रेम से दुनिया चलती है| ईष्र्या, घृणा और बदले की भावना मनुष्य को मानवता के रास्ते से हटाकर जंगलीपन की ओर ले जाती है| दूसरों को तकलीफ देना, पीड़ा पहुंचाना, किसी पर अत्याचार और जबरदस्ती करना-यह इंसानियत का नहीं, हैवानियत का काम है| सभी धर्मों ने बुराई का बदला बुराई से नही भलाई से देने को कहा है| जहां भलाई है, वहा प्रेम है, जहां प्रेम है वहा अहिंसा, जहाँ अहिंसा है वहां सच्चाई है और जहां सच्चाई है वहां धर्म का राज्य है|

अतः साम्प्रदायिक एकता सिर्फ दूसरों के साथ आत्मीयता का अनुभव करने, उसके सुख-दुख में सहभागी बनने और एक-दूसरे के धर्म के प्रति मन में प्रेम और आदर की भावना को संजोने और विकसित करने से ही प्राप्त की जा सकती है|

गाँधी धर्म परिवर्तन का विरोध करते थे| उनके अनुसार थोड़े या बहुत अंशों में सभी धर्म सच्चे है| सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वर से हुई है, परंतु सब धर्म अपूर्ण हैं-क्योंकि वे अपूर्ण मानव-माध्यम द्वारा हम तक पहुँचे है| सच्चा शुद्धि आंदोलन या परिवर्तन यह होना चाहिए कि हम सब अपने अपने धर्म में रहकर पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करे| इस प्रकार की योजना में एक मात्र चरित्र ही मनुष्य की कसौटी होगा| अगर एक धर्म से निकल कर दूसरे में चले जाने से कोई नैतिक उत्थान न होता हो तो धर्म परिवर्तन का क्या अर्थ है? दबाव में आकर धर्म परिवर्तन अनुचित है| लेकिन यह स्वेच्छा से कोई ऐसा करना चाहे तो वह कर सकता है| फिर भी यह बहुत आसान नहीं है| गाँधी के अनुसार, ''क्या मजहब वस्त्र के समान सरल चीज है कि मनुष्य जब चाहे उसे पहन ले और जब चाहे उसे बदल ले? मजहब का सम्बन्ध कई पीढ़ियों से रहता है|धर्म परिवर्तन से एकता नहीं मिलती है वरन् इससे धर्म विरोधी मनोवृत्तियाँ पनपती है|

अतः हमारी प्रार्थना है कि हिन्दु अपने को अच्छा हिंदु, मुसलमान अपने को अच्छा मुसलमान और ईसाई अपने को अच्छा ईसाई साबित करने का प्रयास करे| यह एक साथ मिलजुल कर रहने की कुंजी ही बुनियादी सच्चाई है|"

अतः गाँधी की दृष्टि में दबावकारी साधनों से किया गया धर्म परिवर्तन अनुचित है इसलिए आवश्यकता संसार के महान धर्मों के अनुयायियों में सजीव और मित्रतापूर्ण सम्पर्क स्थापित करने की है न कि हर सम्प्रदाय द्वारा दूसरे धर्मों की अपेक्षा अपने धर्म की श्रेष्ठता जताने की व्यर्थ कोशिश करके आपस में संघर्ष पैदा करने की| ऐसे मित्रतापूर्ण संबंध के द्वारा हमारे लिए अपने अपने धर्मों की कमियाँ और बुराईयाँ दूर करना सम्भव होगा|

गाँधी की दर्शन का केन्द्र बिंदु मनुष्य है इसलिए उन्हें मानवतावादी विचारकों की श्रेणी में रखा गया है| उनके अनुसार मनुष्य में सद्गुण व दुर्गुण दोनों ही विद्यमान रहते हैं| सच्चा मानव वही है जिसमें मानवोचित गुण व्यवस्थित हों| गाँधी के अनुसार इन्हीं मूल्यों और गुणों को विकसित करके साम्प्रदायिक एकता को प्रस्थापित किया जा सकता है| नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतार कर उन्हें आचरण के माध्यम से अभिव्यक्ति कर के ही मानवता घृणा व द्वेष पर आधारित मजहबी हिंसा व तनाव से मुक्ति पा सकती है| गाँधी के अनुसार, "जब तक मनुष्य भय, घृणा और द्वेष के धरातल से ऊपर नहीं उठेगा तब तक साम्प्रदायिक सौहार्द और दोस्ती का वातावरण बनाने के लिए भय, द्वेष और घृणा जो उसके दुश्मन हैं, की हत्या जरूरी है|"

गाँधीजी धर्म व राजनीति को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित मानते है इसी कारण वे कहते हैं कि राजनीति को धर्म से पृथक नही किया जा सकता| यहाँ धर्म का अर्थ सम्प्रदाय, कर्मकाण्ड या संस्कारवाद अथवा हिन्दुधर्म, इस्लाम या जैन धर्म आदि नहीं है अपितु ईश्वर और सत्य में विश्वास और धर्म को जीवन को दिशा देने वाले तत्व के तौर पर मानने का पारम्परिक विश्वास है| जब उन्होंने धर्म की बात की तो उसका अर्थ नैतिकता और मूल्यों में विश्वास है और वही धर्म उनके पूरे जीवन का मूल आधार था|

गाँधी ने यह भी बार-बार कहा था कि सभी धर्मों के आधारभूत मूल्य एक ही हैं और यह भी कहा था कि भगवान के लिए धर्म और मूल्यों को एक ही ना समझे| इसी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने ईश्वर सत्य है के कथन को 'सत्य ही ईश्वर है' में बदल दिया| मगर बाद में जब उन्होंने देखा कि हिंदु और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक धर्म का इस्तेमाल लोगों को राजनीतिक तोर पर विभाजित करने और उनमें साम्प्रदायिकता व घृणा फैलाने का कार्य बहुत सुनियोजित तरीके से कर रहे हैं और धर्म पर आधारित राज्य की मांग भी कर रहे है तो उन्होंने अपनी इन व्याख्याओं को अर्थात् धर्म और राजनीति के मध्य सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित किया| उन्होंने कहा कि विभिन्न धर्मों को राजनीति से पृथक रहना चाहिए| गाँधी का कहना था कि "धर्म को यथार्थ के रूप में एक निजी सरोकार और मनुष्य व ईश्वर के बीच संबंध के तौर पर स्वीकार किया जाना चाहिए|" 1947 में गाँधी ने कहा, "धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है और इसे राजनीति या राष्ट्र के मामलों से नहीं जोड़ा जाना चाहिए|"

गाँधी ने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में पदार्पण से लेकर मृत्युपर्यन्त तक हिन्दु-मुस्लिम एकता हेतु भागीरथ प्रयास किये| उनका कहना था कि, "मैं हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्यासा हूँ क्योकि मैं जानता हूँ कि बिना उसके सच्चा स्वराज्य हो ही नहीं हो सकता|" गाँधी एकता में विश्वास करते थे न कि यूनियन में| हिंदु और मुसलमान मिलकर एक नहीं हो सकते क्योंकि उनके सामाजिक और धार्मिक जीवन में फर्क है| गाँधी उनकी विशिष्टता और पहचान मिटाना नहीं चाहते थे, अपितु दोनों समुदायों में एकता स्थापित करना चाहते थे जो समझौतों और सद्भावना से ही संभव है| उन्होंने साम्प्रदायिकता की उस बीज धारणा को भी गलत ठहराया कि हिन्दु और मुसलमानों के राजनीतिक और आर्थिक हित इसलिए अलग हैं क्योंकि उन दोनों के धर्म पृथक हैं| गाँधीजी ने कहा, "राजस्व, सफाई, पुलिस, न्याय और सार्वजनिक वाहनों के इस्तेमाल के मामले में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच क्या टकराव हो सकता है| मतभेद केवल धार्मिक आचरण और धर्म के पालन के तरीकों में हो सकता है| मगर एक धर्म निरपेक्ष राज्य का उससे कोई लेना-देना नहीं है|" गाँधीजी के अनुसार साम्प्रदायिकता हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक मिथ्याबोध और असहिष्णुता के गर्भ से उत्पन्न होती है क्योंकि दोनो समुदायों के मध्य धार्मिक भिन्नता है| अतः तनाव और संघर्ष उत्पन्न होते हैं| साम्प्रदायिक दंगों में धार्मिक स्थलों की तोड़-फोड़ की जाती है और उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचायी जाती है| गाँधीजी यह मानते थे कि दबाव डालकर या जोर-जबरदस्ती करके हिंदू गोवध बंद नहीं करा सकते और न ही मुसलमान मस्जिद के सामने संगीत पर रोक लगा सकते हैं| इसे अनुनय-विनय से ही रोका जा सकता है|

गाँधी ने सत्याग्रह की तकनीक का प्रयोग न केवल अंग्रेजो को भारत से उखाड फैकने के लिए वरन् साम्प्रदायिक संघर्ष को रोकने के लिए भी किया| उनके अनुसार हिंसात्मक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने पर सत्याग्रह रूपी साधन का प्रयोग कर शांति स्थापित की जा सकती है| हिंसा की स्थिति उत्पन्न होने पर यदि एक धार्मिक समुदाय दूसरे का सहयोग ना करे, सहिष्णुता का परिचय दे और स्वयं कष्ट सहने के लिए तैयार हो तो दूसरे समुदाय को आगे झुकना पड़ेगा और शांति स्थापित हो जाएगी|

गाँधी साम्प्रदायिक एकता हेतु सत्याग्रह के एक अंग सविनय अवज्ञा को भी प्रयोग में लाने की बात करते हैं| उनके अनुसार अनैतिक कानूनों को सविनय भंग करना सविनय अवज्ञा है अर्थात् जब ऐसे कानून जो अनुचित एवं समाज के हित के विपरीत होते हैं उनका विरोध एवं अवहेलना करना सत्याग्रही का पुनीत कर्तव्य है| प्रत्येक धार्मिक समुदाय के कुछ विशिष्ट नियम और कानून होते हैं| ऐसे नियम जो समाज के लिए अहितकर हों उन्हे सविनय तोड़ा जा सकता है| उपवास सत्याग्रह प्रविधि का अंतिम अस्त्र है| जब सभी रास्ते बंद हो जाते हैं तो अहिंसा के पुजारी उपवास का प्रयोग करते है| गाँधी के अनुसार, "जब मानव-बुद्धि कुंठित हो जाती है और चारों-तरफ अंधकार नजर आता है तब अहिंसा का पुजारी उपवास करता है| उपवास से प्रार्थना की भावना तीव्र होती है|" गाँधीजी ने स्वयं भी तीन विशेष अवसरों (1926, 1947, 1948) पर उपवास की सफलता को असंदिग्ध रूप से स्थापित किया|

गाँधीजी ने साम्प्रदायिकता एकता एवं सद्भाव स्थापित करने हेतु एक धर्म निरपेक्ष राज्य की आवश्यकता पर बल दिया| महात्मा ने स्पष्ट कहा था कि, "बेशक, राज्य धर्म-निरपेक्ष होना चाहिए| उसमें रहने वाले हर नागरिक को बिना किसी रूकावट के अपना धर्म मानने का हक होना चाहिए| जब तक वह मेरे देश के कानून को मानता है| हुकूमत तो सब लोगो के लिए बनाई है|" उन्होंने कहा कि अपने धर्म पर मेरा अटूट विश्वास है| मैं उसके लिए अपने प्राण दे सकता हूँ| लेकिन वह मेरा निजी मामला है| राज्य को उससे कुछ लेना-देना नहीं है| राज्य हमारे लौकिक कल्याण, स्वास्थ्य, आवागमन, विदेशों से संबंध, करेंसी (मुद्रा) आदि की देखभाल करेगा, लेकिन हमारे या तुम्हारे धर्म की नहीं| धर्म हर एक का निजी मामला है| गाँधी के अनुसार, "आजाद हिन्दुस्तान में राज्य हिन्दुओं का नही, बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदाय के बहुमत पर नहीं बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा| स्वतंत्र हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर ही चुने जायेंगे| धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए|"

3.6 महात्मा गाँधी द्वारा हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयास

गाँधीजी ब्रिटिश राज की 'बाटों और शासन करो' की नीति से भारतीय राजनीति में प्रवेश करने से पूर्व ही भलीभांति परिचित थे| इसलिए मार्च 1920 में जब उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम की बागडोर अपने हाथ में ली तो गाँधी ने अपने राजनीतिक कार्यों में सर्वप्रथम स्थान हिन्दु-मुस्लिम एकता को दिया| खिलाफत आंदोलन को गाँधीजी ने हिन्दु-मुस्लिम एकता के रूप में स्थापित किया| उन्होंने स्वयं कहा कि "यदि शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलन न्याय स्थापित करने में असफल होता है तो मैं इस्लाम की पवित्र पुस्तकों में बताये मार्ग पर चलने का पूर्ण समर्थन करता हूँ|" जब भारतीय मुसलमानों ने अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया तब भी गाँधीजी ने साम्प्रदायिक एकता को बनाये रखने के लिए हृदय से उस आंदोलन को स्वीकार किया|

सन् 1921 में स्वयंसेवकों के प्रतिज्ञा पत्र में अहिंसा के बाद जो सबसे पहली शपथ थी वह यह थी कि, "मैं भारत में रहने वाले सब सम्प्रदायों-हिन्दु, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी और भारत में बसने वाली सब जातियों की एकता को शक्तिशाली बनाने में विश्वास करता हूँ| मैं इस एकता की हमेशा कोशिश करूंगा|"

गाँधी ने साम्प्रदायिक उन्माद को उपवास के माध्यम से शांत करने का प्रयास किया| 18 सितम्बर 1926 को दिल्ली, गुलमर्ग, लखनऊ और शाहजहांपुर में साम्प्रदायिक दंगों के विरोध में 21 दिनों का उपवास किया| उनका मानना था कि इससे आत्म शुद्धि होती है और सामुदायिक एकता व सद्भाव को बनाए रखने में मदद मिलती है|

सन् 1930 के सत्याग्रही प्रतिज्ञा पत्र में गाँधी द्वारा इस बात का स्पष्ट आदेश था कि, ''कोई सत्याग्रही जानबूझकर साम्प्रदायिक झगडे का कारण नहीं बनेगा| साम्प्रदायिक दंगे की सूरत में वह किसी की तरफदारी न करेगा| जिस तरफ न्याय होगा उसकी सहायता करेगा| अगर वह हिंदू है तो मुसलमानों और दूसरे सम्प्रदायों के साथ उदारता का व्यवहार

करेगा और यदि उन पर हिन्दू हमला करेंगे तो उनकी रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान करने से न हिचकेगा| यदि हिन्दुओं पर हमला होगा तो मन में बिना बदले की भावना लाये हिन्दुओं की रक्षा में अपने प्राणो की बलि चढा देगा| वह अपनी पूरी ताकत से हर ऐसी स्थिति को रोकेगा जो साम्प्रदायिक दंगे का कारण बन सकती है|'' ऐसी ही आशा प्रत्येक मुसलमान, सिख व ईसाई सत्याग्रही से भी की गई थी| गाँधीजी ने हिंदु धर्म व इस्लाम धर्म तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य सद्भाव व सौहार्द बनाने हेतु अनेक क्रियात्मक कदम उठाये| रोमां रोला ने लिखा है, "20 नवम्बर को गाँधीजी ने 'नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ गुजरात' स्थापित की थी हिन्दुओं का हिन्दुधर्म और मुसलमानों का इस्लाम, दोनों पर ही यह युनिवर्सिटी आधारित थी| इसका ध्येय भारत की भाषाओं की रक्षा करके उन्हें राष्ट्रीय भावना का स्त्रोत बनाना था| गाँधीजी को पूर्ण विश्वास था कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन पश्चिमी विज्ञान के अध्ययन से कम आवश्यक नहीं था| संस्कृत, अरबी, फारसी, प्राकृत, पाली और मागधी के विस्तृत कोष का पूर्ण अध्ययन के आधार पर नई भारतीय सभ्यता की सृष्टि करना है| यह नई सभ्यता स्वभावतः स्वदेशी ढंग में होगी जिसमें प्रत्येक सभ्यता को अपना उचित स्थान मिलेगा और कोई एक अकेली सभ्यता किसी दूसरी सभ्यता पर हस्तक्षेप या अधिकार न जमावेगी| हिन्दुओं को भी कुरान का अध्ययन करने का अवसर मिलेगा और मुसलमानों को हिन्दु शास्त्र का|"

विभाजन के दौरान दिल्ली, कलकत्ता, नौआखली, चंदीगांव, बिहार, पूर्वी बंगाल जैसे सभी क्षेत्र साम्प्रदायिकता की आग में जल रहे थे| गाँधीजी ने इस क्षेत्रों में शांति अभियान जारी रखा तथ उनके प्रयास से आपसी सद्भावना पुनः स्थापित होने के फलस्वरूप करोड़ों हिन्दु पूर्वी पाकिस्तान में अपने गृह त्यागने को विवश नहीं रहे| सितम्बर 1947 में दंगे भड़कने पर गाँधीजी ने तीन दिन का उपवास किया| जिसका हिन्दुओं और मुसलमानों पर आश्चर्यजनक रूप से प्रभाव पड़ा| 13 जनवरी को दिल्ली की सड़कों पर लाशे बिछी देखकर गाँधीजी ने करूण हृदय से आमरण अनशन की घोषणा कर दी जिसका वांछनीय प्रभाव सभी समुदायों पर पडा|

गाँधी का पूरा जीवन स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु भारत के विभिन्न समुदायों के मध्य एकता स्थापित करने में लग गया| हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए गाँधी ने व्यग्रता प्रकट करते हुये कहा कि, ''मेरे दिल में लगातार 24 घंटे, चाहे मैं जागता होउ या सोता होउ हिंदु-मुस्लिम एकता के लिए प्रार्थना और आध्यात्मिक प्रयत्न चलते रहते है| मुझे पूरा विश्वास है कि हिंदु और मुसलमानों में सच्ची और स्थायी दिली एकता, पैबन्द लगी हुई राजनीतिक एकता नही, देर सवेर अवश्य, देर से नही शायद जल्दी ही होगी|'' अन्ततः गाँधी ने साम्प्रदायिक एकता हेतु अपने प्राण न्योच्छावर कर दिये| वे साम्प्रदायिकता के पूरी तरह खिलाफ थे और इसलिए नाथुराम गोड़से ने उनकी हत्या की|

3.7 सारांश

साम्प्रदायिकता विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और वर्गों के मध्य, घृणा, ईर्ष्या, परस्पर द्वेष व प्रतिशोध की भावना के कारण संगठित हिंसा व संघर्ष है| गाँधीजी ने अपना सर्वस्व इसी साम्प्रदायिकता के उन्मूलन में होम कर दिया किंतु जैसी

उनको आशा थी कि अंधकार रूपी साम्प्रदायिकता का आजादी सूर्य के प्रकाश से नाश हो जाएगा, ऐसा नहीं हुआ| आजादी से लेकर वर्तमान तक की अनेक साम्प्रदायिक दंगों की घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि राजनीति और धर्म के गठजोड ने अपने न्यस्त हितों की पूर्ति हेतु साम्प्रदायिकता को बढावा देने का कार्य किया है|समय की आवश्यकता है कि लोकतंत्र, विकास और सामाजिक समरसता के समक्ष इस चुनौती का मुकाबला करने हेतु सक्षम, सबल और निष्पक्ष राज्य तंत्र के साध पंथनिरपेक्ष व वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित शिक्षा प्रदत्त की जाये|

भारत साम्प्रदायिकता को समाप्त कर विभिन्न धर्मों के मध्य एकता स्थापित करने का सर्वप्रमुख उपाय गाँधी के निम्नांकित कथन में निहित है| गाँधी ने कहा कि, "साम्प्रदायिक एकता की जरूरत को सब मंजूर करते है लेकिन सब लोगों को अभी यह बात जंची नहीं कि एकता का मतलब सिर्फ राजनीतिक एकता नहीं है| राजनीतिक एकता तो जोर जबरदस्ती से भी लादी जा सकती है| मगर एकता के सच्चे अर्थ तो है वह दिली-दोस्ती, जो किसी के तोड़े ना टूटे| इस तरह की एकता पैदा करने के लिए सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि कोई भी व्यक्ति फिर किसी भी धर्म के मानने वाले हों अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी व गैरा सभी कौमों का नुमाइन्दा समझें| हिन्दुस्तान के करोड़ों बाशिन्दों में से हर एक के साथ वे अपने पन का, आत्मीयता का अनुभव करे| यानी वे उनके सुख-दुख में अपने को उनको साथी समझे| इस तरह की आत्मीयता सिद्ध करने के लिए हर एक व्यक्ति को चाहिए कि वह अन्य धर्म का पालन करने वाले लोगों के साथ निजी दोस्ती कायम करे| और अपने धर्म के लिए उसके मन में जैसा प्रेम हो, ठीक वैसा ही प्रेम वह दूसरे धर्म से भी करे|"

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता की अवधारणा को समझाइये|
2. भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिये|
3. साम्प्रदायिकता पर गाँधी के विचारो का विश्लेषण कीजिए|
4. साम्प्रदायिकता के निवारण हेतु गाँधीवादी साधनो की व्यवहारिकता का विश्लेषण कीजिए|
5. हिंदू-मुस्लिम एकता पर गाँधी के विचारो का विश्लेषण कीजिए|

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1960
2. महात्मा गाँधी, हिन्द-स्वराज्य, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

3. महात्मा गाँधी: प्रार्थना प्रवचन, खण्ड 1 व 2 नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1960

4. एस.एम.चाँद, महात्मा गाँधी और साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीय एकता प्रकाशन, ब्यावर (राज.) 1991

5. विपिन चन्द्रा, साम्प्रदायिकता, एक प्रवेशिका, नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली, 2008

6. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी, द लास्ट फेज, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1958

7. सुनील कुमार अग्रवाल, गाँधी और साम्प्रदायिक एकता, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009

इकाई – 4

लैंगिक समानता की समस्या एवं गाँधी

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देष्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उदारवादी गाँधी

4.3 तत्ववादी गाँधी

4.4 परिवार के प्रति दृष्टिकोण

4.5 कमजोर व अत्यधिक सुमेध स्थिति वाली स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

4.6 नारी की सांस्कृतिक संरचना

4.7 लिंग-विभेद से परे

4.8 महिलायें व स्वरोजगार

4.9 स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की पुर्नसंरचना

4.10 लिंग-भेद व परिवार के बारे में पुर्नविचार

4.11 सारांश

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान जायेंगे कि:

- उदारवादी एवं तत्ववादी दृष्टिकोण के प्रति गाँधी की मान्यता
- महिलाओं के बारे में गाँधी के विचार
- परिवार के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण
- महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण

4.1 प्रस्तावना

नारी लेखन पर गाँधी की गहनता आधुनिक पाठक के लिए विस्मयकारी है| स्वतंत्रता आंदोलन और स्थानीय समुदाय क्षेत्रों में नारी जाति की राजनीतिक सक्रियता व सेवा का आग्रह गाँधी के सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन काल में निरन्तर बना रहा है| गाँधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता संघर्ष ने नारी चेतना के एक नये युग का आरम्भ किया अतः वह भारतीय नारी मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था| स्वतंत्रता आंदोजन में नारी जाति को सम्मिलित करके गाँधी ने नारी शक्ति के अद्भुत स्त्रोतों का दोहन किया और उसे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सकारात्मक शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया|

अनेक बार गाँधी के विचार उन्नीसवीं व बीसवीं सदी के (पूर्वार्द्ध के) दार्शनिकों से मेल खाते हैं जो जे.एस. मिल के समान नारी अधिकारों की वकालत करते हैं| इन सभी के दर्शन में हम नारी के लिए उन सभी समान अवसरों की माँग पाते हैं जो अभी तक उन्हें नहीं मिले थे| किन्तु साथ ही गाँधी उन उदारवादी पाश्चात्य (तथा अनेक बार पूर्वी) विचारकों से भी सहमत नजर आते हैं जो लिंग भेद के मूलभूत सिद्धान्त के पक्ष में हैं - अर्थात् पुरूष को घर की आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा सुरक्षा प्रदान करने के योग्य तथा स्त्री को बच्चों के लालन-पालन व गृह कार्य में दक्ष मानते हैं|

उपरोक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त गाँधी दर्शन में अनेक स्थानों पर नारी की सुमेध स्थिति का वर्णन, नारी की स्वायत्तता पर बल, भारतीय समाज में नारी संबंधित कुरीतियों पर कुठाराघात तथा लिंगभेद की आलोचना आदि बातें दृष्टिगोचर होती हैं| इनमें से अधिकांश स्थानों पर गाँधी स्थानीय स्तर पर परिस्थितियों और परम्पराओं की बात करते हुए समाज के पिछड़े व शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं| इन नारी लेखनों में ऐसा ही एक सन्दर्भ है जो समाज के पारम्परिक विवादास्पद लिंगभेद संबंधी प्रथाओं - जो पुरूष श्रेष्ठता का आग्रह रखता है - के विरूद्ध आवाज उठाता है|

4.2 उदारवादी गाँधी

उदारवाद का अर्थ अनेक व्यक्तियों द्वारा अपने-अपने तरीके से लगाया गया है, उसमें से एक अर्थ इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है और प्रत्येक व्यक्ति के अपने कुछ अधिकार है| पारंपरिक उदारवाद के अनुसार

प्रत्येक व्यक्ति को अपने मूलभूत अधिकारों का उपभोग करना चाहिए और यह राज्य का कर्तव्य है कि वह उसके अधिकारों की रक्षा करे तथा व्यक्ति के अधिकारों में न्यूनतम हस्तक्षेप करे| व्यक्तिगत नागरिक समूहों अर्थात राज्य के अतिरिक्त अन्य समूहों की गतिविधियों को अपने अधिकारों के उपयोग के लिए सामान्यतः स्वाधीनता प्राप्त होती है|

गाँधी उदारवाद से असंख्य प्रकार से असहमत प्रकट होते हैं| उनके अनुसार अधिकार की उत्पत्ति कर्त्तव्य में से ही होती है, वे व्यक्तिवाद की अपेक्षा समूह की 'सामुदायिकता' पर अधिक बल देते हैं| साथ ही गाँधी का निरंतर ध्यान नागरिक समाज की उन प्रथाओं पर रहता था जो व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को बढ़ाती या धटाती है| यद्यपि वे उदारवाद के इस मूलभूत सिद्धांत से सहमत है कि प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा अनिवार्यतः बनी रहनी चाहिए| यही विचार उनके भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की चेष्ठा तथा भारतीय समाज से छूआछूत उन्मूलन की चेष्ठा के पीछे मूलतः प्रेरणादायक बना| स्त्री-पुरुष संबंधों के संदर्भ में भी यही मूल विचार दृष्टिगोचर होता है|

27 मार्च 1931 को गाँधी के निर्देशन में अखिल भारतीय कॉग्रस का 45 वां अधिवेशन आरंभ हुआ, जिसमें भारतीय अधिकार पत्र का दावा किया गया जो आगे चलकर कॉग्रस द्वारा भारतीय संविधान का हिस्सा घोषित हुआ तथा बाद में संविधान का हिस्सा बना भी| गाँधी द्वारा अधिनियम में उन प्रावधानों पर विशेष प्रसन्नता प्रकट की गयी जो न केवल राजनैतिक क्षेत्र में, बल्कि सार्वजनिक और निजी रोजगार के क्षेत्र में तथा देश के सामाजिक संरचना के निर्माण के क्षेत्र में भी नारी समानता पर बल देते हैं| पूर्ण उदारवादी शैली में गाँधी स्त्रियों के सम्पत्ति स्वामित्व के संदर्भ में पुरूषों से समानता संबंधी कानूनों का भी पुरजोर समर्थन करते हैं|

4.3 तत्ववादी गाँधी

तत्ववाद के अंतर्गत किसी वस्तु की मूलभूत अनिवार्य विशेषताओं का संज्ञान उसे समझने व उस पर कार्य करने के लिए आवश्यक है| लैगिंकता के विषय में एक प्रकार से गाँधी को तात्विक कहा जा सकता है| आत्मा के स्तर पर गाँधी स्त्री-पुरूष की पूर्ण समानता को स्वीकार करते हैं और दोनों को ही समान स्वायत्ता और गरिमा का अधिकारी मानते हैं, साथ ही वे स्त्री-पुरूष भिन्नता तथा पूरकता की अवधारणा का भी समर्थन करते हैं उनके अनुसार दोनों के कर्म क्षेत्र पृथक है तथा दोनो को अपने-अपने क्षेत्रों में कर्तव्य पालन करना चाहिए| यद्यपि दोनों के संबंधित क्षेत्र अनेक बार जटिल रुप से परस्पर गुंथे हुए प्रतीत होते है तथा जो पुरूष वर्ग के लिए उपयुक्त जान पड़ता है वही स्त्री वर्ग के लिए भी उपयुक्त जान पड़ता है| इस आधार पर किये गये वर्गीकरण में दोनों की विशेषताएँ व सांस्कृतिक आवश्यकताएँ सामान्यतः समान पायी जाती है|

कार्यक्षेत्र के वर्गीकरण के संदर्भ में गाँधी पारम्परिक ढाँचे को स्वीकार करते हैं तथा पुरूष को आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा स्त्री को बच्चों तथा घर की देखरेख के लिए जिम्मेदार मानते है| गाँधी के अनुसार स्त्री का प्राथमिक दायित्व घर की देखभाल है तथा अन्य किसी भी प्रकार का कार्य चाहे कृषि से संबंधित हो या कारखानों

से अथवा अन्य किसी भी स्थान से संबंधित हो, वह मात्र अतिरिक्त समय में किया जाना चाहिए| पुरूष घर के लिए आपूर्ति के द्वारा तथा स्त्री घर के प्रबंधन के द्वारा, एक दूसरे के पूरक व सहयोगी बनते हैं| अतः स्त्री-पुरूष कार्य क्षेत्र की विभिन्नता के संदर्भ में गाँधी कोई संदेह नहीं रखते और सामाजिक, सांस्कृतिक व जैविक सभी स्तरों पर इस भिन्नता को आधार मानते हैं|

यद्यपि गाँधी के तत्ववाद पर संदेह नहीं किया जा सकता, तथापि कुछ संदर्भो में उनके तत्ववादी होने के स्तरों पर प्रश्न उठाया जा सकता है| गाँधी स्त्री के गृह कार्य के बाहर भी समय दिये जाने को उचित तो मानते हैं पर साथ ही स्त्रियों द्वारा पुरूषों की कुछ जैविक विशेषताओं (जैसे दृढ़ निश्चयता आदि) और पुरूषों द्वारा स्त्रियों की कुछ विशेषताओं (जैसे स्नेह व देखभाल की क्षमता) को अपनाए जाने की आवश्यकता अनुभव करते है| साथ ही वे नारी की मूलभूत क्षमताओं पर किसी प्रकार की सीमाओं को स्वीकार नहीं करते, चाहे वह उच्चतम राजनैतिक पदों को सम्भालने संबंधित कार्य ही हो|

संशोधित रुप में जो तत्ववाद गाँधी दर्शन में दृष्टिगोचर होता है, उसे पूर्णतः समझने के लिए मात्र नारी संबंधी विचारों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके लिए उनका 'स्वायत्तता' संबंधी संपूर्ण दर्शन समझना आवश्यक है| गाँधी के लिए स्वायत्तता का अर्थ है कि नैतिक व्यक्ति होने के नाते प्रत्येक मनुष्य को अपनी गरिमा बनाये रखने का अधिकार है किंतु साथ ही दूसरों की गरिमा बनाये रखने का कर्तव्य भी उससे जुड़ा है| सत्य के संदर्भ में उन्हें पुरूषार्थ की अवधारणा अत्यन्त प्रिय है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भय अथवा दण्ड के सत्य के प्रति अपनी विशिष्ट सोच विकसित करता है| गाँधी के अनुसार चूंकि परम सत्य को पूर्णतः समझ पाना किसी व्यक्ति के लिए संभव नहीं है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति सत्य के मात्र आंशिक पक्ष को ही ग्रहण कर पाता है| इस प्रकार से ग्रहण किए गए सत्य के आंशिक और वैयक्तिक पक्ष को अन्य व्यक्तियों पर आरोपित नहीं किया जाना चाहिए| ऐसे बाध्यकारी आरोपण गाँधी की दृष्टि में हिंसात्मक है क्योंकि हिंसा मात्र युद्ध या अपराधों तक सीमित नहीं होती वरन् अधिकांशतः हिंसा को संस्थाबद्ध कर दिया जाता है| यहीं पर हमें अछूत वर्गों की तथा महिलाओं की समस्या का उपचार नजर आता है| गाँधी के लिए प्रत्येक प्रकार की हिंसा अपने शिकार की स्वायत्तता का हरण करती है और इसलिए इसका विरोध किया जाना चाहिए|

4.4 परिवार के प्रति दृष्टिकोण

परिवार एवं विवाह गाँधी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण संस्थाएँ है| प्रेम, सुरक्षा, शिक्षा तथा दूसरों के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने वाले अनेक अवसरों को गाँधी अपने पारिवारिक जीवन के मीठे पलों के रुप में स्वयं अपनी आत्मकथा में वर्णित करते है|

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन परिवार से प्रारंभ होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर रहता है| पारिवारिक धटनाओं का सबसे गहन प्रभाव परिवार के सबसे छोटे सदस्यों पर पड़ता है, यद्यपि वे इसे प्रभावित करने में सबसे कम क्षमतावान होते है| गाँधी परिवार के आर्थिक स्वावलम्बन की आवश्यकता पर बल देते हैं जिसमें परिवार के सदस्य गरिमापूर्ण तथा परस्पर सम्मानपूर्ण तरीके से अपना योगदान देते है| परिवार के बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए गाँधी अनेक बातों को आवश्यक मानते हैं प्रथमतः वयस्क सदस्यों को परिवार की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है| 'आधुनिकता' का विरोध करने का यह भी एक कारण गाँधी मानते है, क्योंकि इस आधुनिकता के कारण ही व्यापक स्तर पर बेरोजगारी और अल्परोजगारी भारतीय समाज में फैली है जिससे उपरोक्त जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाती है| द्वितीय, गाँधी परिवारों को ऐसे समाज की स्थापना करने पर जोर देते हैं जहां नैतिक मूल्यों को भूतकाल की अवधारणा कह कर उपेक्षित नहीं किया जाता वरन् नैसर्गिक तौर पर नैतिक मूल्यों का पालन किया जाता है| तृतीय, वे परिवार के सदस्यों की स्वायत्तता को न केवल पारिवारिक स्तर पर, बल्कि वृहद सामाजिक स्तर पर भी आवश्यक मानते है| इस अंतिम आवश्यकता के संदर्भ में गाँधी उन प्रचलित भारतीय पारिवारिक परम्पराओं के पुनर्निर्माण का आहवान करते है, जो पुरूष प्रधानता की स्थापना करते है|

गाँधी इस तथ्य से अवगत थे कि अधिकांश भारतीय स्त्रियां गृहकार्य व उससे संबंधित दायित्वों तक सीमित है और पारिवारिक परिस्थितियाँ उनकी स्वायत्तता का पूर्ण हरण कर लेती है| पारिवारिक सदस्यों के परस्पर संबंध समानता के स्तर पर या फिर क्रम-सोपान के स्तर पर हो सकते हैं| अपने अध्ययन की समग्रता में गाँधी उन सभी व्यक्तियों की दशाओं पर चिंतन करते है जिनकी स्थिति परिवार व समाज में सुभेद्य व नाजुक है| इस प्रकार वे उदारवाद के अमूर्त 'व्यक्ति और अधिकारों' की बात नहीं करते बल्कि संबंधित व्यक्ति की विशिष्ट भूमिका (जैसे माँ अथवा पत्नी) के स्तर पर आकर हल खोजने का समर्थन करते हैं|

गाँधी बह्मचर्य पर बल देते हैं, यद्यपि उनके अनुसार यह पवित्रता स्त्री-पुरूष के उस पारस्परिक जुड़ाव अथवा गठबंधन पर तनिक भी कुठाराघात नहीं करती, जिसका गाँधी समर्थन करते हैं| विवाह गाँधी के लिए पूर्णतः स्वाभाविक है और किसी भी अर्थ में उसकी आलोचना ने उचित नहीं मानते| विवाह में दोनो पक्षों की पूर्ण स्वीकृति एक अनिवार्य आवश्यकता है और इसीलिए वे बाल-विवाह का पूर्ण विरोध करते है| इसी आधार पर वे दहेज प्रथा का भी विरोध करते हैं, जो उनकी नजर में 'लड़कियों के विक्रय' के समान दूषित प्रथा है| गाँधी इसे माता-पिता का दायित्व मानते है कि वे अपनी बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार करें कि वे स्वयं दहेज आधारित विवाह को अस्वीकार कर दे तथा ऐसी मांग करने वाले व्यक्ति से रिश्ता तय करने की अपेक्षा कुंवारी रहना पसंद करे| विवाह का एकमात्र सम्मानीय आधार पारस्परिक प्रेम व सहमति होना चाहिए| उपरोक्त प्रकार के परिवर्तनों से न केवल दहेज प्रथा का अंत होगा, बल्कि माता-पिता अपने बालकों व बालिकाओं का लालन-पालन भी समान तरीके से करेंगे|

इसके अतिरिक्त, दहेज प्रथा और जातिगत बाध्यता के कारण विवाह क्षेत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता अत्यंत सीमित हो जाती है| फलतः गाँधी दहेज प्रथा का विरोध करते है तथा विवाह को माता-पिता द्वारा एक क्रय-विक्रय की प्रक्रिया में परिणित होने से रोकने की भी बात करते है| दहेज प्रथा जातिगत बाध्यता से जुड़ी हुई समस्या है, क्योंकि यदि विवाह की स्वतंत्रता कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित होती है तो इस प्रथा को समाप्त करना कठिन है| अतः दहेज प्रथा के अंत के लिए माता-पिता अथवा कन्या व वर को जाति की सीमाओं से परे जाना होगा| इन सब के लिए एक ऐसी चारित्रिक शिक्षा की आवश्यकता है जो युवा पीढ़ी की सम्पूर्ण मानसिकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सके|

किसी भी विवाह में दोनो पक्षों का स्वतः प्रेरित होना आवश्यक है, और स्त्रियों के संबंध में शारीरिक रुप से स्वायत्त होना विशिष्ट महत्व रखता है| गाँधी विवाह में शारीरिक संबंधो को महत्वपूर्ण मानते हैं, किंतु वे उसके बाध्यकारी स्वरूप के स्थान पर स्त्रियों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति होने की आवश्यकता पर बल देते है| उनके अनुसार किसी पुरूष को अपनी पत्नी को स्पर्श करने का अधिकार तब तक नहीं प्राप्त होता, जब तक पत्नी संतानोत्पति की इच्छा नहीं रखती और इस संबंध में गाँधी पत्नियों को भी दृढ़ इच्छा-शक्ति रखने का समर्थन करते है|

किसी भी समाज और संस्कृति में प्रधानतावादी प्रवृत्तियों व उनकी अभिव्यक्ति के प्रति गाँधी अत्यंत सजग थे और वे उन सभी प्रथाओं का विरोध करते थे जो स्वयं के संबंध में निर्णय लेने हेतु पुरुषों को तो स्वतंत्रता देती थी लेकिन स्त्रियों को नहीं| उदाहरणार्थ, विधुर होने पर पूर्ण उदासीनता के साथ पुरूष का पुनःविवाह कर दिया जाता है, जबकि गाँधी के अनुसार पुनःविवाह कर दिया जाता है, जबकि गाँधी के अनुसार पुनःविवाह का अधिकार यदि मात्र पुरूष को प्राप्त है और स्त्रियों को नहीं, तो ऐसा समाज व्यक्ति की गरिमा और स्वायत्तता पर आधारित नहीं है| यदि मूल स्वतंत्रता किसी एक वर्ग के पास है तो वह सभी को प्राप्त होनी चाहिए|

गाँधी इस तथ्य से परिचित थे कि हिंसा और अधिनायकत्व कहीं भी और किसी भी स्थान पर सिर उठा सकता है, किंतु वे उसके औचित्य को स्वीकार नहीं करते, चाहे वह किसी भी समय या स्थान पर विधमान हो| यधपि राजनैतिक क्षेत्र में उनका आग्रह राज्य, राष्ट्रीय आंदोलन अथवा अंतर्राष्ट्रीय विवादों से संबंधित होता था परंतु वे सामाजिक व पारिवारिक स्तर पर हिंसा की अभिव्यक्ति से चिंतित थे| उनके अनुसार अहिंसा का सिद्धांत निश्चित तौर पर सभी स्थानों पर लागू होता है चाहे पारिवारिक संबंध हो या अधिकारिक सत्ताधारी के साथ संबंध हो| अहिंसा का सिद्धांत आंतरिक अव्यवस्थाओं बाह्य आक्रमणों आदि सभी पर समान रुप से लागू होता है| दूसरे शब्दों में अहिंसा की क्रियान्विति सभी मानवीय संबंधों तक व्याप्त होनी चाहिए| उल्लेखनीय है कि उपरोक्त सभी संबंधों के उदाहरणों में 'शक्ति' की व्याख्या की गई है| गाँधी द्वारा पारिवारिक संबंधो को प्रथम स्थान पर लिया गया है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्य और महत्वपूर्ण रुप से पारिवारिक स्तर पर जुड़ा होता है| गाँधी पारिवारिक स्तर पर विद्यमान उस शक्ति और पद सोपान क्रम की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो हिंसात्मक शैली में प्रकट होता है|

पारिवारिक संबंधो में गाँधी द्वारा अहिंसा का आग्रह तथा परिवार के सदस्यों की स्वायत्तता का स्थापन एक नैतिक आवश्यकता बताया| सभी सदस्यों को साधन नहीं वरन साध्य माना जाना चाहिए| हिंसा और अधिनायकवादी प्रवृत्तियों की समाप्ति के अतिरिक्त गाँधी अन्य बातों के साथ, ये भी प्रावधान स्थापित करना चाहते है कि लिंग भेद से परे जाकर प्रत्येक पारिवारिक सदस्य को समान स्तर प्राप्त हो|

4.5 कमजोर व अत्यधिक सुमेध स्थिति वाली स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

पारंपरिक विवाह पद्धति में नारी द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं के अतिरिक्त गाँधी समाज की सबसे कमजोर वर्ग की स्त्रियों की भी चर्चा करते है| उनके अनुसार गरीबी और सामाजिक भेद-भाव स्वयं अपने में एक अभिशाप है किंतु स्त्रियों के संबंध में इसका कुप्रभाव कई गुणा बढ़ जाता है|

गाँधी मानते है कि अन्य स्वतंत्रताओं के समान स्त्रियों की सामाजिक स्वतंत्रता भी प्रभावित होती है, उसे अनेक सामाजिक प्रथाओं जैसे- बाल-विवाह, बाल वैधव्य, वैश्यावृति, अंधविश्वास, पर्दाप्रथा, मदिरापान और आर्थिक निर्भरता आदि के द्वारा बाधित किया जा सकता है|

बाल विवाह विरोधी समिति द्वारा बाल-विवाह एवं बाल-वैधव्य पर एक सर्वेक्षण व उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिस पर गाँधी की प्रतिक्रिया उनके इस संबंध में चिंता के स्तर को दर्शाती है| रिपोर्ट के अनुसार "सन् 1921 में एक वर्ष से कम उम्र की पत्नियों की संख्या 9066 थी, जो 1931 में बढ़कर 44,082 हो गयी| यह वृद्धि दर पांच गुणा अधिक थी, जबकि जनसंख्या में वृद्धि दर मात्र 1/10 प्रतिशत की थी| इसी प्रकार 1921 में बाल -विधवाओं की संख्या 759 थी जो कि 1931 में बढ़ कर 1515 हो गयी| जनसंख्या की वृद्धि दर उपरोक्त समस्याओं के समाधान की गति से कहीं अधिक है|"

गाँधी के अनुसार "धर्म अथवा परम्परा द्वारा आरोपित बाध्यकारी वैधव्य एक असहनीय स्थिति है जो घरों को भ्रष्ट व धर्म को अपमानित करती है|"

यद्यपि कानून के द्वारा इस प्रथा को वर्जित करने का वे स्वागत करते है, परंतु गाँधी का अधिक विश्वास एक प्रबुद्ध नागरिक चेतना को जाग्रत करने में है| वे उन सभी माता-पिताओं की आलोचना करते है जो शैशवस्था में ही बालिकाओं का विवाह कर देते है और साथ ही उन बालिकाओं के पुनः विवाह का आग्रह भी करते है यदि उनके प्रस्तावित पतियों की मृत्यु हो जाये| गाँधी के अनुसार वैधव्य के बाद पुर्नविवाह करने या ना करने का निर्णय पूर्णतः

स्वयं स्त्रियों का होना चाहिए| उनके अनुसार ''यदि मुझसे इस संबंध में नियम के बारे में पूछा जाए तो वह नियम स्त्री व पुरूष दोनो के लिए समान होना चाहिए|''

गाँधी 'वेश्यावृत्ति' के बारे में भी चिन्तित थे| जिसे वे शोषण का भद्दा रुप मानते थे जिसमें कि वेश्याओं को एक पुरूष को खुशी प्रदान करने के साधन के रुप में माना जाता है| यह वह चीज है जो उनके सार्वभौम-सम्मान के तर्को के विपरीत है और उनके इस दावे के भी विपरीत है कि स्वयं के उद्देश्यों के लिए किसी को भी एक 'वस्तु' की तरह व्यवहृत नहीं किया जाना चाहिए| ''यह मानवता के लिए बेहद शर्म और दुख की बात है कि बड़ी संस्था में महिलाओं को अपनी 'पवित्रता' पुरूष की स्त्री-भोग की लालसा के लिए बेचनी पड़ती है| पुरूष जो नियम-निर्माता है, को महिलाओं की इस दुर्दशा के लिए भयानक दंड भुगतना होगा|'' इसी भाव से गाँधी ने देवदासी प्रथा पर भी रोष प्रकट किया, जो कि मुख्यतः दक्षिण भारतीय हिंदू समुदायों में प्रचलित है जहाँ युवा लड़कियाँ धार्मिक देवताओं के समक्ष नाचती गाती हैं और बाद में उन्हें पुजारियों और धनाढ्य मंदिर संरक्षकों की काम-भावना को संतुष्ट करने के लिए बाध्य किया जाता है| गाँधी टिप्पणी करते हैं कि सभी पुरूषों को शर्म से फाँसी पर लटक जाना चाहिए तब तक, जब तक कि ''एक भी महिला को वासना की दृष्टि से देखा जाता है|''

गाँधी के अनुसार महिलाओं पर लैगिंक प्रभुत्व न सिर्फ सक्रिय लैगिंक गतिविधियों में व्यक्त होता है जिसमें महिलाऐं आनंद के साधन के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं बल्कि यह पुरूषों के महिलाओं की 'पवित्रता' के प्रति अत्यधिक आग्रह में भी प्रकट होता है| पर्दा प्रथा के बारे में बताते हुए उनहोंने टिप्पणी की कि पवित्रता कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे जबरन लादा जा सके| उन्हें लगता था कि एक महिला के लैगिंक व्यवहार का निश्चय प्रत्येक महिला द्वारा व्यक्तिगत रुप से ही होना चाहिए| उनके अनुसार नैतिकता के विधान नहीं बनाये जा सकते| यह तो लिंग भेद से परे स्वतंत्र लोगों के स्वतंत्र चयन में प्रतिबिम्बित होती है| इसके अलावा, गाँधी पुरूषों के दोहरे मापदण्डों से व्याकुल थे जो कि पुरूषों के अपने लैगिंक व्यवहार की नैतिक शुद्धता के संबंध में तो उदासीन हैं पर महिलाओं के संदर्भ में इनका आश्रय हमेशा लिया जाता है|

अपने पूरे सार्वजनिक जीवन में गाँधी समाज के सर्वाधिक कमजोर लोगों का मार्गदर्शन करते रहे वे जहाँ भी उन्हें मिले, और वे उन्हें हर जगह मिले| अस्पृश्यता, सांप्रदायिक द्वेष, बेरोजगारी और अल्प बेरोजगारी और उपनिवेशवाद के विरुद्ध अभियान उनकी नैतिक प्रतिबद्धताओं की सुविदित अभिव्यक्तियाँ हैं| ये महिलाओं की स्थिति और भूमिका से भी संबंधित हैं तथा उन सबसे भी जो दरकिनार कर दिये गये हैं क्योंकि वे छोटे है, वंचित हैं या त्रस्त हैं| उनकी योजना का एक भाग महिलाओं के प्रति प्रचलित व्यवहार को चुनौती देना भी था, जो इसके महिलाओं को नीचा दिखाने वाले अर्थो को उद्घाटित करने व उसकी निंदा करने के उनके प्रयत्नों के रूप में सामने आता है|

4.6 नारी की सांस्कृतिक संरचनाएँ

अपने समस्त तत्ववाद के साथ, गाँधी ने उन तरीकों की प्रशंसा की जिनमें महिलायें अपनी संस्कृति द्वारा संरचित होती हैं| यह संरचना एकदम भिन्न दो रूपों में दिखाई देती है| पहला, जिसे हटाने के लिए गाँधी ने प्रयास किये और दूसरा वह जिसे गाँधी बढ़ावा देना चाहते थे| पहला इस विचार से संबद्ध है कि महिलायें पुरूष की अधीनस्थ हैं, जिनकी उनके पिता व पति से अलग कोई पहचान नहीं है| दूसरा, महिलाओं के संरक्षिकाओं के रुप में समाजीकरण से संबद्ध है, जो कि गाँधी की नजर में, पुरूषों की तुलना में अधिक स्नेहशील, धैर्यवान और कम आक्रामक हैं|

पहले मुद्दे के विरुद्ध, गाँधी ने स्त्री पुरूष संबंधो के संदर्भ में प्रचलित परंपराओं में से कुछ को चुनौती दी| दृढ़ विश्वास से उनहोंने कहा, "धर्मग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा हुआ है उसे ईश्वरीय वाणी मानने की जरूरत नहीं है|" बल्कि उन्होंने सुझाव दिया कि धर्मग्रन्थों के नाम पर सत्ताधारियों द्वारा जो कुछ भी रचा गया है उसमें से जो भी धर्म व नैतिकता के आधारभूत सिद्धांतों के विरुद्ध है, उसका सुधार व परिष्कार होना चाहिए| इस संदर्भ में गाँधी ने स्मृतियों में मौजूद महिलाओं से संबंधित क्रूर व अपमानजनक उदाहरणों का विरोध किया| उनका मत था कि महिलाओं के लिए आवश्यक गुण तय करने वाले ऐसे विचारों को चुनौती दी जानी चाहिए व नष्ट किया जाना चाहिए| स्वयं गाँधी ने ऐसा ही प्रयास भी किया| उन्होंने कहा "दृढ़ शब्दों में पुरूष व स्त्री में से किसी को भी उच्चतर या निम्नतर नहीं कहा जाना चाहिए|" इस लक्ष्य को पाने के लिए गाँधी चाहते थे कि महिलाऐं उन संरचनाओं को तोड़ने में संलग्न हों जो उनके लिए रची गई हैं| यह करने के लिए, महिलाओं हेतु आवश्यक है कि वे इन परंपरागत मान्यताओं की धमकी में आने से इंकार कर दें और स्वयं को इस सामाजिक व्यवस्था में निम्नतर स्थिति में रखा जाना अस्वीकृत कर दें| जैसा कि गाँधी मानते थे कि "येन केन प्रकारेण पुरूषों का युगों से महिलाओं पर आधिपत्य रहा है इसलिए महिलाओं में एक हीन ग्रंथि विकसित हो गई है| उसने पुरूषों के इस प्रिय उपदेश के सत्य में विश्वास कर लिया है कि वह उससे हीन है|"

बहुपत्नी प्रथा व एक पत्नी प्रथा संबंधी उनके तर्कों में सामाजिक रीतियों की संरचनात्मकता तथा विशेषतः लिंग संबंधों के बारे में उनकी सोच प्रकट होती है| प्रथम को स्वीकार्य न मानते हुए द्वितीय को उन्होंने महिला और पुरूष के मध्य घनिष्ठ ऐश्क्य की अभिव्यक्ति माना| उन्होंने पुनः स्मरण करवाया कि "यद्यपि द्रोपदी के एक समय में पाँच पति थे फिर भी उसे पवित्र कहा जाता था|" उस युग में ऐसा इसलिए था, क्योंकि जैसे एक पुरूष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता था वैसे ही (कुछ क्षेत्रों में) एक स्त्री भी एक से अधिक पति अपना सकती थी| विवाह संहिताओं में समय और स्थान के अनुरुप बदलाव आता है|

यदि हम मानवीय संबंधों की मूल संकल्पनाओं में परिवर्तन और उनका पुनर्व्यवस्थीकरण करना चाहे तो गाँधी तर्क देते हैं कि हमें उन संबंधों के दृढ़ रूप को चुनौती देनी होगी जो कि सामाजिक रीतियों में मजबूती से जमे हुए हैं तथा जो कुछ को अधिपति जबकि अन्य को हीन व अधीनस्थ होने को मजबूर करते हैं|

गाँधी के लिए, हमें दृढ़ निश्चयी होकर यह तय करने की आवश्यकता है कि कौनसी सामाजिक रीतियाँ प्रत्येक व्यक्ति को मूल्यवान व सम्माननीय बनाती हैं और एक आलोचनात्मक आवाज उठानी होगी जिसमें उन्हें शामिल

करना होगा जिन्हें समकालीन व्यवस्था में दरकिनार कर दिया गया है|

4.7 लिंग-विभेद से परे

गाँधी यह भी सोचते थे कि महिलाओं को वैसा ही सिखाया जाता रहा है और उनमें वे आंतरिक सद्गुण भी होते हैं, विशेष रुप से अहिंसा, जो कि वैसे रूप में अधिकांश पुरूषों में नहीं होती, जिनको कि निश्चयी और आक्रामक होने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है| उन्होंने महिलाओं को 'अहिंसा का अवतार' कहा क्योंकि उनके पास पीड़ा सहने की अनंत शक्ति होती है| गाँधी जोर देते हैं कि "युगों से पुरूषों को हिंसा का प्रशिक्षण मिला है| अहिंसक बनने के लिए उन्हें स्त्रियोचित विशेषताओं को अपनाना होगा|" गाँधी स्त्री पुरूष संबंधों की पारंपरिक सोच से परे जाना चाहते थे| उन्होंने कहा कि "मेरा आदर्श यह है कि एक पुरूष को पुरूष रहना चाहिए, पर इसके साथ-साथ उसे स्त्री भी बनना चाहिए, बिल्कुल इसी तरह से एक स्त्री को भी स्त्री बने रहना चाहिए पर इसके साथ उसे पुरूष भी बनना होगा| इसका मतलब है कि पुरूष को महिलाओं जैसी भद्रता और विवेक को अपनाना चाहिए और महिलाओं को भी अपनी कायरता को छोड़कर बहादुर और साहसी बन जाना चाहिए|" गाँधी के लिए, विभेद करने वाली सांस्कृतिक और मनौवैज्ञानिक विषेशताओं को, जिन्हें कि पारंपरिक रूप से विशेषतः एक लिंग के लिए निर्दिष्ट किया गया है जबकि दूसरे के लिए नहीं, को एक संरचना के तौर पर देखा जाना चाहिए और इसीलिए उन्हें परिवर्तन की दृष्टि से भी देखना चाहिए| उदाहरण के तौर पर 'साहस' एक मात्र पुरुषों की विशेषता नहीं है बल्कि यह एक सद्गुण है जो उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है जो स्वायत्त होना चाहता है|'' पुरूष व स्त्री दोनों निडर हो सकते हैं| पुरुष सोचता है कि वह निडर है लेकिन यह हमेशा सत्य नहीं होता, वैसे ही महिलायें भी सोचती हैं कि वे कमजोर हैं और स्वयं को वैसा कहलाने भी देती हैं लेकिन यह भी सत्य नहीं है|''

गाँधी के लिए, संरक्षकों जैसी उत्तरदायित्व वहनता, नैतिक श्रेष्ठता, सभ्य मानसिकता तथा समाज सेवा अपेक्षित गुण हैं जो कि स्त्री या पुरूष में से किसी एक ही के पास होना संभव नहीं| ऐसा करने के लिए स्त्री या पुरूष में से प्रत्येक को उन पारंपरिक विचारों को त्यागना होगा जो यह बताते हैं कि स्त्री या पुरूष होने का क्या अर्थ है| इस तरह विभाजन न केवल उन्नति व विकास में बाधक बनते हैं बल्कि लोगों को केवल उन्हीं के वर्ग के लिए तयशुदा कार्य करने के लिए विवश कर देते हैं| इसका यह भी निहितार्थ है कि स्त्री व पुरूष दोनों स्वयं को पूर्ण भी केवल तब ही महसूस करें जब वे वर्षों से उस वर्ग के लिए निर्धारित कार्यो को करें| इस प्रकार 'वास्तविक' (त्मंस) पुरूष आक्रामक है पर स्नेहशील नहीं है, 'वास्तविक' स्त्री धैर्ययुक्त है पर साहसी नहीं है| ऐसा मानना, जो कि गाँधी के लिए निराशाजनक है, पुरूषों व महिलाओं द्वारा स्वयं को अनावश्यक तत्वों तक सीमित करने देना है और स्वयं को पतन के गर्त में धकेल देना है|

4.8 महिलायें व स्व रोजगार

यदि महिलाओं को साधन नहीं वरन् साध्य बनाया जाना है तो पुरूषों को जल्द ही स्वयं को उनका स्वामी नहीं वरन् साथी व सहकर्मी मानना होगा| फिर भी गाँधी पुरूषों से यह अपेक्षा नहीं करते कि वे स्वयं ही अपने आधिपत्यपूर्ण संबंधों को परिवर्तित कर देंगे| समानता की तरफ पहला कदम महिलाओं को ही उठाना होगा| महिलाओं के लिए सरल तरीका यह है कि वे अपनी स्वायत्तता और स्वयं को एक पदार्थ माने जाने के विरुद्ध मांग उठाने की पहल करें| गाँधी ने आग्रह किया कि वे स्वयं को "गुडिया और दिल बहलाने की वस्तु" बनाये जाने से इंकार कर दें तथा समान सेवाओं में समान माने जाने पर जोर दें| गाँधी के अनुसार वर्तमान में स्त्री-पुरूष संबंधों का उपचार पुरूषों के हाथों में जितना है, उससे ज्यादा महिलाओं के हाथों में है| यदि वे पुरूष की सहयोगी बनना चाहती हैं तो महिलाओं को पुरूषों के लिए, पति के लिए भी, खुद को सजाये जाने से इंकार कर देना चाहिए| यदि महिलाएँ समान होना चाहती हैं तो तीव्र विरोधों में भी स्वयं की पहचान स्थापित में कमजोर न बनें| ताकत पाशविक ताकत नहीं होती बल्कि 'नैतिक शक्ति' होती है और इस मामले में गाँधी ने जोर दिया कि "महिलाएँ निस्संदेह पुरूषों से उपर हैं|" गाँधी ने हिंदू धर्म ग्रन्थों से सात पवित्र महिलाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये, जैसे सीता व द्रोपदी, जिन्होंने अपनी अमर प्रसिद्धि अपने पतियों को खुद के शारीरिक आकर्षण से प्रसन्न करके नहीं बल्कि स्वाधीन महिला व पत्नी के रूप में अपनी भूमिका निभाने से प्राप्त की|

गाँधी ने पाया कि निस्संदेह पुरूषों पर महिलाओं की उपेक्षा व दुव्र्यवहार के लिए दोषारोपण किया जा सकता है और उन्हें बदलना होगा| पर महिलाओं को भी अपने अंधविश्वासों को छोड़ना होगा और स्वयं व अन्य महिलाओं के साथ हो रहे गलत कार्यों के प्रति जागरुक होना होगा| महिलाओं को संरचनात्मक सुधार के वास्तविक कार्य करने होंगे| ये कार्य हैं- महिला स्वतंत्रता, भारतीय स्वतंत्रता, अस्पृश्यता निवारण, गाँवों की आर्थिक दशा में सुधार, ग्रामीण जीवन का पुनः निर्माण व सुधार|

परिवर्तन का पहला प्रयास, ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को यह दिखाने की दिशा में होना चाहिए कि उनकी स्थिति की बनावट क्या है और यह महिलाओं का प्राथमिक कार्य है कि वे वर्तमान स्त्री पुरूष संबंधों की संरचना को पहचानें और उसके विरुद्ध विद्रोह करें| गाँधी 'महिला कार्यकर्ता' चाहते थे "जो महिलाओं का मतदाता के रुप में नाम लिखवायें, उन्हें व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करें, उन्हें स्वतंत्र रुप से सोचना सिखायें उन्हें जाति के बंधनों से मुक्त करायें, ताकि उनमें परिवर्तन लाया जा सके| नारी-शक्ति की विमुक्ति में ये सब परिपूरक प्रयत्न होंगे|"इन महिला कार्यकर्ताओं को अन्य महिलाओं को यह दिखाना होगा कि उनकी भूमिकाएँ न तो प्रकृति और न ही धर्मग्रन्थों द्वारा आदेशित हैं बल्कि ये तो कमजोर के उपर शक्तिशालियों द्वारा की गई संरचनाएँ हैं, और उन्हें यह जानने की आवश्यकता है कि वे अपना जीवन स्वयं संभाल सकती हैं| इसके लिए किसी औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, हालांकि गाँधी जोर देते हैं कि महिलाओं के लिए शिक्षा अंततः एक अनिवार्यता है| क्योंकि यह उन्हें अपनी स्वाधीनता बचाये रखने में सक्षम बनाती है, बुद्धिमत्तापूर्वक चयन करने की क्षमता देती है और अपने सशक्तीकरण के लिए कार्य करने को प्रेरित करती है| गाँधी सोचते थे कि नारी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राज्य के कार्य पर्याप्त नहीं, हालांकि कभी-कभी आवश्यक हैं| प्राथमिक महत्व की बात तो यह है कि महिलाओं को स्वयं को एक सामाजिक ताकत के रूप में उभारना

होगा| दूसरे शब्दों में केवल महिलाएँ ही संगठित तरीके से आगे आने पर युगों से चली आ रही अपनी दुर्गति को दूर कर पाने में समर्थ हो पायेंगी|

4.9 स्त्री-पुरूष संबंधों की पुनर्संरचना

हिन्द स्वराज में, बल्कि वस्तुतः गाँधी की अन्य सभी रचनाओं में स्पष्टतः एक ही नहीं वरन् आपस में गुंथी हुई परियोजनाओं का एक पूरा समूह है जो विभिन्न भूमिकाओं में व्यक्ति के सम्मान व महत्व के लक्ष्य से जुड़ा हुआ है| ये योजनाएँ उन सब से संबंधित हैं जो परिधि पर हैं चाहे वे युद्ध पीड़ित हों, उपनिवेशवादी साम्राज्य के अंग हों, जाति व्यवस्था में अस्पृश्य हों, औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था में बेरोजगार हों या पुरूष प्रधान समाज में महिलाएँ हो|

गाँधी स्वतंत्रता को समाज में स्थित मानते थे जिसे, उनका मानना था कि केवल राज्य द्वारा ही नहीं वरन् सामाजिक रीतियों व संस्थाओं द्वारा भी छीना जा सकता हैं| पूर्ण आर्थिक धार्मिक असमानता, औद्योगीकरण और बेरोजगारी, अस्पृश्यता, पितृसत्तात्मक, रूढ़ियाँ एवं विभिन्न अंधविश्वास इसके उदाहरण हैं| इन अक्षमताओं का मुकाबला करने के लिए गाँधी ने कदाचित् ही राज्य से यह अपेक्षा की हो कि वह बलपूर्वक स्वतंत्रता को स्थापित करे| इसका एक कारण यह है कि वे हमेशा शक्ति संकेन्द्रण के प्रति सशंकित थे जिसकी परिणति उनकी दृष्टि में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के हनन के रुप में होती है|

स्वतंत्रता, जैसा कि गाँधी ने उसे जाना, समानता व उत्तरदायित्व दोनों से घनिष्ठतः संबंधित है| भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि, संसाधनों, स्थिति व शक्ति वाले समाजों में लोगों के लिए यह जानना कठिन होता है कि वे किस तरह दूसरों को प्रभावित कर रहें हैं| केवल तब जब कि लोगों को पृथक करने वाली भिन्नताऐं तुलनात्मक रूप से कम हों तब व्यक्ति दूसरों पर अपने कार्यो के प्रभाव को पहचान पायेंगे| केवल इस स्थिति में स्वतंत्रता व उत्तरदायित्व संयुक्त हो सकेंगे|

गाँधी ने आजीवन संकल्प को इस पर्यवेक्षण के साथ व्यक्त किया, ‘‘मेरा कार्य समाप्त हो जायेगा यदि मैं मानव परिवार से यह दृढ़ निश्चय करवाने में सफल हो जाऊँ कि प्रत्येक पुरूष या स्त्री चाहे वह शारीरिक रूप से कमजोर हो, अपने आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा करेगा|’’

जब हम लैंगिक समानता के मुद्दे की तरफ मुड़ते हैं तो पाते हैं कि गाँधी ने बढ़ चढ़ कर महिला अधिकारों व लैगिंक समानता का पक्ष पोषण किया है| इसी के साथ, गाँधी के लिंग भेद व विवाह से संबंधित तात्विक विचारों को छोड़ पाना असंभव है| बारीकी से जाँचने पर पता चलता है कि यह तात्विकता कई महत्वपूर्ण तरीकों से, अपने परम्परागत रुप से एकदम अलग हो जाती है| अधिकांश तत्ववादियों से भिन्न उनहोंने प्रकृति व पर्यावरण दोनों पर विश्वास जताया केवल पूर्व पर ही नहीं|

उन्होंने विशेष रूप से जोर दिया कि एक महिला का भाग्य केवल घरेलु कामकाज से ही पूर्ण नहीं हो सकता| उन्होंने इस विचार को नकार दिया कि घरेलू कार्य महिलाओं का सारा समय ले लें| उन्होंने कहा, "मेरे लिए महिलाओं की घरेलू दासता हमारे जंगलीपन का प्रतीक है|" गाँधी के अनुसार महिलाओं को भी समाज में प्रमुख स्थान मिलना चाहिए और पुरूषों की तरह महिलाओं को भी उनकी नैतिक विशेषताओं के आधार पर जाँचा जाना चाहिए न कि पूर्व निर्धारित शारीरिक रचना के आधार पर| इसके साथ उन्होंने लिंग-भेद व स्त्री पुरूष संबंधों की सामान्य समझ पुनःनिर्मित की| उनके जीवनदायी विचार परिवार की एकसूत्रता और महिलाओं की स्वायत्तता के संबद्ध हैं|

उनका पुनर्संरचित परिवार वह जगह है जहाँ पिता एवं माता कर्तव्यों का बंटवारा करते हैं, जो उन्हें ऐसा कहने के लिए अग्रसर करता है कि,''बच्चों की देखभाल करना एक संयुक्त जिम्मेदारी है, महिला एक माता है पर उसकी मातृवत् कोमलता अपने बच्चों से परे भी विस्तृत होनी चाहिए और इसीलिए उसका कार्यक्षेत्र घर से परे भी विस्तृत होना चाहिए|'' उन्होंने न सिर्फ पिता के कर्तव्यों को नये क्षेत्रों तक बढ़ाया, बल्कि इस पर भी जोर दिया कि महिलाओं को घरेलू अभिरुचियों से परे अपने जीवन को अधिक व्यापक समुदायों तक विस्तृत करना चाहिए|

गाँधी अपनी योजना की कठिनाई को समझते थे| यह समाज में उन संस्थागत रीतियों से जुड़ी है जिनसे व्यक्ति की पहचान धनिष्ठतः संबद्ध होती है| प्रचलित व्यवस्थाओं को बनाये रखने में विद्यमान सांस्कृतिक व मनौवैज्ञानिक निवेश अतिप्रबल है पर, वे कारण बताते हुए कहते हैं, अलघंनीय नहीं हैं| वह कारण जो गाँधी बताते हैं कि दृढ़निश्चयी महिलाएँ साहस पूर्वक, बिना पसीजे अपनी-अपनी स्वायत्तता की माँग पर डटी रहे|

मैं महिलाओं की पूर्ण स्वतंत्रता की उत्कृष्ट इच्छा रखता हूँ| मैं बाल विवाह का तिरस्कार करता हूँ| एक बाल विधवा को देखकर थर्रा जाता हूँ और तब गुस्से से काँप जाता हूँ जब एक पति, जो अभी-अभी विधुर हुआ है निर्दय उदासीनता के साथ दूसरे विवाह के लिए रिश्ता तय करता है| मैं उन माता-पिता की आपराधिक उदासीनता पर शोकाकुल होता हूँ जो अपनी पुत्रियों को बिल्कुल अशिक्षित और अबोध रखते हैं और उनका पालन पोषण केवल किसी साधन संपन्न युवक से विवाह के उद्देश्य से करते हैं| सारे दुख और गुस्से के बावजूद भी मैं इस समस्या की कठिनाई को महसूस करता हूँ| महिलाओं को मताधिकार और एक समान कानूनी दर्जा मिलना चाहिए| लेकिन समस्या यहीं खत्म नहीं होती| बल्कि यह तो उस बिंदु से शुरू होती है जहाँ महिलाएँ राष्ट्रीय राजनीतिक बहस की शुरुआत प्रस्तावित करती है|

4.10 'लिंग-भेद व परिवार' के बारे में पुनर्विचार

महिलाओं की स्थिति के बारे में गाँधी की समालोचना के स्पष्ट पक्षों में से एक यह है कि महिलाएँ, प्रथमतः व प्रधानतः अपने सम्मान व अधिकारों के लिए दावा प्रस्तुत करें| इस आंदोलन में उन्होंने जिस तरीके से सहायता की वह परंपरागत स्त्री पुरूष संबंधों को स्वयं चुनौती देना था| ऐसा करने के लिए गाँधी पुराने ढर्रे से परे जाना चाहते थे| गाँधी के मस्तिष्क में दूसरे दो प्रकार थे| एक जो मिथकों से असंख्य समाजों में फैलता है और इस विचार से संबद्ध है कि कुछ

व्यक्ति स्वायत्त कर्ता के रुप में कार्य करने में असमर्थ होते हैं (जाति, लिंग, वर्ग, नस्ल और समुदाय की वजह से)| दूसरा अपनी उत्पत्ति में अधिक आधुनिक है कि लैगिंक अन्याय का समाधान महिलाओं को ज्यादा अधिकार देकर किया जा सकता है| इसका विरोध मुश्किल से ही किया जाता है पर गाँधी इसे अपूर्ण मानते हैं| यह स्थिति जिस चीज पर ध्यान नहीं देती है वह है परिवार| यहाँ इस पर ध्यान देना सहायक होगा, जिस पर कि गाँधी जोर देते हैं, कि लैंगिक समानता की संकल्पना के किसी भी पुननिर्माण में परिवार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए|

पारंपरिक रूप से, पितृसत्तात्मक प्रतिमान से कार्य करते हुए, पुरूषों के द्वारा, परिवार को महिला उत्तरदायित्व मानकर, उसकी देखभाल महिलाओं को सौंप दी गई है जो पूर्ण स्वायत्तता की हकदार हैं| यहाँ पुनर्विचार की आवश्यकता है, परिवार की मूल्यवत्ता के विषय में नहीं बल्कि श्रम के विभाजन के संबंध में, जो कि परिवार की देखभाल करते हुए किया जाता है और सामाजिक रीतियों के संबंध में भी, जो इसे सुरक्षित या कमजोर बनाती हैं| आधुनिक युग में, परिवार बिखराव, व्यक्तित्व शून्यता और लाभ प्राप्ति की लालसा के लिए ज्यादा भेद्य हो गये हैं| इसकी पुरानी मोटी और संरक्षी दीवारें नए वाणिज्यिक नियमों से चूर-चूर हो गई हैं| और यह (ज्यादातर अनिच्छा से) बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी जनसंचार के माध्यमों और जन समाज से बाँटने लगा है| महिला की पूर्ण स्वायत्तता के बारे में भी बात करना गाँधी के लिए परिवार की स्वायत्तता के बारे में भी बात करना है|

गाँधी बार-बार उन बहुत से परंपरागत व आधुनिक दोनों तरीकों की तरफ संकेत करते हैं जो स्वायत्तता को नष्ट करते हैं और वे जोर देना चाहते हैं कि कोई भी समाधान, जो समानता की राह की बाधाओं को तोड़ता है, इसका भी ध्यान रखे कि समाज के सभी सदस्य अंतर्संबद्ध हैं| इस कारण से, वे चाहते थे कि पुरूष व महिला दोनों अपने स्वायत्तता संबंधी दावों को पहचानें जो लिंग-विभेद से ऊपर हों| वे पुरूष व महिला दोनों को यह भी बताना चाहते थे कि वे घर की देखरेख संबंधी पुनर्कृत श्रम विभाजन में परिवार की सुरक्षा का मार्ग देखें| नये श्रम विभाजन की कोई निश्चित रूपरेखा गाँधी प्रदान नहीं करते| बजाय इसके वे दलों के बीच एक संवाद आमंत्रित करते हैं और इसको भी वे रोकने को तैयार हैं यदि उनमें से कुछ दलों की स्वायत्तता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा हो, विशेषकर जो सबसे कमजोर हो|

किंतु वे आगे जाना चाहते थे| गाँधी जोर देते हैं कि न केवल उन तरीकों और सामाजिक रीतियों की छानबीन जरुरी है जिन्होंने महिलाओं की स्वायत्तता को नष्ट किया है बल्कि इसकी भी कि किस तरह से महिलाओं के समानीकरण ने परिवार में बदलाव किया है| इस अध्ययन में, जो यहाँ प्रस्तुत है, परिवार महिला सषक्तीकरण में एक रूकावट की तरह कार्य नहीं कर सकता, पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, इस कारण से, स्त्री पुरूष संबंधों के बारे में किसी भी गाँधीवादी बहस में, किसी भी समाज के सर्वाधिक कमजोर सदस्यों की जरूरतों पर विचार विमर्श एक प्रमुख स्थान रखता है| और इस पर भी कि किस तरह से उनका शारीरिक व नैतिक रूप से संरक्षण व पालन-पोषण किया गया है| कोई भी इस तरह का विचार-विमर्श केवल स्त्री-पुरूष संबंधों तक ही सीमित न हो बल्कि उन हजारों रीतियों तक भी

फैला हो जो परिवार के मूल कार्यों में सहायता करती हैं या बाधा बनती हैं| दूसरें शब्दों में, कोई भी नारी संबंधी गाँधीवादी बहस परिवार और नागरिक समाज संबंधी बहस भी होती है|

4.11 सारांश

नारी पर गाँधी का अध्ययन ना केवल गहन है वरन वह पूर्णतः मौलिक भी है| गाँधी को किसी भी पूर्व निर्धारित श्रेणी में नहीं रखा जा सकता चाहे वह श्रेणी उदारवादियों की हो, परंपरावादियों की या फिर तत्ववादियों की| कोई भी वाद या श्रेणी उन्हें तभी तक स्वीकार्य थी जब तक वह उनके नैतिक आध्यात्मिक ढाँचे से मेल खाती हो|

परिवार और नारी सशक्तिकरण उनकी नजर में दो विरोधी नहीं बल्कि साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ है| धर्म ग्रन्थों के अन्धानुकरण का विरोध उनकी विवेक प्रधानता को उजागर करता है| कानून का यद्यपि वे विरोध नहीं करते परन्तु उनका अधिक आग्रह एक जाग्रत नागरिक समाज पर रहता है, एक ऐसा समाज जो स्त्री-पुरूष के लिंग भेद से परे जाकर चेतना के स्तर पर व्यक्ति की गरिमा को स्वीकार करता है|

जहाँ तक नारी समस्याओं का प्रश्न है, गाँधी उसे अध्ययन की पृथक इकाई नहीं मानते वरन संपूर्ण सामाजिक-धार्मिक ढाँचे और नैतिक मूल्यों के संदर्भ में उसे देखे जाने पर जोर देते हैं|

4.12 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी किस सीमा तक नारी सम्बन्धी विचारों में पारंपरिक उदारवादियों से सहमत प्रतीत होते हैं?
2. तत्ववाद से क्या अभिप्राय है? गाँधी तत्ववाद की कसौटी पर कितने खरे उतरते हैं?
3. परिवार के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण बताइये|
4. अत्यधिक कमजोर स्थिति वाली स्त्रियों के संबंध में गाँधी क्या उपाय बताते है?
5. नारी संबंधी गाँधी दर्शन का समग्र मूल्यांकन कीजिये|

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी एम.के. विमेन्स् रोल इन सोसाइटी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1959
2. जोन्स, ई. स्टेनले, महात्मा गाँधी - एन इन्टरप्रिटेशन, एबिन्गदन-कोक्सबरी प्रेस, न्यू योर्क
3. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द लास्ट फेज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद 1956

4. आशीष, नंदी, "ऑप्रेशन एंड ह्यूमन लिबरेशन: टुवर्ड्स ए पोस्ट गाँधीयन यूटोपिया", पॉलिटिकल थोट इन मॉडर्न इंडिया, संपादित थामस पेन्थम एंड केनेथ एल. डयश, सेज, नई दिल्ली, 1986

5. हिंगोरानी, ए. टी., गाँधी फॉर द 21st सेंच्युरी, खण्ड 9, भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली, 1999

6. किश्वार, मधु पी. गाँधी एण्ड विमेन, मानुशी प्रकाशन, दिल्ली, 1986

इकाई – 5

अस्पृश्यता उन्मूलन और गाँधी

इकाई रूपरेखा

5.0 उद्देष्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गाँधी चिन्तन एवं प्रयास

5.3 अस्पृश्यता का उद्भव एवं समाधान

5.4 दलितों की स्थिति में सुधार के प्रयास

5.5 हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन

5.6 जनमत जागृत और सत्याग्रह

5.7 मंदिर प्रवेश

5.8 अस्पृश्यता निवारण हेतु आन्दोलन

5.9 उपवास और जनजागृति

5.10 पूना पैक्ट द्वारा पृथक निर्वाचन की समस्या का समाधान

5.11 सारांश

5.12 अभ्यास प्रश्न

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

यह इकाई महात्मा गाँधी के अस्पृश्यता सम्बन्धी विचार और कार्य पर प्रकाश डालती है| इसका उद्देश्य है:-

- गाँधी के चिन्तन और कार्य को समझना|
- अस्पृश्यता के उद्भव और हिन्दू समाज मे ंइसके आधार पर व्याप्त जातिगत भेदभाव को समझना|
- अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए महात्मा गाँधी द्वारा किये गये संघर्ष को रेखांकित करना|
- अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए प्रभावी प्रयास क्या हो सकते हैं|
- अस्पृश्यता निवारण का कार्य केवल काननू निर्माण या सरकारी हस्तक्षेप से पूर्ण न होकर सामाजिक जागृति और लोगों के हृदय परिवर्तन से होगा|

5.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक तथा न्याय की स्थापना में बाधक मानते थे| उन्होंने अस्पृश्यता उन्मूलन को राजनीतिक स्वतंत्रता की तुलना में अधिक महत्व दिया| गाँधीजी के अनुसार अस्पृश्यता अनैतिक तथा भारतीय समाज पर एक बदनुमा दाग है जो मिथ्या अभिमान और स्वार्थ वृत्ति का सामाजिक रूप है|

समाज के विभिन्न समुदायों में जीवन स्तर, आर्थिक स्थिति अथवा संस्कृति के प्रसार, नस्ल-रंगभेद आदि से उत्पन्न वर्गीय और विविधता 'सामाजिक असामनता' के विस्तार के प्रभावी कारक के रूप में प्रस्तुत है| किन्तु किसी व्यक्ति को उसके किसी जाति विशेष में जन्म लेने के कारण अस्पृश्य घोषित कर उसे समस्त मानवीय अधिकारों और सम्बन्धों से पूर्णतया विलग और बहिष्कृत करने की अमानवीय, अन्याय तथा अत्याचार पर आधारित 'छूआछूत प्रथा' का एकमात्र उदाहरण भारतीय समाज है| संभवतः भारतीय समाज की मूल परम्पराओं की स्थापना के काल में इस प्रकार की किसी प्रथा का अस्तित्व नहीं था किन्तु कालान्तर में सृजित धर्मग्रंथों में इसके औचित्य की स्थापना ने इसे भारतीय समाज की मानसिकता, जीवन पद्वति तथा सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग बना दिया|

समाज में विद्यमान समस्त असामनताओं को समाप्त कर सौहाद्र्व मानवीय संबंधों पर आधारित समाज की स्थापना के लिए गाँधी सदैव प्रयासरत थे| वैचारिक और क्रियान्वित के स्तर पर अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए उनका अमूल्य योगदान रहा है|

5.2 गाँधी चिन्तन एवं प्रयास

भारतीय समाज में जन्म के आधार पर एक वर्ग के साथ इतना अमानवीय तथा क्रूर व्यवहार किया जाता था कि उन्हें स्पर्श करना या उनकी छाया पड़ना भी अपवित्रता का कारण माना जाता है| अतः गाँधी ने इस अमानवीय प्रथा के कारणों को समझने व समाप्त करने का प्रयास किया| अस्पृश्यता को पूर्ण रूप से समझने और समाधान निकालने के लिए गाँधी ने इसके उद्भव और प्रचलन के कारण और प्रकृति को सारगर्भित रूप में समझने का प्रयास किया|

अस्पृश्यता की उत्पत्ति को जानने के लिए गाँधी ने ऐतिहासिक ग्रंथों और धार्मिक ग्रंथों का न तो गहनतम अध्ययन किया और ना ही इस संदर्भ में अपना कोई नया सिद्धान्त ही प्रतिपादित किया, अपितु दैनिक जीवन के अनुभव व समाज में होने वाले पारस्परिक व्यवहार व अन्तः क्रिया का निरीक्षण करके ही उन्होंने इस संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं, "आरम्भ में अस्पृश्यता स्वास्थ्य संबंधी उपाकारों का विज्ञान था और भारत के अलावा, दुनिया के हर क्षेत्र में आज भी उसका सही रूप है| ऐसा माना जाता है कि गन्दे व्यक्ति या वस्तु छूने के योग्य नहीं होते लेकिन जैसे ही उसकी गंदगी खत्म हो जाती है, वह वस्तु या व्यक्ति अछूते नहीं रह जाता अतः मेहतर भी तभी तक अछूत है जब तक कि सफाई कार्य करने के बाद स्वच्छ नहीं हो जाता है|"

गाँधी का मानना था कि अस्पृश्य माने जाने वाले वर्ग तन्मयता से समाज की स्वच्छता का कार्य करके समाज को स्वच्छ रखता है| जिस प्रकार एक मां अपने बच्चे की गंदगी को साफ करके उसके स्वास्थ्य की रक्षा करती है, उसी प्रकार एक साफ-सफाई का काम करने वाला व्यक्ति पूरे समाज की गंदगी साफ कर उसके स्वास्थ्य की रक्षा करता है| यदि ब्राह्मण, समाज की आत्मा को स्वच्छ रखने का काम करता है तो उपर्युक्त व्यक्ति समाज के शरीर को| लेकिन सफाई में संलग्न कर्मचारी उन सभी सेवाओं की नीव का निर्माण भी करता है|

5.3 अस्पृश्यता का उद्भव एवं समाधान

गाँधी न तो इस मत से सहमत थे कि जाति-व्यवस्था अस्पृश्यता की उत्पत्ति का मूल कारण है और ना ही अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए जाति-व्यवस्था को समाप्त करने के ही पक्षधर थे| उनके शब्दों में ''अस्पृश्ता की उत्पत्ति जाति-व्यवस्था से नहीं हुयी है बल्कि इसका उद्गम ऊँच नीच के भेद में है जो हिन्दुत्व में शनै-शनै विकसित हुआ है| यह निरन्तर इसे नष्ट कर रहा है| अतः अस्पृश्यता पर आक्रमण का अर्थ है - इस ऊँच-नीच की भावना पर आक्रमण| मैं इस अवधारणा में विश्वास नहीं करता कि जाति-व्यवस्था, वर्णाश्रम से भिन्न होने के बावजूद एक घृणित और पतित अन्धविश्वास हैं| इसकी अपनी सीमायें तथा कमजोरियाँ होने के बावजूद इसमें पापपूर्ण कुछ भी नहीं है - जैसे अस्पृश्यता| यदि अस्पृश्यता का जन्म-जाति व्यवस्था से हुआ है तो यह वैसा ही है जैसे मानवशरीर के किसी अंग का भद्दा विकास या फसल में मोथा लगना| जाति-व्यवस्था को निम्न जातियों (अस्पृश्यता) के कारण नष्ट कर देना वैसा ही होगा जैसे शरीर में किसी भद्दे अंग के कारण उस पूरे शरीर को नष्ट कर देना या मोथे के कारण फसल को| यदि पूरी व्यवस्था को बचाना है तो इस असंयमित हिस्से (अस्पृश्यता) को समाप्त करना होगा| अस्पृश्यता ऊँच-नीच की भावना से विकसित हुयी है जो धीरे-धीरे हिन्दुत्व को विनाश की ओर ले जा रही है|'' स्पष्ट है कि गाँधी अस्पृश्यता के लिए

जाति-व्यवस्था को उत्तरदायी न मानकर ऊँच-नीच की भावना तथा इस वर्ग द्वारा किये जाने वाले सफाई के कार्य को अस्पृश्यता के जन्म व विकास का कारण मानते है|

गाँधी ने अस्पृश्यता की प्रकृति को भी समझाने का प्रयास किया है| उन्होंने इस समस्या को अतार्किक, अधार्मिक माना| उनका मानना था कि "दलितों के अलावा भी समाज के कुछ व्यक्ति स्वच्छता का काम करते है, लेकिन इन्हें अछूत नहीं माना जाता अर्थात् इस समस्या का आधार तार्किक न होकर परम्परागत है| हर ब्राह्मण को ऊंचे दर्जे का और पवित्र समझा जाता है जबकि दलितों को अस्पृश्य| न तो सामान्य शिष्टाचार तथा न ही न्याय की दृष्टि से अस्पृश्यता का समर्थन करना संभव है| गाँधी ने अस्पृश्यता को विवेकरहित ही नहीं अपितु अमानवीय तथा हिन्दू-धर्म के प्रतिकूल भी बताया, क्योंकि इस व्यवस्था में समाज के एक बड़े वर्ग को समस्त मानवीय अधिकारों से न केवल वंचित रखा गया था अपितु रूढ़िवादी हिन्दुओं ने इसे हिन्दु शास्त्रों का हवाला देकर धर्मसम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया और अस्पृश्यता निवारण को धर्म भ्रष्टता या पाप के रूप में अस्वीकार कर दिया था| अतः गाँधी ने इसके विपरित, अस्पृश्यता पालन की भत्र्सना की और कहा कि - ईश्वर की आँखों में, जो कि सबका सृष्टिकर्ता है, सब प्राणी समान है| यदि वह मानव-मानव में भेद करता तो उसमें से एक हाथी के समान तथा दूसरी चीटी के आकार का दिखाई देता लेकिन उसने सभी मानवों की एक समान संरचना की है|" उन्होंने यह माना कि यह अन्याय की पराकाष्ठा है कि भारतीय समाज के सर्वाधिक उपयोगी सेवक - दलितों को सफाई का काम करने के कारण अस्पृश्य तथा निम्न जाति का समझते है|

इस अमानवीय प्रथा के पालन के लिए हिन्दुओं की आलोचना में उनकी पीड़ा छुपी हुयी थी, लेकिन उन्होंने इसके लिए हिन्दुओं पर कटु व्यंग्य करते हुये कहा है कि हम स्वराज्य की स्थापना के लिए अधीर है लेकिन अपने सहधार्मियों के पांचवे हिस्से के साथ बदतर व्यवहार करते हैं| उनहोंने गीता का उदाहरण देते हुए अस्पृश्यता को हिन्दु धर्म के प्रतिकुल सिद्ध किया ताकि रूढ़िवादी और अपने मानसिक जंजाल में से निकल कर गाँधी के प्रयासों को सफल बनाने में सहयोग दें| उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-गीता में भगवान कृष्ण द्वारा बताये गये समानता के सिद्धान्त में, मैं विश्वास करता हूँ| गीता हमें यह शिक्षा देती है कि चारों जातियों (वर्णों) के साथ समानता के आधार पर व्यवहार किया जाना चाहिए|

दलितों के प्रति गाँधी की केवल शाब्दिक सहानुभूति नहीं थी| उन्होंने एक ओर अस्पृश्यता का विरोध किया, वही दूसरी ओर इसे समाप्त करने के उपाय भी सुझाये| चूंकि गाँधी साध्य-साधन की पवित्रता तथा सत्य-अहिंसा में अटूट आस्था रखते थे अतः स्वाभाविक रूप से अस्पृश्यता समाप्ति के साधन भी उपर्युक्त सिद्धान्तों की सीमा में ही निर्देशित किये गये| इस हेतु उन्होंने दोहरे सुधार की पेशकश की- एक ओर दलितों की स्थिति में सुधार और दूसरी और सवर्ण हिन्दुओं का हृदय-परिवर्तन|

5.4 दलितों की स्थिति में सुधार

उनका मानना थ कि दलितों की सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक स्थिति में सुधार किये जाये तो वे स्वयं जागृत होंगे, स्वच्छ रहेंगे तथा अपनी दीनता के लिए स्वयं को दोषी नहीं मानेगे| लेकिन प्रश्न उठता है कि यह काम कौन करें? गाँधी के अनुसार अस्पृश्यता पर सभी दिशाओं से आक्रमण करने वाला एक ठोस रचनात्मक कार्यक्रम होना चाहिए| इस काम के लिए हजारों स्त्री-पुरूषों, लड़के-लड़कियों की समग्र ऊर्जा की आवश्यकता है जो कि श्रेष्ठ धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित हो| ऐसे दलित सेवकों को अपना पूरा ध्यान दलितों के लिए निम्नलिखित कार्य में लगाना चाहिए:

दलितों को स्वास्थ्य तथा स्वच्छता की शिक्षा व विकास, अस्वच्छ व्यवसायों में उन्नत विधियों का प्रयोग, गौ-मांस तथा अन्य मृत पशुओं के मांस भक्षण का त्याग, मादक द्रव्यों के सेवन का परित्याग, दलितों को इस बात के लिए प्रेरित करना कि जहाँ उपलब्ध हों, वे अपने बच्चों केा विद्यालय भेजें तथा स्वयं माता-पिता को रात्रि विद्यालय में बुलाना| स्वयं कार्यकत्ताओं के मध्य छूआछूत का परित्याग, इत्यादि|

गाँधीजी का मानना था कि यदि दलितों की सामाजिक तथा शैक्षणिक स्थिति में सुधार किया जाय तो वे अपनी स्थिति के प्रति स्वयं जागृत हो जायेगे तथा उनके मन से सवर्ण हिन्दुओं का भय समाप्त हो जायेगा| लेकिन भय समाप्त करके वे दलितों को हिन्दुओं के विरूद्ध खुले संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर रहे थे, अपितु उन्हें यह आभास दिलाना चाहते हैं कि वे समाज के सबसे निम्न व पतित लोग न होकर महान् समाज सेवक हैं जो पूरे समाज की स्वच्छता के लिए अपने कत्र्तव्य से कभी विमुख नहीं होते| हरिजनों को सम्बोधित करते हुए गाँधी ने कहा ‘‘तुम्हें आभास होना चाहिये कि तुम हिन्दू समाज को स्वच्छ कर रहे हो अतः स्वयं अपने जीवन को भी स्वच्छ रखो| हिन्दू स्वभाव से पापी नहीं है, वे अज्ञान में डूबे हुए है| छूआछूत इसी वर्ष समाप्त हो जानी चाहिए| मेरी दो सर्वाधिक प्रबल इच्छायें है - अछूतों की मुक्ति एवं गोरक्षा| जब ये दोनों इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी - स्वराज्य आ जायेगा तथा इसी में मेरा मोक्ष भी है|‘‘

इस प्रकार गाँधीजी अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए व्यग्र थे, लेकिन लक्ष्य पूरा होने से बहुत दूर था| अहिंसा में आस्था के कारण गाँधी का मानना था कि यद्यपि सवर्ण हिन्दुओं ने सार्वजनिक स्थानों - कुओं, मंदिर, विद्यालय, यहाँ तक कि सड़कों के प्रयोग को भी दलितों के लिए प्रतिबिन्धित कर रखा था लेकिन इन मानवीय अधिकारों को सवर्णों से बलात् छीना नहीं जा सकता है| अतः दलितों के लिए अलग कुएं खोदकर, पाठशालायें खोलकर सवर्णों को उनके उपयोग के लिए आमंत्रित कर सकते हैं| संभव है ऐसा करने पर दलितों का सामाजिक बहिष्कार किया जाय लेकिन हमें यह देखना होगा कि ऐसी स्थिति में उन्हें अन्यत्र रोजगार मिल जाय| हमें हरिजनों को यह शिक्षा देनी होगी कि वे दृढ़ता पूर्वक तथा अहिंसा पूर्वक रहना सीखें और सवर्णों को नम्रता पूर्वक याद दिलाते रहें कि अन्याय सर्वदा कायम नहीं रहता|

गाँधी मानते थे कि दलितों की दुदर्शा के लिए आर्थिक कारण भी उत्तरदायी थे| यहाँ तक कि दलितों जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी पर्याप्त रूप से नहीं कर सकते थे| उनकी आजीविका का एकमात्र साधन समाज की स्वच्छता तथा चमड़े का काम था| अन्य व्यवसाय अपनाने पर प्रतिबन्ध था| अतः ऐसी स्थिति में यदि दलित सवर्ण हिन्दुओं की इच्छा के खिलाफ, मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए कदम उठाते तो सवर्ण हिन्दु उनका सामाजिक बहिष्कार करते जिसके परिणामस्वरूप उनकी स्थिति और भी शोचनीय हो जाती| अतः जहाँ एक ओर उनहोंने दलितों को सवर्णों के प्रति नम्रता का व्यवहार करने की बात की, वहीं दूसरी ओर खादी को आर्थिक सहायता के रूप में पेश कया| उनके अनुसार खादी दलितों के जीवन का आधार है| यह दलितों सहित गरीबों के लिए सहायक है क्योंकि अन्यों के लिए और भी कई व्यवसाय सुलभ है, लेकिन हरिजनों को नहीं| दलितों की दयनीय स्थिति के बारे में विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "..... उन्हें सार्वजनिक सड़के, विद्यालय, अस्पताल, कुंए, पार्क आदि का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं| राह में चलते समय निश्चित दूरी रखने के नियम का पालन न करना उसका अपराध माना जाता है| समाज में बहिष्कृत कर गाँव व शहर के सबसे बुरे स्थान पर रखा जाता है, जहां व्यवहारिक रूप से ही वे किसी प्रकार की सामाजिक सुविधा प्राप्त नहीं कर सकते| सवर्ण हिन्दू डॉक्टर तथा वकील उनकी सेवा नहीं करते उनके धार्मिक कार्यक्रम ब्राह्मण सम्पन्न नहीं करते| आश्चर्य की बात है कि इस सब के बावजूद वे अपना अस्तित्व कायम रखते हुए सम्प्रदाय में ही बने हुए हैं|"

यही नहीं गाँधी को दलितों की उपर्युक्त दुर्दशा के बावजूद सहनशीलता की पराकाष्ठा मानवीय क्षमता से बाहर दिखाई दी| इसीलिए गाँधी ने दलितों की दुर्दशा को देखने के बाद यहाँ तक कह दिया कि "उनका इस हद तक दमन किया गया है कि वे सब अपने आताताईयों के विरूद्ध विद्रोह के लिए भी खड़े हो सकते हैं|" इसीलिए गाँधी ने दलितों की स्थिति में सुधार के लिए और हिन्दुत्व के सिर से अस्पृश्यता का दाग मिटाने के लिए दलित सेवकों को, अपना सब कुछ उनकी सेवा में त्याग देने के लिए आह्वान किया है जैसे - पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक लाभ और यहाँ तक कि स्वयं जीवन का बलिदान भी| दलित को भूखों मारने के स्थान पर स्वयं भूखे मरना तथा यह काम किसी राजनीतिक लक्ष्य के लिए नहीं अपितु हिन्दुत्व को जीवित तथा शुद्ध रखने के लिए करना भी ऐसे प्रयासों मे शामिल किए गए| गाँधी जानते थे कि दलितों की इस दुर्दशा से मुक्ति के लिए इसी प्रकार के आत्म त्याग की आवश्यकता है| ऐसे कार्यकर्ताओं के संगठन के लिए गाँधी ने 1932 के पूना पैक्ट के पश्चात् 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की थी जो दलितों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति में उन्नति के लिए समर्पित होकर काम करें|

5.5 हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन

गाँधी की इस अवधारणा में दृढ़ आस्था और विश्वास था कि अस्पृश्यता निवारण सहित समाज सुधार का कोई भी कार्य शक्ति के आधार पर सफल नहीं हो सकता और ना ही केवल कानून से समाज सुधारों संभव है| जनता के विचारों को तथा हृदय को परिवर्तित करके ही ऐसा किया जा सकता है| गाँधी के अनुसार अस्पृश्यता कानून की शक्ति से भी

समाप्त नहीं की जा सकती| यह तभी समाप्त की जा सकती है जबकि बहुसंख्यक हिन्दू महसूस करें कि यह उनके लिए शर्मनाक तथा ईश्वर व मानवता के प्रति अपराध है| अन्य शब्दों में, अस्पृश्यता निवारण हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन तथा शुद्धिकरण की प्रक्रिया है| कानून की सहायता तभी ली जा सकती है जबकि कानून सुधारों की प्रगति को रोकता हो या उसमें बाधा डालता हो जैसे - मंदिर के संरक्षकों तथा मंदिर जाने वाली जनता की इच्छा के बावजूद कानून किसी मंदिर विशेष को खोलने के विरूद्ध हो|

इसी प्रकार शक्ति द्वारा अस्पृश्यता निवारण के संदर्भ में उन्होंने कहा, ''कुछ अस्पृश्यों का कहना है कि यदि हिन्दुओं ने उनके प्रति व्यवहार में परिवर्तन नहीं किया तो वे ताकत का सहारा लेंगे| क्या अस्पृश्यता ताकत से मिटाई जा सकती है? क्या इन साधनों से अस्पृश्यों की प्रगति हो सकती है? केवल एक रास्ता है, जिसके माध्यम से मैं और तुम कट्टर हिन्दुओं को उनकी हठधर्मिता से विमुख कर सकते हैं और वह रास्ता है - धैर्यपूर्ण, तर्क-वितर्क तथा उचित व्यवहार, जहाँ तक सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन ना हो, मैं आपको धैर्य बनाये रखने को कहता हूँ|

अस्पृश्यता निवारण को वे स्वराज्य के समान ही महत्वपूर्ण मुद्दा मानते थे तथा अछूतों केा विश्वास दिलाना चाहते थे कि उनके हृदय में दलितों के प्रति संवेदना है, लेकिन सत्य अहिंसा ही इस उद्देश्य की प्राप्ति के साधन हैं| नाराज होकर बल पूर्वक हृदय परिवर्तन नहीं करवाया जा सकता, प्रेम से ही ऐसा किया जा सकता है| गाँधी अस्पृश्यता निवारण को, सवर्ण हिन्दुओं के लिए प्रायश्चित का काम मानते थे क्योंकि सदियों से सवर्ण हिन्दुओं ने अपने सहधर्मियों के प्रति अमानवीय व्यवहार किया है| गाँधी ने उन जड़ों को टटोलने की कोशिश की जिसके आधार पर सवर्ण हिन्दुओं ने अस्पृश्यता को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना रखा था तथा अस्पृश्यता का विरोध करने वाले व्यक्ति को धर्म तथा स्वयं अपना ही शत्रु समझते थे| गाँधी के शब्दों में, ''कंट्टरपंथी हिन्दुओं का विश्वास है कि अस्पृश्यता शास्त्र सम्मत है और यदि इसे समाप्त कर दिया गया तो हिन्दु धर्म पर भारी संकट आ जायेगा| अतः हरिजनों के मंदिर प्रवेश के लिए सवर्णों को बाध्य करने से उनका हृदय परिवर्तित नहीं हो सकता बल्कि इस हेतु उनके विश्वास को बदला जाय कि मंदिर प्रवेश निषेध अनुचित है| यह हृदय परिवर्तन के द्वारा ही संभव है और हृदय परिवर्तन उनसे अपील करके जैसे - प्रार्थनायें, उपवास, स्वयं आत्म पीड़न करके किया जा सकता है| ऐसे सुधारक को मृत्युपर्यन्त उपवास के लिए तैयार रहना चाहिए|''

हृदय परिवर्तन की अवधारणा की सफलता को सिद्ध करने के लिए ही गाँधी ने अपने अस्पृश्यता विरोधी भाषणों के प्रभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है ''हिन्दुस्तान के हर भाग में सैकड़ों छोटी-मोटी सभाओं में कुछ अपवादों को छोड़कर अस्पृश्यता के विरूद्ध मेरी प्रस्तुति का कोई विरोध नहीं हुआ| भीड़ की भीड़ ने प्रस्ताव पारित करके छुआछूत का तिरस्कार किया तथा ईश्वर को साक्षी मानकर शपथ ली कि वह उन्हें अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए की गई प्रतिज्ञा को पूरा करने की शक्ति दे|''

जब 1937 में चुनावों के बाद प्रान्तों में काग्रेसी मंत्रिमण्डल बने तो गाँधी ने उम्मीद की कि कांग्रेस का आधार जनमत होने के कारण अस्पृश्यता के लिए बेहतर काम कर सकती है| "अस्पृश्यता जैसे कुप्रथा, जो धर्म के नाम पर जनता की रीढ़ की हड्डी बन गई है, उसे शक्ति के बल पर नहीं मिटाया जा सकता| कांग्रेस ने जनशक्ति के आधार पर अपने आप को स्थापित किया है| आशा है कांग्रेस मंत्री जनमत को शिक्षित करके अपनी प्रगति के कदमों को बढ़ाने के लिए जन समर्थन प्राप्त करेंगे जिसके परिणाम से कांग्रेसी मंत्रीमण्डल वाले प्रान्तों में हरिजन सम्बन्धी सुधार कार्यों को प्रेरणा मिलेगी और इसके खिलाफ खड़ी ताकतें स्वतः समाप्त हो जायेंगी|"

इस प्रकार गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए दोहरे सुधार कार्यक्रम का विचार रखा| जहाँ अपने विरूद्ध हिंसा का खतरा न हो, वहां दलितों को अपने कानूनी अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए और जहां जरूरत हो, न्यायलय की शरण लेनी चाहिए| दूसरी और दलित सेवकों को सवर्णों में अपना आन्दोलन जारी रखना चाहिए और मात्र वैधानिक अधिकारों तक ही नहीं रूकना चाहिए| अस्पृश्यता निवारण दोहरी शिक्षा का काम है - एक और सवर्णों की और दूसरी और दलितों की| उपदेश तथा उदाहरण द्वारा सवर्णों को धैर्य पूर्वक यह सिखाना होगा कि छूआछूत ईश्वर व मानवता के प्रति अपराध है| दलितों को यह शिक्षा देनी होगी कि उन्हें निडर होकर अपने मध्य में अस्पृश्यता समाप्त कर देनी चाहिए|

तत्कालीन समाज सुधारकों के विपरित गाँधी कानून को समाज का साधन नहीं मानते थे लेकिन वे यह जानकर आश्चर्य चकित रह गये कि भारत में अंग्रेजी न्यायालयों ने अस्पृश्यता को इस हद तक मान्यता दे रखी थी कि दलितों द्वारा किये गये कुछ काम तो ब्रिटिश भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत अपराध की श्रेणी में आते थे, जैसे - किसी हिन्दू मंदिर में दलिता का प्रवेश भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध था अतः मंदिर प्रवेश संबंधी आन्दोलन से पूर्व वे इस विधान को समाप्त करना चाहते थे| इसी उद्देश्य से श्री रंगा अय्यर ने केन्द्रीय विधायिका में विधेयक प्रस्तुत किया| लेकिन यह विधेयक कांग्रेसी समर्थन के अभाव में गिर गया|

सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दलितों के नाम से छूआछूत किये जाने वाले अमानवीय अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए मुस्लिम शासन के काल से ही इन लोगों द्वारा धर्म परिवर्तन की परम्परा रही है| ब्रिटिश काल में भी ईसाई धर्म प्रचारकों ने इन्हें समानता की स्थिति प्रदान करने का लालच देकर धर्म स्वीकार करने के लिए प्रसार प्रसार आरम्भ किया| गाँधी ने ऐसे धर्म परिवर्तन करने के द्वारा समस्या का वास्तविक समाधान नहीं माना|

वस्तुतः गाँधी जानते थे कि सभी धर्म के समाजों में ऊंच नीच की भावना का संक्रामक रोग लग गया है अतः दलितों को यदि हिन्दू समाज में रहते हुए न्याय नहीं मिल सकता तो अन्य किसी समाज में भी नहीं मिल सकता क्योंकि अन्य धर्म के प्रचारकों ने धर्म परिवर्तन करवाने के लिए दुकान तो लगा रखी है पर उनके पास ऐसा कोई विशेष आध्यात्मिक गुण नहीं जो कि दलितों से उन्हें पृथक दर्शाता हो| गाँधी ने धर्म परिवर्तन का इस आधार पर विरोध किया कि धर्म रोजमर्रा के जीवन में अदला बदली की वस्तु नहीं है|

धर्म परिवर्तन के प्रश्न पर गाँधी ने दोहरी नीति अपनायी| एक ओर दलितों को यह समझाने का प्रयास किया कि न्याय की प्राप्ति के लिए धर्म परिवर्तन उपयुक्त उपाय नहीं है क्योंकि दुनिया में जिस किसी धर्म को वे स्वीकार करेंगे, आजीवन अपनी मूल पहचान को खत्म नहीं कर सकते| अतः बुद्धिमानी इसी में है कि वे अपने पूर्वजों के धर्म में ही बने रहे और न्याय प्राप्त करने का प्रयास करें| दूसरी ओर उन्होंने सवर्णों को इस बात के लिए दोषी ठहराया कि उनके द्वारा धर्म परिवर्तन दलितों पर थोपी गयी अमानवीय निर्योग्यताओं के कारण ही दलित सामुहिक रूप से धर्म परिवर्तन की मानसिकता बना चुके हैं| उन्होंने कहा, ''हिन्दू समाज अग्नि परीक्षा के दौर से गुजर रहा है| दलितों के व्यक्तिगत या सामूहिक धर्म परिवर्तन से हिन्दू धर्म नष्ट नहीं होगा बल्कि तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हरिजनों को मौलिक न्याय से वंचित रखने के पापपूर्ण निषेधों से नष्ट होगा| इसलिए धर्म परिवर्तन की हर धमकी सवर्ण हिन्दुओं को इस बात की चेतावनी है कि यदि वे समय पर सचेत नहीं हुए तो बहुत देर हो चुकी होगी|''

अस्पृश्यता निवारण के लिए गाँधी ने न तो यह स्वीकार किया कि धर्म परिवर्तन मुक्ति का साधन है और ना ही यह कि हिन्दू समाज में विद्यमान अस्पृश्यता सहित सभी बुराईयों को समाप्त करने के लिए समाज सुधार का काम गैर हिन्दू करें| क्योंकि उनके अनुसार- अस्पृश्यता का पाप हिन्दुओं द्वारा किया गया है अतः उन्हें पश्चाताप, शुद्धिकरण तथा दण्ड पाकर अपने दलित बन्धुओं से ऋणमुक्त हो जाना चाहिए| दूसरे, जहाँ एक सवर्ण हिन्दू के मन में दलितों के प्रति संवेदना व करूणा, प्रेम करोड़ों सवर्णों के हृदय को द्रवित कर देगा, वहां यदि गैर हिन्दू ऐसा करेगा तो हिन्दुओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा| गैर हिन्दू के सद्भावपूर्ण तथा परोपकारी प्रयासों से हिन्दुओं की आंखें नहीं खुलेंगी क्योंकि ये प्रयास हिन्दुओं में अपराध बोध पैदा नहीं कर सकते| इसके विपरीत, बाहरी हस्तक्षेप हिन्दु अस्पृश्यता की और दृढ़ता से कायम रखेंगे| अतः सभी गम्भीर व प्रभावी प्रयास स्वयं हिन्दू समाज में से ही किये जाने चाहिए|

वस्तुतः गाँधी अस्पृश्यता को एक धार्मिक समस्या मानते थे तथा इसके पालन को पाप| अतः उनका कहना था कि अस्पृश्यता निवारण का काम न तो हरिजनों द्वारा किया जाए और ना ही गैर हिन्दुओं द्वारा, अपितु यह कार्य अपने पापों के प्रायश्चित के रूप में सवर्ण हिन्दुओं को करना चाहिए|

5.6 जागृत जनमत और सत्याग्रह

समाज सुधार का आधार जनमत होता है और जिस समाज के लोग अज्ञान के अंधकार में डूबे हों, कुरीतियों तथा अंधविश्वासों से घिरे हों, गाँधी के अनुसार, ऐसे समाज के सुधार के लिए कानून निरर्थक है| जब तक जनता की सहमति न हो, सुधार के क्षेत्र में सरकार नेतृत्व या पहल नहीं कर सकती| क्योंकि सरकार स्वभावतः शासितों की इच्छाओं की व्याख्या कर उन्हें क्रियान्वित करती है| अतः यदि जनमत सुधारों के विरूद्ध या उदासीन हो तो सरकार कानून नहीं बना सकती| यहाँ तक कि, एक घोर निरंकुश सरकार भी अपनी प्रजा पर ऐसे सुधार नहीं थोप सकती जिन्हें प्रजा आत्मसात ना करे| यदि सरकार कानून बना भी ले तो ऐसे कानूनों का पालन भी नहीं किया जाता|

सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध गाँधी के अनुसार, सत्याग्रह एक कारगर उपाय हो सकता है लेकिन सत्याग्रह द्वारा लोगों को समाज सुधार के लिए सहमत करने वाले सत्याग्रही में निम्न गुण होने चाहिए - आत्मानुशासनशील, आत्मनियंत्रक, आत्मशुद्धि तथा समाज में उसकी सुप्रतिष्ठा| फिर सर्वप्रथम जिस कुप्रथा को वह समाप्त करना चाहता है, उसके विरूद्ध जनतम जागृत करना चाहिए और जब पर्याप्त रूप से जनमत जागरूक हो जाय तो बड़े से बड़ा व्यक्ति भी न तो बुराई को अपनाने का और ना ही समर्थन देने का सहास करेगा| एक जागृत तथा प्रबुद्ध जनमत सत्याग्रही का सबसे शक्तिशाली हथियार है| इस प्रकार, गाँधी अस्पृश्यता निवारण सहित सभी सामाजिक बुराईयों को समाप्त करने के लिए जनता की ऐच्छिक स्वीकृति को अनिवार्य मानते थे| बल के रूप में केवल सत्याग्रह बल का प्रयोग करने के पक्ष में थे क्योंकि गाँधी के अनुसार साध्य-साधन की पवित्रता तथा सत्य अहिंसा का पालन करते हुए ''सत्याग्रह'' ही सर्वाधिक उपयुक्त साधन है| यही प्रतिवादी का हथियार भी है|

5.7 मंदिर प्रवेश

भारतीय समाज में दलितों को केवल सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक रूप से ही बहिष्कृत नहीं किया गया अपितु धार्मिक क्षेत्र में तो उन्हें अधर्मी कहकर समस्त धार्मिक अधिकरों और स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया| उन्हें न तो हिन्दू धर्म ग्रंथों के अध्ययन का अधिकार था और ना ही 'मंदिर' नामक धार्मिक इमारतों में प्रवेश का| गाँधी ने धार्मिक क्षेत्र में सबको समानता व न्याय दिलाने के लिए मंदिर प्रवेश संबंधी निषेधों को अधार्मिक ठहराते हुए सवर्ण हिन्दुओं से अपेक्षा की कि वे धर्म की रक्षा के नाम पर अपने सहधर्मियों के प्रति अमानवीय तथा अधार्मिक प्रतिबन्धों को समाप्त कर दें| किसी भी दलित व्यक्ति को मंदिर में जाने से रोकना धर्म तथा मानवता का अपमान है| गाँधीजी का मानना था कि यदि धार्मिक समानता की स्थापना की जाए तो आर्थिक तथा राजनीतिक उन्नति शीघ्रता से होगी| गाँधी केवल विद्यमान मंदिरों को ही खोलने के पक्ष में नहीं थे अपितु मानते थे कि दलितों सहित सभी हिन्दुओं के लिए नये मंदिर खोले जायें तथा इन मंदिरों में किसी के साथ भी किसी प्रकार का भेदभाव न हो, इसका ध्यान रखा जाय|

रूढ़िवादी तथा कट्टपंथी हिन्दुओं द्वारा इस मत का विरोध किये जाने से वे अनभिज्ञ नहीं थे| अतः उन्होंने दलित-सेवकों को मार्गनिर्देश दिया कि वे हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन करने के लिए सत्याग्रह का सहारा लें और आत्मपीड़न द्वारा अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करने का प्रयास करें| इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गाँधी की विचारधारा के अनुरूप प्रसिद्ध 'वायकोम सत्याग्रह' किया गया था| गाँधी ने दलित सेवकों को संबोधित करते हुए कहा था कि यदि वे मंदिर जाने के आदी हों तो अपने साथ दलितों को मंदिर में ले जायें और यदि अपने दलित साथियों के साथ उन्हें भी मंदिर में न जाने दिया जाय, और सेवकों की यह दृढ़ आस्था हो कि अस्पृश्यता अनुचित है तो वे उस मंदिर को उसी प्रकार त्याग दे जैसे हम बिच्छु या आग को छोड़ते है|

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में समानता की स्थापना के लिए गाँधी ने दलितों द्वारा मंदिर प्रवेश की मांग की तथा हिन्दू धर्म को जीवित रखने के लिए धर्म के नाम पर इस अधर्म को समाप्त करने की बात की|

जहां तत्कालीन समाज सुधारकों ने समस्त मानवीय असमानताओं की रक्षक जाति-व्यवस्था को अस्वीकार कर इसे समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाह तथा भोज का समर्थन किया वहां गाँधी ने इन दोनों प्रथाओं को व्यक्तिगत रूचि का विषय बता कर इन्हें अस्पृश्यता निवारण के कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया| इससे भी आगे, अन्तर्जातीय विवाह की आलोचना की और कहा कि एक ही जाति समूह में विवाह करने से एक हद तक आत्म-संयम का अभ्यास होता है क्योंकि व्यक्ति को अपना जीवन साथी एक निश्चित समूह के अन्तर्गत ही चुनना होता है| लेकिन अन्तर्जातीय विवाह और भोज पर प्रतिबन्ध को न तो वे व्यक्ति के ऊपर बलात् थोपना चाहते थे और ना ही किसी को उसकी इच्छा के विरूद्ध अन्तर्जातीय विवाह या भोज के लिए बाध्य करना चाहते थे| लेकिन अस्पृश्यता की भावना के आधार पर यदि कोई व्यक्ति प्रतिबन्ध लगाये तो इसे उन्होंने अनुचित माना|

5.8 अस्पृश्यता निवारण हेतु आन्दोलन

गाँधी ने अस्पृश्यता की केवल आलोचना ही नहीं की अपितु समाप्त करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास भी किये| पीड़ित मानवता के दुःख दर्द को महसूस करते हुए न्याय की प्राप्ति के लिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही संघर्ष आरम्भ कर दिया| रंग तथा नस्ल के भेदभाव के विरूद्ध आन्दोलन में सफलता के बाद वे जब 1920 में भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर अवतीर्ण हुए तो उन्होंने भारत में पीड़ित मानवता के विरूद्ध तुरन्त आवाज उठायी| गाँधी के नेतृत्व में 1922 के कांग्रेस के बारदोली कार्यक्रम में 'अस्पृश्यता निवारण' के मुद्दे को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया| दलितों की उन्नति के लिए सक्रिय कार्यक्रम की नीति निर्धारित करने के उद्देश्य से एक पृथक समिति का गठन भी किया गया जिसे अपने कार्य के लिए तिलक स्वराज फण्ड में से 50 हजार रूपये भी दिये गये|

यंग इंडिया नामक पत्र के माध्यम से इस कुप्रथा के विरूद्ध संघर्ष को उन्होंने जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया| राजनीतिक कार्यों के बाद, जब भी उन्हें समय मिला उन्होंने अपना समय रचनात्मक कार्यक्रम में लगाया जिसमें अस्पृश्यता निवारण को महत्वपूर्ण स्थान था| उन्होंने हिन्दुस्तान के हर कोने में सम्बोन्धित की गई सभाओं में अस्पृश्यता निवारण का महत्वपूर्ण स्थान था| उन्होंने हिन्दुस्तान के हर कोने में सम्बोन्धित की गई सभाओं में अस्पृश्यता के पालन को अमानवीय, अधार्मिक तथा अतार्किक कह कर समाप्त करने की अपील की| गाँधी अपना काम स्वयं करते थे इस संबंध में उनके चरित्र की यह बड़ी विशेषता थी| दक्षिण अफ्रीका प्रवास से ही वे अपना पैखाना खुद साफ करते थे किसी अन्य व्यक्ति से वह यक काम नहीं करवाते थे| असहयोग आन्दोलन की असफलता के बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930) तक रचनात्मक कार्यक्रम को प्रमुखता दी गई जिसमें खादी, चरखे के अलावा अस्पृश्यता निवारण हेतु कार्य किया गया| गाँधी ने स्वयं सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके सवर्ण हिन्दुओं से अस्पृश्यता निवारण के लिए पैसा एकत्रित किया| इसी दौरान प्रथम गोल मेज सम्मेलन हुआ जिसमें कांग्रेस ने भाग लिया|

1931 में जब गोलमेज आरम्भ हुआ तो मार्च 1931 में गाँधी इर्विन पैक्ट के अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और कांग्रेस के एकमात्र सर्वेसर्वा के रूप में भीमराव अम्बेडकर ने प्रतिनिधित्व किया| इसमें

अम्बेडकर ने सर्वप्रथम दलितों के लिए पृथक समुदाय होने के आधार पर राजनीतिक रूप से भी उन्हें पृथक समुदाय के रूप में मान्यता की माँग की| ताकि वे अपने समस्त मानवीय अधिकारों को प्राप्त कर सकें| जबकि गाँधी का कहना था कि जो लोग दलितों के लिए पृथक राजनीतिक निर्वाचन की बात करते हैं, वे न तो आज के भारतीय समाज की संरचना को जानते है और ना ही भारत को| गाँधी के अनुसार पृथक निर्वाचन इस समुदाय को सदैव के लिए ऐसे ही रहने के लिए बाध्य करेगा|

ऐसे पारस्परिक विरोधी विचारों के कारण अल्पसंख्यक समस्या का गोलमेज सम्मेलन में कोई सर्वसम्मत हल न निकलने पर सम्मेलन इस निर्णय पर स्थगित हो गया कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा इस संदर्भ में दिया गया निर्णय इन प्रतिनिधियों को मान्य होगा|

5.9 उपवास और जनजागृति

17 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने भारत में अल्पसंख्यकों की समस्या के हल के लिए जो निर्णय दिया, उसमें दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई थी| इसके विरोध में गाँधी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर सूचित किया कि पृथक निर्वाचन हिन्दू समाज के विघटन की योजना है और यदि पृथ्क निर्वाचन की व्यवस्था को समाप्त न किया गया तो 20 सितम्बर, 1932 से वे इसके खिलाफ आमरण अनशन करेंगे| ब्रिटिश सरकार का कहना था कि इस संदर्भ में वह कुछ नहीं कर सकती, सम्बद्ध पक्ष की सहमति से ही ऐसा हो सकता है| परिणाम स्वरूप 20 सितम्बर की दोपहर से गाँधी ने आमरण अनशन आरम्भ किया, सम्पूर्ण भारत में सनसनी फैल गयी| समस्या से निपटने के लिए हिन्दू नेताओं ने बॉम्बे में एक सभा बुलाई जिसमें समझौते के लिए अम्बेडकर को भी बुलाया गया|

गाँधी का कहना था कि उपवास का उनका लक्ष्य हिन्दुओं की आत्मा को जगाकर कार्य के लिए प्रेरणा देना है| सम्पूर्ण भारत में हलचल मच गयी| इलाहाबाद, बनारस, कलकत्ता तथा देशी रियासतों ने कई मंदिर दलितों के लिए खोल दिये गये| सवर्णों ने भ्रातृत्व प्रदर्शन करते हुए दलितों के साथ भोजन किया|

5.10 पूना पैक्ट और पृथक निर्वाचन की मांग का समाधान

अम्बेडकर अपनी मांग पर दृढ़ थे| सप्रू व मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद के प्रयासों से वार्ता आरम्भ हुई| काफी प्रयासों के बाद अम्बेडकर इस बात पर राजी हुए कि पृथक निर्वाचन समाप्त करने पर संयुक्त निर्वाचन में दलितों के लिए स्थानों को दुगुना किया जाए| आरक्षण की अवधि तथा इस संदर्भ में जनमत संग्रह पर भी गाँधी व अम्बेडकर में विचार भेद था| लेकिन काफी बहस के बाद 24 सितम्बर, 1932 को पूना में पृथक निर्वाचन समाप्त कर, नयी शर्तों के साथ जो समझौता हुआ, उसे पूना पेक्ट कहा जाता है| समझौते के अनुसार आरक्षित स्थानों की संख्या 78 के स्थान पर 148 कर दी गई| प्राथमिक तथा द्वितीय निर्वाचन की स्थापना की गई| प्राथमिक निर्वाचन में दलितों के 4 उम्मीदवारों के

पैनल का चयन करना था और द्वितीय चरण में संयुक्त मतदान द्वारा इन चारों दलित उम्मीदवारों में से एक का चयन किया जाना था| आरक्षण द्वारा दलितों का प्रतिनिधित्व तब तक कायम रहेगा जब तक कि दोनों पक्ष आपसी समझौते द्वारा इसे समाप्त ना कर दें|

उपवास का कम से कम एक अच्छा परिणाम हुआ - दलित के लिए पृथक निर्वाचन की समाप्ति और इस प्रकार राष्ट्रीय जीवन में एक दरार और पड़ने से बच गया| लेकिन इसमें भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि जहां इस समझौते में निर्धारित संवैधानिक सुधार अगले लगभग साढ़े चार वर्षों तक लागू नहीं हुए वहीं सामाजिक स्तर पर अस्पृश्यता निवारण का क्रान्तिकारी कार्य तुरन्त तथा तेजी से आरम्भ हो गया|

उपवास समाप्ति के बाद गाँधी ने कहा था कि यदि उचित समय के अन्दर अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी सुधार नेक नियती से नहीं किये गये तो मुझे पुनः उपवास शुरू करना होगा| गाँधी जानते थे सदियों पुरानी कुप्रथा को एक ही रात में समाप्त नहीं किया जा सकता तथा कार्य और प्रचार द्वारा उपवास के परिणामें को आगे बढ़ाना चाहिए| अतः इस कार्य हेतु 'हरिजन सेवक संघ' नामक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना जी.डी. बिड़ला की अध्यक्षता में की गई| जेल से ही प्रेस वक्तव्यों तथा पत्रों का सैलाब लगाकर अस्पृश्यता जैसी बुराई के प्रति जनता को शिक्षित करने का प्रयास किया गया| इसी उद्देश्य से ''हरिजन'' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन किया तथा दलितों को 'हरिजन' (ईश्वर के बालक) नाम दिया| इस आन्दोलन के लिए जब गाँधी ने अपने आपको समर्पित किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि समस्या उनके अनुमान से कही अधिक जटिल है| 3 मई, 1933 से 21 दिन का उपवास (अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर) करके उन्होंने अपनी आत्म व्यथा को समाप्त किया| सितम्बर 1933 को वे वर्धा चले गये तथा साबरमती आश्रम को 'हरिजन सेवक संघ' को भेंट कर दिया| 7 नवम्बर, 1932 को वे दलितों-उत्थान के लिए देश व्यापी दौरे पर निकल पड़े|

9 महीनों में उन्होंने कुल 12,500 मील यात्रा की| इस यात्रा के दौरान, वह देश के कई अंदरूनी तथा अगम्य भागों में भी गये| सम्पूर्ण हिन्दुओं से उन्होंने सारे पूर्वाग्रह छोड़ने का अनुरोध किया तथा दस महीने में उन्होंने दलित-उत्थान के लिए दस लाख रूपये एकत्र किये| यदि वे चाहते तो यह राशि किसी एक महाराजा या करोड़पति से भी ले सकते थे लेकिन दलितों के लिए किए जाने वाले कार्य में अधिक से अधिक लोगों के सक्रिय सहयोग के लिए करोड़ों स्त्री-पुरूष व बच्चों का सहयोग व समर्थन प्राप्त करने के लिए पाई-पैसा अन्नी, चव्वनी एकत्रित की गई|

ऐसा नहीं कि दलितों के उत्थानार्थ किया गया दौरा सफलता का चरमोत्कर्ष था| वह युगों से चले आ रहे अत्याचार पर आघात कर रहे थे अतः नीहित स्वार्थों का बौखला कर प्रत्याघात करना स्वाभाविक ही था| रूढ़िवादियों ने गाँधी को धर्मद्रोही कर कह कर उनकी सभाओं में काले झण्डे दिखाये, विघ्न डाला और शोरशराबा करके उन्हें बोलने से रोका| 52 जून, 1933 को पूना म्युनिसिपल्टी हॉल में मानपत्र ग्रहण करने जाते समय उनके दल पर बम फैंका गया जिसमें वे बाल-बाल बच गये| इस पर गाँधी ने कहा था "मैं शहीद नहीं होना चाहता लेकिन अपना कत्तव्य पालन करते हुए यदि मरना भी पड़े तो इसे अपना सौभाग्य समझूँगा|"

5.11 सारांश

यह मानना पड़ेगा कि गाँधी ने अस्पृश्यता जैसी युगों पुरानी कुप्रथा की जड़े हिला दी| 'हरिजन सेवक संघ' गाँधी के अनुसार, कांग्रेस का अंग न होकर 1932 के उपवास का परिणाम था| सक्रिय रूप से काम करने के लिए संघ की शाखायें प्रान्तों में स्थापित की गई जिन्हें 'हरिजन बोर्ड' कहा गया| गाँधी ने यह आदर्श बताया कि दलितों पर सदियों से सवर्णों ने जो अत्याचार किये हैं उनके प्रायश्चित के रूप में सवर्णों को ही दलितजनोद्वार का काम करना चाहिए|

सम्पूर्ण विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि गाँधी ने समाज के 1/5 भाग को समानता तथा न्याय दिलाने के लिए विचारात्मक तथा कार्यात्मक दोनों साधनों से पूरा प्रयास किया| उन्होंने इसे एक धार्मिक समस्या माना अतः अस्पृश्यता निवारण को हिन्दुओं का शुद्धि आन्दोलन का नाम दिया था| यहीं कारण था कि गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए मंदिर प्रवेश को प्राथमिकता दी क्योंकि मंदिर व्यक्ति के जीवन में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं| उन्होंने अपने भाषणों द्वारा समस्या के निदान हेतु जनमत जागृत करने का प्रयास किया तथा कार्य के रूप में साम्प्रदायिक पंचाट में दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था के विरूद्ध आमरण अनशन करके उन्हें हिन्दुत्व से एक पृथक समुदाय के रूप में अलग होने से बचा लिया|

5.12 अभ्यास प्रश्न

1 अस्पृश्यता क्या है? इसके उद्भव के कारण बताइये|

2 गाँधी ने अस्पृश्यता के उद्भव के क्या कारण बताये है? उदाहरण सहित समझाइये|

3 अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए गाँधी के प्रयासों को स्पष्ट कीजिये|

4 दलित वर्गों के उत्थान के लिए गाँधी द्वारा किए गए योगदान का मूल्यांकन कीजिए|

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गाँधी, एम.के., सत्याग्रह इन साऊथ अफ्रीका, अनु. वी.जी. देसाई, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 1972
2. नंदा, बी. आर., महात्मा गाँधी: ए बायोग्राफी, ओ.यू.पी., नई दिल्ली, 2009
3. डोक, जे. जे., गाँधी: ए पेट्रियोट इन साऊथ अफ्रीका, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2005
4. द्वारका प्रसाद गुप्ता, महात्मा गाँधी और अस्पृश्यता, ज्ञान भारती, दिल्ली, 2008

5. श्यौराज सिंह, अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008

6. बारेन रे (सम्पादित), गाँधीस केम्पैन अगेंस्ट अनटचाबिलिटि 1933-1934, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1996

7. थोमस वेट्टिकल, गाँधीयन सर्वोदय: रीयालाइसिंग ए रियलिस्टिक युटोपिया, नेशनल गाँधी म्यूसियम एवं ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2002

इकाई – 6

भ्रष्टाचार की समस्या और गाँधी

इकाई रूपरेखा

6.0 उद्देष्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गाँधी के चिन्तन के मूल तत्व

6.3 गाँधी की राज्य संबंधी अवधारणा तथा विकेन्द्रीकरण

6.3.1 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण

6.3.2 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

6.4 गाँधी के विचार तथा भ्रष्टाचार

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

यह इकाई भ्रष्टाचार की समस्या और महात्मा गाँधी के द्वारा प्रस्तुत इस प्रकार की समस्याओं के निदान सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालती है| इसका उद्देश्य है:-

- गाँधी के विचारों के मूल तत्वों को समझना
- गाँधी के राज्य, सरकार और लोकतंत्र के प्रति दृष्टिकोण को समझना|

- यह बताना कि राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण की धारणा किस तरह आदर्श राज्य की व्यवस्था का आधार बन सकेगी|

- उपर्युक्त संदर्भ में हम जान पायेंगे कि किस प्रकार केन्द्रीकरण, राज्य व औद्योगिकरण भ्रष्टाचार व अनैतिकता के जनक हैं|

6.1 प्रस्तावना

राजनीतिक चितंन के इतिहास में यदि सत्रहवीं व अठारहवीं शताब्दियाँ जहाँ विवेकवाद का युग रहीं हैं तो उन्नीसवीं शताब्दी वाद-विवाद का युग थी| बीसवीं शताब्दी को चिन्तन का युग कहने की अपेक्षा व्यवहार का युग कहना ठीक होगा क्योंकि अधिकांश विचारक दार्शनिक तत्व मीमांसक होने के साथ राजनेता भी रहे, फिर चाहे वो इंग्लैंड में लास्की व रसैल हों, रूस में लेनिन तथा स्टालिन या फिर जर्मनी व इटली में हिटलर या मुसोलनी| भारत के राजनीतिक व सामाजिक चितंन में उसी तरह महात्मा गाँधी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है| गाँधी को विश्व में सहिष्णुता, स्वतन्त्रता तथा शांति के पुजारी के रूप में जाना जाता है| उन्होंने इन सब को न केवल सैद्धांतिक रूप में माना बल्कि व्यवहारिक जीवन में भी उतारा| उन्होंने व्यक्ति में स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता को उत्पन्न करने के निरंतर प्रयास किये| वे शोषण को भी एक प्रकार की हिंसा के रूप में देखते थे और इसी कारण राजनीतिक शक्ति के साथ साथ सामाजिक सम्मान व आर्थिक मौकों की बराबर सहभागिता पर जोर दिया करते थे| वो एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे और उन्होने राजनीति की समस्याओं को आध्यात्मिक दृश्टिकोण से व्यक्त किया|

उनका चिन्तन रहस्यमय व स्वप्नलोकी नहीं है| भले ही उनके विचारों में सत्य, अहिंसा, धर्म व नैतिकता सदृश्य अवधारणाओं की प्रमुखता रही पर उन्होने धर्म को साम्प्रदायिक मत के रूप में नहीं माना| हिन्दू धर्म पर उनका अटूट विश्वास था पर उसे उन्होने हठधर्मिता के रूप में नहीं ग्रहण किया| उन्होने सत्य, अहिंसा व धर्म को जिस रूप में प्रतिपादित किया उसी रूप में स्वयं उस पर आचरण किया| साध्य व साधन के विशय पर गाँधीजी आदर्शवादियों तथा निरंकुशवादियों से सहमत नहीं थे| उनकी दृष्टि में मानव जीवन का लक्ष्य व्यक्ति को आत्मानुभूति की प्राप्ति कराना है| इसलिए उन्होने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य जैसे पाँच नैतिक सिद्धान्तों को राजनीतिक साधनों के रूप में अपनाने को कहा| राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई साध्य नहीं परन्तु लोगो के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की क्षमता प्राप्त करने का साधन मात्र है|

मनुस्मृति में उल्लेख है कि 'शासन का अधिकार' सत्ता में बैठे लोगों को भ्रष्ट होने का अधिकार नही देता| विश्व बैंक की 1997 की एक रिपोर्ट में भ्रष्टाचार को परिभाषा देेने की कोशिश करते हुए कहा गया है कि 'जन शक्ति या राजनीतिक शक्ति का निजी लाभ के लिये प्रयोग' भ्रष्टाचार है| यह परिभाषा अपने आप में बहुत सरल है| भ्रष्टाचार बहुआयामी है जो किसी भी व्यवस्था को पूरी तरह नश्ट कर देता है| गाँधी इस बात से वाकिफ थे कि जहाँ राजसत्ता का

केन्द्रीकरण होगा वहाँ भ्रष्टाचार पनपेगा और जहाँ राजनेताओं और पूंजीपतियों का गठजोड़ होगा वहाँ शक्ति का दुरूपयोग किसी भी रूप में हो सकता है| इस कारण ही वो भ्रष्टाचार के खिलाफ एक वातावरण बनाना चाहते थे जिससे भ्रष्टाचार नहीं पनप पाये| ग्राम स्वराज्य में उन्होने कहा 'जहाँ शासन या बहुसख्यंक जनता नीतिभ्रष्ट हो और स्वार्थी हो, वहाँ उसकी सरकार अराजकता की स्थिति पैदा कर सकती है, दूसरा कुछ नहीं'|

गाँधीजी के विचारों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके विचार किसी दार्शनिक चिंतन की उपज न होकर दिन प्रतिदिन के उनके अनुभाविक परीक्षण की देन थे| उन्होने स्वयं कहा, "मैं दूसरों को अपना जीवन-दर्शन समझाने में सर्वथा अयोग्य हूँ, मैं तो केवल उस दर्शन को, जिसमें मैं विष्वास रखता हूँ, अभ्यास में लाने की योग्यता रखता हूँ|" उन्होने जो कहा उसे पहले अपने आचरण में उतारा| व्यक्ति की आत्मानुभूति को उन्होने जीवन का लक्ष्य माना और उसे ईष्वरीय साक्षात्कार या निरपेक्ष सत्य के ज्ञान के साथ जोड़ा| यह तभी संभव है जब मनुष्य न केवल अपनी आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए काम करता है बल्कि अन्य मनुष्यों के लिए भी| मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य 'सबका अधिकतम हित' होता है|

6.2 गाँधी के चिंतन के मूल तत्व

गाँधी मूलतः धार्मिक प्रवृत्ति के थे, यद्यापि उनमें धर्मान्धता व रूढिवादिता का लेशमात्र भी अंष नही था| धर्म पर उनके विचार लौकिक तथा मानवतावादी थे| उनका कथन था 'मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं है, इसलिए उन्होनें राजनीति में नीति अर्थात् धर्म को प्राथमिकता दी, राज अर्थात् सत्ता को नहीं| दूसरे शब्दों में उन्होने नैतिकता और राजनीतिक षुचिता की जरूरत पर जोर देते हुए राजनीति का आध्यात्मिकरण किया है| उनका लक्ष्य था कि सत्य और अहिंसा को न केवल व्यक्तिगत व्यवहार का वरन् सार्वजनिक व्यवहार का आधार बनाना चाहिए| इन दोनों सिद्धांतों को उन्होनें अविभाज्य रूप में जोड़ा| अहिंसा का पालन करना सत्य के उपासक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है| सत्य का पालन करने वाले का अन्र्तमन शुद्ध होना चाहिए और यह अस्तेय, अपरिग्रह ब्रहमचर्य को अपना कर किया जा सकता हैं| सत्य का पालन मन, कर्म तथा वचन तीनों से होना चाहिए| सत्य, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र दोनों से जुड़ा है, हिंसा उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है| अहिंसा का क्रियान्वयन इस सिद्धांत पर आधारित है कि जो किसी प्राणी के बारे से उत्तम है वहीं सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध में भी समान रूप से उत्तम है| अहिंसा, सत्य की भांति ही सर्वशक्तिमान व शाश्वत है| इसका अर्थ केवल निशेधात्मक नही| बल्कि विशेष परिस्थितियों में असाध्य रोग में असहयनीय कष्ट से मुक्ति के लिए प्राण लेना भी अहिंसा है| ईश्र्या, क्रोध या हानि |ने की इच्छा से रहित हो कार्य करना अहिंसा है| स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधी ने इन दोनो साधनों, सत्य और अहिंसा, को सर्वाधिक महत्व दिया|

अस्तेय, सत्य तथा अहिंसा से सम्बद्ध नैतिक सिद्धांत है| इसका अर्थ केवल यह नहीं है कि किसी अन्य की वस्तु को परोक्ष रूप में न लिया जाये| अस्तेय का अभिप्राय है जिस वस्तु की हमें आवश्यकता नहीं उसे प्राप्त न करना, अपनी आवष्यकता में अनुचित वृद्धि न करना तथा भविष्य में संचय की इच्छा न बनाना| गाँधी ने अस्तेय को अपरिग्रह से

जोड़ा है| वे व्यक्तिवाद तथा उदारवाद के उन विचारों से सहमत नहीं थे जिन्होने पूंजीवाद को जन्म दिया, परन्तु साथ ही वे समाजवाद के विशुद्ध भौतिकतावादी विचारों के भी विरूद्ध थे| उन्होनें सत्य और अहिंसा के आदर्शो की भांति अपरिग्रह को भी निरपेक्ष तथा सापेक्ष दोनों रूपों में माना है| मनुष्य अपनी मौलिक आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र व आवास के निमिन्त किसी वस्तु का संग्रह न करें, यहाँ तक कि अपने भौतिक शरीर को भी अपना न मानकर दूसरों को समर्पित कर दे| चूंकि ऐसा करना पूर्णतः व्यवहारिक नहीं अतः व्यक्ति अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का संचय इस दृष्टि से करे की अन्य को उसकी जरूरत नहीं है और ऐसा करने में वह हिंसा व शोषण के साधनों से मुक्त रहें|

ब्रह्मचर्य, गाँधी के चितंन का एक अन्य अहम् तत्व है| बोलचाल की भाषा में यह काम-वासना पर नियंत्रण है और शाब्दिक मायने में उसका अभिप्राय-'ब्रह्म का ज्ञान करने के अनुशासन' से है| वास्तव में यह मन की वो शक्ति है जहाँ आकर्षक वस्तुओं के साथ रहते हुए भी उनकी वासना (इच्छा) से दूर रहा जाये| यह दमन नहीं, शमन या अत्मसंमय है, और यही मनुष्य को जीवन के अन्य आदर्शों की दिशा में बढ़ने में सहयोग करता है| ब्रह्मचर्य ही वो सद्गुण है जो मन को सभी क्षेत्रों नियमित करता है; मन कर्म तथा वचन की पवित्रता, सत्य और अहिंसा की उपलब्धि के लिए आवश्यक है|

गाँधी जी ने एक सक्रिय राजनेता के रूप मं सत्याग्रह को एक अहम् साधन के रूप में अपनाया| वे मैकियाविली के 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' के सिद्धांत को अहिंसा के विरूद्ध मानते थे| साध्य व साधन के मध्य संबंध के विषय पर भी उनका मत था कि साधन की पवित्रता ही साध्य की पवित्रता निर्धारित करती है| सत्याग्रह से उनका अर्थ आत्मा की श्रेष्ठता से था, एक सत्याग्रही किसी को चोट नहीं |ता वरन् हृदय परिवर्तन कर उसे जीतता है| सत्याग्रही में सत्य, अहिंसा, अनुशासन व आत्मत्याग के गुण होने चाहिए| सत्याग्रह व्यक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार का होता हैं| इसके विभिन्न रूप हैं जिन्हें गाँधी ने प्रयुक्त किया, जैसे निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, हड़ताल, बहिष्कार, धरना, अनुषासन, सविनय अवज्ञा व हिजरत|

6.3 गाँधी और उनकी राज्य सम्बन्धी अवधारणा

जैसा शुरूआत में भी कहा गया है गाँधी का दर्शन विशुद्ध राजनीतिक नहीं था वरन् व्यापक था| अतः पाश्चात्य चिन्तकों के समान यहाँ राज्य की परिभाषिक व्याख्या, उत्पत्ति व विकास की विवेचना नहीं है| विशेषतया भारत के सन्दर्भ में उन्होनें एक अहिंसक राज्य की स्थापना का चित्र खींचा| सामान्यतया राज्य के प्रति गाँधी का दृष्टिकोण अराजकतावादी है| टालस्टाय, बाकुनिन, माक्र्स की परम्परा में गाँधी निवर्तमान राज्य-व्यवस्था के कटु आलोचक थे परन्तु उन्होने राज्य को वर्ग संगठन न कहकर 'हिंसा का केन्द्रीय व संगठित रूप' कहा है| वे राज्य के औचित्य को ऐतिहासिक, नैतिक व आर्थिक किसी भी आधार पर स्वीकार नहीं करते| राज्य आत्माविहीन यन्त्र के समान है जो मनुष्य की व्यैक्तिकता को समाप्त करके उसके विकास के मार्ग को अवरूद्ध करता है| राज्य, मानव स्वतन्त्रता के मार्ग में रूकावट है जो स्वयं साध्य बन कर व्यक्ति को साधन बना देता है| गाँधी ने कहा है 'राजनीतिक सत्ता मेरा साध्य नहीं बल्कि मनुश्य की उन्नति के क्षेत्र में साधन मात्र है, एक आदर्श समाज में न कोई राज्य होगा और न ही राजनीतिक

सत्ता| इस दृष्टि से गाँधी अराजकतावादियों तथा माक्र्स की राज्य विहीन, व्यवस्था के बहुत करीब आ जाते हैं| परन्तु हिंसात्मक साधनों के द्वारा राज्य को नष्ट करने के वे कट्टर विरोधी थे| राज्य अहिंसा की राजनीतिक अभिव्यक्ति का साधन है|

6.3.1 राजनीतिक विकेन्द्रीकरण

गाँधी ने जिस आदर्श समाज व्यवस्था की कल्पना की है वह दार्षनिक अराजकतावाद पर आधारित है और इसे उन्होने 'राम राज्य' का नाम दिया है| यह राज्यविहीन लोकतान्त्रिक व्यवस्था है| गाँधी राज्य में कानूनी प्रभुसत्ता की धारणा के घोर विरोधी है क्योंकि यह राज्य को एक केन्द्रीकष्त संगठन के रूप में बदल देता है| इससे सत्ता कुछ विशेषज्ञों के हाथों में सिमट जाती है और वे हिंसात्मक साधनों द्वारा सत्ता का प्रयोग करते हैं| इसके विपरीत गाँधी का आदर्श ऐसी विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था है जिसमें जीवन स्व-चालित व स्व-नियमित होगा न कि बाहर के कानून तथा राजसत्ता के द्वारा| ऐसे में न तो कोई शासक होगा और न कोई शासित; यह प्रबुद्ध अराजकतावाद की स्थिति होगी|

गाँधी के आदर्श राज्य में छोटे-छोटे जन-समूह ग्रामों में निवास करते हैं और उनके संगठन तथा शांतिपूर्ण अस्तित्व की मुख्य शर्त ऐच्छिक सहयोग की होगी| लोकतन्त्र की सफलता के मूल में राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण है| गाँधी जी इस विकेन्द्रीकरण के द्वारा नागरिकों या जनप्रतिनिधियों को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में ज्यादा हिस्सेदारी देना चाहते थे क्योंकि जनसहभागिता पर आधारित निर्णय समाज के विविध हितों में ज्यादा गहराई से जुड़ सकेंगे| इन छोटे-छोटे स्वशासित जन-समूहों के श्रमिक संगठनों द्वारा क्षेत्रीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तरों पर संघात्मक व्यवस्थाऐं निर्मित होंगी, जिनका आधार भी ऐच्छिक सहयोग होगा| यहाँ विधि का आधार सहयोग और सहचर होगा न की कानूनी सत्ता, क्योंकि लोकतंत्र की भावना को कानून सदृश्य बाह्य साधन के द्वारा लागू नहीं किया जा सकता, यह तो जनता की अन्तरात्मा में आ सकती है| राज्य स्वयं सम्प्रभु नहीं होगा, बल्कि यह शक्ति जनता में निहित होगी| राज्य व्यक्ति के जीवन के विविध क्षेत्रों में उसे सम्पूर्णता प्रदान करने में साधन बनेगा| सामाजिक जीवन के संचालन के लिए राज्य जिन कानूनों की व्यवस्था करेगा यदि वे मनुष्य की नैतिक भावनाओं के विरूद्ध हुए तो उनका विरोध करने का न केवल उसे अधिकार होगा वरन् ऐसा करना उसका परम कर्त्तव्य होगा| परंतु ऐसा विरोध पूरी तरह अहिंसक होगा| वे अराजकतावाद की इस धारणा से सहमत थे कि अराजकता व्यवस्था का आभाव नहीं अपितु शक्ति का आभाव है| ये एक ऐसा व्यक्तिगत समाज है जिसका संगठन व संचालन उसके सदस्यों के ऐच्छिक सहयोग से होता है| वे थोरों के उस कथन को मानते थे कि 'वही सरकार सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करती है'|

विश्व शांति की आकांक्षा रखने वाले संसार के राजनीतिज्ञ ऊपर से नीचे की ओर जाने वाली योजना बनाने की बात सोचते हैं, जबकि गाँधी जी की सारी योजना नीचे से ऊपर की दिशा में काम करने की थी| इसलिए उन्होने कहा स्वतंत्रता नीचे से प्रांरभ होगी चाहिए| ग्राम-स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथों में रहेगी| 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डें' इस प्रकार 'ग्राम-स्वराज्य 'स्व-राज्य' की भावना का प्रतीक होगा| स्वराज्य से गाँधी का अभिप्राय था लोकसम्मति के

अनुसार होने वाला शासन| यदि स्वराज्य हो जाने पर भी लोग अपनी हर छोटी बड़ी बात के नियमन के लिए सरकार का मुहँ ताकना शुरू कर दें, तो ऐसा स्वराज्य और सरकार किसी काम के नहीं होगी| ये व्यवस्था, बिना उच्चतर सत्ता के नियंत्रण के, व्यक्ति को निर्णयन प्रक्रिया में शमिल होने देगी| इस से गाँधी का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को उच्च बनाना था न की जीवनयापन के स्तर को| गाँधी ने जिस आदर्श राम-राज्य की कल्पना की वह विशुद्ध लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिसकी आधारभूत धारणायें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समानता तथा सामाजिक न्याय हैं| उन्होने केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को लोकतंत्र का निषेध माना| लोकतंत्रीय सरकार वो है जहाँ जनता, चेतन या अचेतन रूप में, शासन के क्रिया-कलापों में अपनी सहमति प्रदान करती है| गाँधी ने पाष्चात्य संसदीय लोकतंत्र का विरोध किया क्यों कि वह दलगत आधार पर संगठित व संचालित होता है| दलीय संगठन चूंकि केन्द्रीकृत होते है उनमें केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बनी रहती है, लोगों को अपने अनुसार प्रत्याशियों के चयन का मौका नही मिल पाता और पूंजीपतियों द्वारा पोषित दलों द्वारा प्रस्तावित उम्मीदवारों में से ही चुनाव करना पडता है| संक्षेप में, मतदान के अलावा शासन संचालन में जनता की कोई भागीदारी नहीं होती| ऐसे में बहुसंख्यक दल अल्पसंख्यकों के ऊपर स्वेच्छाचारी शासन करता है| अतः युरोपीय देशों में जनता के पास राजनीतिक शक्ति तो रहती है परन्तु गाँधी के शब्दों में 'स्वराज्य' नही रहता| गाँधी की रामराज्य की कल्पना में 'सर्वाधिक शक्तिमान व्यक्ति को जो अवसर प्राप्त होते हैं, वे निर्बलतम व्यक्ति को भी सुलभ हो'|

गाँधी जी का राम राज्य (ग्राम-स्वराज्य) ग्रामीण गणतन्त्रों की संघात्मक व्यवस्था है, जिसमें सबसे निचले स्तर पर हर ग्रामीण जन-समूह एक 'स्वायत्तशासी इकाई का निर्माण करेगा| इस व्यवस्था में ग्राम का प्रत्येक व्यक्ति जन-समूह के सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में भाग लेगा| शासन की मूलभूत इकाई एक आत्मनिर्भर तथा स्वायत्तशासी ग्राम होगा| ग्राम की सभी व्यवस्थायें ग्राम-पंचायत के द्वारा होगी| अपने वर्ष भर के कार्यकाल में पंचायत स्वयं धारासभा, न्यायसभा तथा व्यवस्थापिका का कार्य संयुक्त रूप में करेगी| पंचायत सदस्य प्रत्यक्ष रूप में जनता द्वारा चुने जायेंगे| निम्नस्तरीय संस्थायें उच्च स्तरीय संस्था के लिए प्रतिनिधियों को चुनेगी, इस तरह प्रत्येक स्तर की पंचायत अपने से निम्नतर स्तर की संस्था द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था होगी| इससे राजनीतिक दलबन्दी के आधार पर चुनाव करने में जो अनावश्यक खर्च होता है और झूठे राजनीतिक प्रचार होते हैं उन सबसे बचा जा सकेगा| गाँधी के इन विचारों का विकास बाद में विनोबा भावे व जयप्रकाश नारायण ने किया|

इस प्रकार अनगिनत गाँव पंचायत होंगी, पंचायतों के समूह (circle) होगें, जो बड़े तो होते जायेंगे, परन्तु एक दूसरे के आधीन नहीं| यह व्यवस्था एक समुद्री वष्त होगा जिसका केन्द्र सदैव व्यक्ति होगा, जो गाँव के लिए बलिदान देने के लिए तत्पर है| हर ग्राम, ग्रामों के लिए मिटने को तत्पर है और इस तरह सम्पूर्ण वष्त व्यक्तियों से बनी इकाई बन जाता है जो समुद्री वष्त की प्रतिभा में भागीदार है और उसके वे अभिन्न अंग है| सबसे अन्तिम वष्त की परिधि अन्दरूनी वृत्तों को दबाने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग नही कर सकेगी, बल्कि सबको शक्ति प्रदान करेगी और सबसे शक्ति

ग्रहण भी करेगी| गाँधी की यह व्यवस्था आत्मनिर्भर ग्रामीण गणराज्यों के एक सकेंन्द्रित मंडल की है जिसमें संकेन्द्र व्यक्ति होगा| इस से स्वशासन का अधिकार साकार होगा|

6.3.2 आर्थिक विकेन्द्रीकरण

राजनीतिक सत्ता की भांति आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है| गाँधी ने अपने प्रसिद्ध 'आखिरी वसीयतनामें' में कहा था कि भारत ने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली, लेकिन उसे "अभी शहरों और कस्बों से भिन्न अपने सात लाख गांवों के लिए सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है|" उनकी कल्पना का ग्राम-स्वराज्य मानव-केन्द्रित है जबकि पश्चिमी अर्थव्यवस्था धन केन्द्रित है| गाँधी ने धन, सम्पदा तथा उत्पादन का कुछ हाथो में सिमटना व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिए हानिकारक माना| औद्योगिकरण व बड़े पैमाने पर उद्योगों का विस्तार सत्ता के केन्द्रीकरण तथा भ्रष्टाचार को जन्म देगा| इसीलिए विशेष तौर पर उन्होने उत्पादन के साधनो को विकेन्द्रित करने पर जोर दिया| देश में बेरोजगारी की समस्या का भी यही एक मात्र समाधान उन्हे नजर आया| उनका यह विचार इसलिए भी युक्तियुक्त था क्योंकि बडे पैमाने पर औद्योगिकरण के लिए विदेशी बाजार तथा ढेरी सारी पूंजी दोनो की आवश्यकता थी और यह उस समय भारत जैसे राष्ट्र के लिए सम्भव नही था| गाँधी की यह अवधारणा भारतीय व्यवस्था के गहन अध्ययन पर आधारित थी जहाँ उन्होने पाया कि काफी सारी सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक समस्याओं का जन्म औद्योगिकरण के कारण हुआ है| बर्टरेंड रसैल ने गाँधी जी के विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए कहा है 'उन देशों में जहाँ औद्योगिकरण की प्रक्रिया की अभी शुरूआत है वहाँ इस प्रक्रिया से उत्पन्न विसंगतियों से बचा जा सकता है| इन देशों की परम्परागत जीवनशैली को यदि एक दम से बदला जायेगा तो यह गलत होगा और उसके परिणाम भी घातक होगे| बडे पैमाने पर उद्योगों का विस्तार निश्चित तौर पर राजनीतिक शक्ति को कुछ हाथों में केन्द्रित करेगा क्योंकि यह औद्योगिकरण की प्रकृति में निहित है और शक्ति का यह केन्द्रीकरण लोकतंत्र की भावना के ही विरूद्ध है|

इन राजनीतिक परिणामों के अलावा भी गाँधीजी का मानना था कि बड़े उद्योगों का मानव व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि ये मनुष्य को उसकी जड़ों से उखाड़ देते हैं| पूरी औद्योगिक व्यवस्था में व्यक्ति मात्र एक पुर्जा बनकर रह जाता है| इससे कार्य करने की क्षमता की विविधता समाप्त हो जाती है, व्यक्ति प्रयास करना छोड़ देता है, उसकी अभिव्यक्ति कुंठित हो जाती है और स्वाभाविक विकास रूक जाता है| गाँधी जी का मानना है कि औद्योगिकरण से व्यक्ति की पहचान केवल सामूहिक रह जाती है क्योंकि वह अपने व्यक्तित्व को समूह के साथ जोड़ देता है| इससे सामूहिक हित में उसे किसी भी तरह के शोषण और ज्यादती को सहने की आदत पड़ जाती है| ऐसी समस्याओं का समाधान ढूंढने का काम फोरियर, सेन्ट साइमन व कार्ल माक्र्स ने भी किया परन्तु उनके चिन्तन में व्यक्ति की स्वतंत्रता का लोप हो गया| समाज को शक्ति प्रदान करने की प्रतिस्पर्धा में उनके चिन्तन में मनुष्य का अस्तित्व गौण हो गया| निःसंदेह निजी स्वामित्व वाली पूंजीवादी व्यवस्था सारी समस्या का मूल है, गाँधी इसी के साथ

उत्पादन की तकनीक को भी समस्या का कारण मानते हैं| इसीलिए वे बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण करने के बजाय छोटे स्तर पर उत्पादन के पैरोकार थे| बड़ी संख्या में उत्पादन पूंजीवाद, शोषण और भ्रष्टाचार को जन्म देगा|

गाँधी जी स्वराज्य, स्वदेशी, सर्वोदय तथा विकेन्द्रित लोकतंत्र के समर्थक थे क्योंकि उसमें सत्ता पदक्रम का कोई स्थान नहीं है| उनके ये विचार आज की परिस्थितियों में नितांत उपयोगी हैं क्योंकि इससे ही एक समतावादी समाज की स्थापना में मदद मिलेगी| यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में मदद करेगा| अस्तेय और अपरिग्रह को अपने आर्थिक विचारों में प्राथमिकता देते हुये गाँधी जी ने जोर दिया कि हर मानव की मूलभूत आवश्यकओं की पूर्ति हो और उत्पादन प्रणाली इस लक्ष्य से प्रेरित हो| सादा जीवन, न्यूनतम आवश्यकतायें, आत्मनिर्भरता, घरेलू कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, मशीनीकरण व औद्योगिकरण को कम से कम स्वीकारना व सहकारिता को प्रोत्साहन देना गाँधी जी के चिन्तन के मूल मंत्र थे| उनकी ग्राम स्वराज्य की व्यवस्था में भी पंचायत का मूल कत्तव्य ग्रामवासियों की मूलभूत भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना है| खाद्यान्न, कपास, मनोरंजन व खेल के मैदान, पानी व षिक्षा की व्यवस्था जैसी जिम्मेदारी पंचायत की है|

6.4 गाँधी के विचार तथा भ्रष्टाचार

भारत की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों में गाँधी जी लघु और कुटीर उद्योगों को ही सही मानते थे, वे बड़े कारखाने लगाये जाने के विरूद्ध थे क्योंकि जहां ऐसा होगा वहां पूंजी का केन्द्रीकरण होगा व शोषण/भ्रष्टाचार बढेगा| गाँधी जी इन सभी के विरोधी थे| उनके अनुसार वर्तमान पाश्चात्य पूंजीवाद व औद्योगिक सभ्यता में न तो नैतिकता है, न धर्म, केवल शुद्ध भौतिकतावाद है हिन्द स्वराज में उन्होंने इस सब के लिए मशीनों को दोषी माना है| उन्होंने मशीनों की तुलना सांपों के बिल से की है जो एक ही जगह सैकडों होते हैं और पूरी व्यवस्था का सर्वनाश कर देते हैं| डॉक्टर व वकील के पेशे को भी अनावश्यक व हानिकारक माना| वकालत में व्यक्ति का एक मात्र उद्देश्य धन कमाना होता है, ये विवाद बढ़ाते हैं और जोंक की तरह गरीब का खून चूसते हैं| इससे सबसे ज्यादा नुकसान देश को हुआ, और अंग्रेजों ने अपने शासन को वैध साबित करने के लिये न्यायालय स्थापित किये| उपर्युक्त सभी से कुटीर उद्योग, आत्मनिर्भरता व नैतिकता को नुकसान हुआ है और स्वार्थजनित भ्रष्टाचार को बढावा मिला है|

देखा जाये तो आज जीवन में साधनों की पवित्रता नश्ट हो गई है| बढ़ती हुई जनसंख्या और रोजगार के घटते अवसरों से व्यक्ति की न्यूनतम जरूरत भी पूरी नहीं हो पा रही है ऐसे में मनुष्य उलटे-सीधे किसी भी तरह के कार्य करने लगा है आत्मनिर्भरता के अभाव में भ्रष्टाचार को बढावा मिला है| इसके लिए राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण काफी हद तक जिम्मेदार रहा है| ऐसा नहीं है कि देश और समाज में नैतिक पतन आज हुआ है, गाँधी जी ने स्वतंत्रता से पहले ही मई 1939 में भ्रष्टाचार पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करी थी “I would go to the length of giving the whole congress a decent burial, rather than put up with the corruption that is rampant.” अर्थात भ्रष्टाचार में सहयोग या लिप्त होने की अपेक्षा मैं पूरी की पूरी कांग्रेस पार्टी को दफन करना बेहतर

समझूंगा| उनकी यह टिप्पणी उस समय की है जब भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत कई प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी थी और उनके मंत्रियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामले उजागर हुए थे|

आज हमारा लोकतंत्र गाँधी जी की पंचायती लोकतंत्र की धारणा से कोसों दूर है| गाँधी ने जिस पश्चिमी लोकतंत्र का विरोध किया, हमारी राज व्यवस्था उसी को परिलक्षित करती है| सही अर्थों में इसमें न लोकतंत्र है और न हीं विकेन्द्रीकरण करती है| यहाँ निर्दलीय लोकतंत्र तो दूर, संसदीय लोकतंत्र का भी विकष्त रूप सामने आ रहा है| यहाँ भ्रष्टाचार कैंसर जैसी व्याधि के रूप में फैला चुका है| स्वतंत्र भारत में गाँधी के अनुयायियों ने ही भ्रष्टाचार पर टिप्पणी को दरकिनार कर दिया है, यद्यपि सभी भ्रष्टाचार तथा भाई-भतीजावाद की कमियों से पूरी तरह वाकिफ है| मनुस्मृति - VII /143 में कहा गया है कि जिस शासक के षासन में शासन भ्रष्ट लोगों द्वारा संचालित होता है वह शासक मृत समान है| मनु आज भले ही हमें प्रासंगिक न लगें परन्तु यह निश्चित है कि शासन का अधिकार सत्ता में बैठे लोगों को भ्रष्ट होने का अधिकार नही देता है|

हमारे देश में अब राजनीतिक दलों की संख्या में निरंतर विस्तार हो रहा है ऐसे में निर्दलीय लोकतंत्र की किसी भी तरह संभावना नजर नहीं आती जिसका सपना गाँधीजी ने देखा तथा विनोबा भावे व जयप्रकाश नारायण ने विस्तार किया| दलीय नेतष्त्व अवसरवादिता का शिकार बना है, ऐसे में ये दल निरंतर बनते बिगडते रहते हैं| राजनीति को नैतिकता व आध्यात्मिकता का आधार गाँधी जी ने दिया था और राजनीति को जनसेवा कहा था, वो आज कोरा ढोंग नजर आता है| गाँधी की पंचायती राज व्यवस्था जिला-स्तर तक जरूर अस्तित्व रखती है परन्तु वो भी उनकी धारणा के अनुरूप नही ढल सकी| केन्द्रीय नियंत्रण उसकी भावना को ही मटियामेट कर देने पर तुला है| हर व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने में लगा है जबकि राजनीतिक समाज का लक्ष्य व्यक्ति की आत्मानुभूति है और उसी के द्वारा वह समाज की सेवा कर सकता हैं| गाँधी जी का मत था कि कोई भी अधिकार अलघ्ंय और निरपेक्ष नही है, उस पीछे सबसे बड़ी मर्यादा सत्य व अहिंसा के कर्त्तव्य पालन की है| अधिकारों का क्षेत्र व्यक्तिगत न होकर सार्वजनिक है| स्वंतत्रता से उनका अर्थ है कि व्यक्ति, समाज के हित के लिये, अपने हितों का उत्सर्ग कर दे| स्वराज्य ही सबसे बड़ी स्वतंत्रता है| स्वराज्य का आधार निःस्वार्थ कर्म और ऐच्छिक सेवा की भावना है, जहाँ बाह्य प्रतिबंधों का अभाव है और व्यक्ति जो प्रतिबन्ध स्वयं अपने ऊपर लगाता है वे अत्तरात्मा से उत्पन्न होते हैं| आजीविकार्थ श्रम के सिद्धान्त में गाँधी ने स्पष्ट किया की शारीरिक श्रम करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होना चाहिए, चाहे तो किसान हो, मजदूर बुद्धिजीवी या फिर उद्योगपति| कोई भी व्यक्ति जो शारीरिक श्रम नहीं करता उसे भोजन का भी अधिकार नहीं होना चाहिए| शारीरिक श्रम से व्यक्ति के बौद्धिक कार्य की गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी| इस से अन्य लाभ यह होगें कि

i) श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होगी

ii) बौद्धिक व शारीरिक श्रम के बीच भेद समाप्त होगा|

iii) स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होगा|

iv) उत्पादन बढ़ेगा|

v) ऊँचा-नीचा, निम्न-श्रेष्ठ का भेद मिटेगा और समानता को बल मिलेगा|

गाँधी का यह सिद्धांत सादा जीवन, न्यूनतम आवष्यकताओं तथा आत्मनिर्भरता से जुड़ा है| गाँधी का मानना था कि किसी भी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक कोई भी चीज नहीं रखनी चाहिए| वह व्यक्ति जो बिना शारीरिक श्रम के धन सम्पत्ति का स्वामी है उसे ऐसे धन के स्वामित्व का अधिकार नहीं होना चाहिए| यहाँ तक की यदि व्यक्ति को विरासत में पुश्तैनी जायदाद व सम्पत्ति मिलती है तो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं के अतिरिक्त शेष सम्पत्ति का वह केवल सरंक्षक हो सकता है, स्वामी नहीं| ऐसी पूंजी को उसे सार्वजनिक हित में ही प्रयोग में लाना चाहिए|

6.5 सारांश

गाँधी का सम्पूर्ण चिंतन मानव केन्द्रित है, समाज व राज्य का स्वरूप भी व्यक्ति को केन्द्र में रखकर निर्धारित किया गया है| दार्शनिक अराजकतावादी होने के कारण गाँधी व्यक्ति पर किसी बाह्य सत्ता का नियंत्रण नहीं स्वीकार करना चाहते| उनके लोकतंत्र की इकाई छोटी है क्योंकि इकाई जितनी छोटी होगी पारदर्शिता उतनी ही अधिक होगी और भ्रष्टाचार की संभावना भी नहीं रहेगी| ग्राम स्वराज्य में ग्राम ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अपनी महत्त्व की चीजों के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं होगा| गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे| सत्याग्रह के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होंगे| कोई भी दूसरों के शोषण के लिए चलाये जाने वाले व्यापार का हिस्सा नहीं हो इसी कारण उन्होंने औद्योगिकरण व बड़े कारखानों का विरोध किया| गाँधी का विष्वास था कि औद्यौगिकरण से आर्थिक केन्द्रीकरण की प्रवष्ति को बढ़ावा मिलेगा, पूंजीवाद के विस्तार से असमानता, प्रतिस्पर्धा तथा भ्रष्टाचार की उत्पत्ति होगी| अतः इस पूरी व्यवस्था में पारदर्षिता लाने, समानता स्थापित करने के उद्देश्य से गाँधी ने ग्राम स्वराज्य में आत्मनिर्भरता पर जोर दिया|

गाँधी ने कहा है कि यदि समान अवसर दियें जायें, तो हर व्यक्ति समान रूप से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है| सच्चे नीतिधर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता, बल्कि सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है| उन्होंने कहा कि मेरा आदर्श तो समान वितरण का है पर चूंकि वह पूरा नहीं होने वाला इस लिए मैं न्यायपूर्ण वितरण के लिए कार्य कर रहा हूँ| जब तक मुट्ठी भर धनवानों तथा करोडों भूखे रहने वालों के बीच जमीन आसमान का अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज व्यवस्था कायम नहीं होगी| आज की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बेकारी, गरीबी व कंगाली से ग्रसित है जिसने प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा वर्ग-विग्रहों को जन्म दिया है, ये समाज को धुन की तरह कुरेद कर खा जाते हैं| कारखाने के ऊबाने वाले, एक से काम से आदमी की आत्मा मर जाती है, काम की इच्छा समाप्त हो जाती है और ऐसे में वो काम से भागने का मिथ्या प्रयास

करता है| ऐसे में करोड़पति तो वैभव की निरूद्देश्य जिंदगी जीते हैं वहीं कड़ा शारीरिक परिश्रम करने वाले श्रमिक को भरपेट खाना भी नहीं मिलता| ऐसे में आर्थिक समानता का विकल्प ट्रस्टीशिप है अर्थात् आवष्यकता पूरी होने पर अर्जित या पुश्तैनी सम्पत्ति का वह व्यक्ति, प्रजा की ओर से ट्रस्टी बनें और सर्वहित में सद्व्यय करें|

ग्राम स्वराज्य के द्वारा गाँधी ने ऐसी व्यवस्था का जिक्र किया है जहाँ सारे विकारों का स्वतः समाधान संभव है| उन्होंने कहा कि जहाँ केन्द्रीकरण है, चाहे वह राज्य या सरकार के रूप में है अथवा औद्योगिकरण के रूप में, उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसा व बल अनिवार्य हो जाता है| परंतु जहाँ समता के कारण चोरी व लूटने को कुछ नहीं, ऐसे सादे घरों के लिए पुलिस की भी जरूरत नहीं| रक्षकों कि जरूरत बड़े-बड़े धनवानों के महल और बडे कारखानों के लिये होती है| पूंजीपति और राजनेताओं का गठबंधन ऐसा है जो वर्तमान व्यवस्था मे अपनी यथास्थिति बनाये रखने के लिए बल तथा अनैतिक साधनों का प्रयोग करते है| ऐसे में राज्य अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार को बढावा देने का माध्यम बन जाता है| गाँवों को केन्द्र में रखकर जिस आत्मनिर्भर भारत का निर्माण होगा वहाँ बाहरी सत्ता अनावश्यक होगी और विदेशी आक्रमण का खतरा भी कम होगा| कारखानों की सभ्यता पर अहिंसा का निर्माण संभव नहीं, वह केवल स्वावलंबी व स्वाश्रयी ग्रामों में हीं संभव है| केवल ग्रामीण अर्थरचना ही शोषण का त्याग करती है| ऐसे में स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है|

ऐसी विकेन्द्रित लोकतांत्रिक व्यवस्था में केन्द्र व्यक्ति होगा परंतु उसका पदक्रम नहीं होगा| इसके केन्द्र में व्यक्ति व परिधि पर उसका उच्चतर स्वरूप होगा, ऐसे में केन्द्र परिधि से और परिधि केन्द्र से अपनी सत्ता प्राप्त करेगी| इस तरह दोनों के बीच परस्पर आत्मनिर्भरता होगी| षिक्षा का भी उद्देश्य आत्मा की उच्चतम क्षमताओं का सर्वांगींण विकास है| अक्षर ज्ञान षिक्षा का हिस्सा जरूर है परंतु उसका लक्ष्य नहीं|

इस तरह गाँधी ने अपनी ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा के द्वारा न केवल राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया है अपितु एक ऐसी राज्विहीन लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के बारे में बताया है जो न केवल आत्मनिर्भर है बल्कि हर तरह से एक समतावादी समाज का आधार है| उसमें न तो कोई छोटा-बड़ा या गरीब-अमीर है और न ही षोशक या षोशित है| आजीविकार्थ श्रम सिद्धांत के द्वारा उन्होंने सारी असमानता को समाप्त करने का प्रयत्न किया| गाँधी ने माना सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का षासन बल होगा| अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए गाँधी ने सदैव साधनों की पवित्रता को अहम् माना| साधन पवित्र होने पर हमें लक्ष्य की चिंता नहीं होती क्योंकि सही रास्ते पर चलकर कभी यात्री गलत मंजिल पर नहीं पहुँचता| बार-बार उन्होनें इसी कारण साधनों की शुचिता को बनाये रखने पर जोर दिया| भारत की आजादी की लड़ाई में भी क्रांतिकारियों से उनके मतभेद का मुख्य कारण क्रांतिकारियों के हिंसात्मक साधन थे| गाँधी का सम्पूर्ण चिंतन सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह जैसे उच्च आदर्शों से अनुप्राणित हैं और उन्होंने कभी भी इस विशय को लेकर समझौता नहीं किया| उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति में साधनों की पवित्रता हमेशा उनके विचारों का अहम् हिस्सा और आधार रही|

6.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी जी के चिंतन के मूल तत्वों की व्याख्या करते हुए उन्हे स्पष्ट करें|
2. गाँधीजी के विचारों में विकेन्द्रीकरण के महत्व को समझाये| उनके विचारों को किस हद तक अराजकतावाद की श्रेणी में रखा जा सकता?
3. गाँधी जी प्रत्यक्ष रूप में भ्रष्टाचार जैसे विषय की चर्चा नहीं करते पंरतु उनकी ग्राम स्वराज्य की अवधारणा भ्रष्टाचार विरोधी है| स्पष्ट करे|

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी एम. के., मेरे सपनों का भारत, (संग्राहक आर.के. प्रभु), नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
2. गाँधी एम. के., सर्वोदय, (सम्पादक: भारतन् कुमारप्पा), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद
3. गाँधी एम. के., ग्राम – स्वराज्य, (संग्राहक: हरिप्रसाद व्यास), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद
4. गाँधी एम. के., हिन्द-स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहदाबाद
5. काका कालेलकर, सत्याग्रह-विचार और युद्ध नीति, गाँधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा

इकाई – 7

ग्रामीन अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और गाँधी

इकाई रूपरेखा

7.0 उद्देष्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 गाँधी और ग्राम स्वराज

7.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

7.3.1 अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था

7.3.2 अर्थव्यवस्था का आधार व लक्ष्य-मनुष्य

7.3.3 समानतार पर आधारित अर्थव्यवस्था

7.3.4 कायिक श्रम और सभी व्यवसायों की समानता

7.3.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

7.3.6 यंत्रीकरण व उद्योगीकरण का विरोध

7.3.7 खादी और ग्रामोद्योग पर बल

7.3.8 ग्राम स्वावलम्बन व सहयोग

7.3.9 स्वच्छता और स्वास्थ्य व्यवस्था

7.3.10 शिक्षा व्यवस्था

7.4 गाँधी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बंधी विचारों की प्रांसगिकता

7.5 सारांश

7.6 अभ्यास प्रश्न

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

यह इकाई ग्रामीन अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में गाँधी के विचारों पर प्रकाश डालती है| इस इकाई के अध्ययन पश्चात् आप समझ सकेंगे:-

- गाँधी के ग्राम स्वराज्य सम्बन्धी विचारों से अवगत हो सकेंगे,
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार - विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, खादी व ग्रामोद्योग सम्बंधी अवधारणाओं से परिचित हो पाऐगें,
- ग्राम स्वावलंबन , सहयोग, स्वच्छता, स्वास्थ्य, इत्यादि विषयों पर गाँधीजी के विचारों को जान पाऐंगे,
- ग्रामणी अर्थव्यस्था सम्बन्धी गाँधीवादी प्रतिमान को संक्षेप में समझ पाऐंगे|

7.1 प्रस्तावना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः|

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग् भवेत्||

अर्थात् सबका उदय, सबका उत्कर्ष, सबका विकास, सबका सुख है| गाँधी ने इसी भावना को अपने आर्थिक दर्शन का आधार बनाया| उनके अनुसार सर्वोदय का लक्ष्य है आध्यात्मिक उन्नति एवं जीवन शुद्धि| इसमें समस्त विश्व और प्रत्येक प्राणी का ध्यान रखा जाता है और ‘‘वसुधैव कुटुम्बकम्‘‘ की धारणा रहती है| इस व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य अपनी सामथ्र्यानुसार श्रम करेगा और उत्पादित वस्तुओं का आवश्यकतानुसार उपभोग कर शेष समाज के लिए छोड देगा| गाँधीजी के अनुसार इस व्यवस्था में ग्रामीण जीवन को अधिक महŸव मिलेगा, क्योंकि अन्य कच्चा माल या दुसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य की जीवन-दायिनी समस्त वस्तुओं का उत्पादन गाँव में ही होता है|

सारी अर्थव्यवस्था की बुनियाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित है| गाँधीजी के अनुसार इस ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो, ग्राम स्वावलम्बन, विकेन्द्रीकरण व लघु-कुटीर उद्योग धन्धों पर आधारित है, के विभिन्न पहलुओं का संवर्द्धन व संरक्षण अत्यावश्यक है| उनका कहना था कि भावी विश्व-व्यवस्था की उज्जवल आशा गाँवों पर अर्थत्

सहकारी समाजों पर निर्भर करती है, जहाँ किसी तरह की मजबूरी नहीं है, किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं है, बल्कि सारे काम ऐच्छिक सहयोग के आधार पर चलते हैं|

7.2 गाँधी और ग्राम स्वराज्य

गाँधीजी के अनुसार आदर्श समाज राज्य-रहित लोकतन्त्र है, प्रबुद्ध और जाग्रत अराजकता की अवस्था है, जिसमें सामाजिक जीवन इतनी पूर्णता के स्तर पर पहुँच जाता है कि वह स्वयंशासित और स्वयं नियन्त्रित हो जाता है| उनकें अनुसार आदर्श अवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि किसी राज्य का अस्तित्व नहीं होता| गाँधीजी एक व्यवहारिक आदर्शवादी थे| वे जानते थे कि राज्य का पूर्ण उन्मूलन संभव नहीं है अतः उन्होंने ग्राम स्वराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की| ग्राम स्वराज्य में राज्य का अंत नहीं होता परन्तु राज्य का विकेन्द्रीकरण होता है| गाँधी के अनुसार, "सच्चा लोकतन्त्र केन्द्र में बैठें हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता| उसे प्रत्येक गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा|" ग्राम स्वराजय में प्रत्येक व्यक्ति सीधे रूप में शासन या सरकार का निर्माता होगा| उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम से नियंन्त्रित होंगे| गाँधीजी के अनुसार, "गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायेगी| इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गाँव के व्यस्क स्त्री-पुरूषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें| चूंकि इस ग्राम स्वराज्य में सजा अथवा दंड की कोई प्रथा नहीं रहेगी इसलिए यह पंचायत अपने कार्य अपने एक वर्ष के कार्यकाल में स्वयं ही धारा सभा, न्यायसभा, और व्यवस्थापिका सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी|" उनके अनुसार ग्राम स्वराज्य एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रत्येक गाँव स्वाश्रयी और आत्म निर्भर होंगें और गाँव के नागरिक सत्ता नियंत्रित ना होकर स्व-नियंत्रित होंगें, वे प्रत्येक कार्य के लिए सरकार की और ताकने वाले न होकर हर कार्य अपनी सूझ-बूझ से करने वाले उत्तरदायित्व की उच्च विकसित भावना से युक्त होंगे| ग्राम स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथ में होगी| इस प्रकार गाँधीजी का आदर्श ग्राम-स्वराज्य एक वास्तविक एवं शक्तिशाली लोकतन्त्र है जिसमें राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक स्वतन्त्रता भी विद्यमान रहती है| ऐसा सच्चा विकेन्द्रित लोकतन्त्र सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उदात्त सन्देश देने वाला होगा|

7.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

गाँधी का कहना था कि भारत गाँवों में निवास करता है| शहरों का कितना भी विकास क्यों ना हो जाये, भारत से गाँव की व्यवस्था समाप्त नहीं की जा सकती है| देश की अधिकांश आबादी गाँव में ही बसती है| अतः जब तक गाँव की व्यवस्था स्वतन्त्र नहीं रहेगी तब तक राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है| जब तक ग्रामीण अर्थव्यवस्था शहरों पर निर्भर रहेगी तब तक देश का वास्तविक विकास संभव नहीं है| उनके द्वारा प्रतिपादित ग्राम-स्वराज्य की संकल्पना का आशय ऐसी सरल और सादी ग्राम अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण-रहित और विकेन्द्रित है वह

स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्धक करती है और जीवन क अन्य-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बन के सिद्धान्त को लागू करती है| विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में खादी और ग्रामोद्योग का प्रमुख स्थान है| गाँधीजी का कहना था कि हर व्यक्ति को पूरा काम देने वाली अहिंसाक एवं विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिए हमें उद्योगवाद का, केन्द्रित उद्योग-धन्धों का और अनावश्यक यंत्रों का त्याग करना होगा|

गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करने हेतु अग्रांकित बिन्दू महत्वपूर्ण हैः-

7.3.1 अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था

गाँधीजी अर्थव्यवस्था के अहिंसात्मक आधार पर अत्यधिक बल देते हैं| उनके अनुसार दूसरे का दुःख अपना दुःख मानना, दूसरे का सूख अपना खूख मानना ही अहिंसा के सिद्धान्त की सामाजिक अभिव्यक्ति है| आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा सह-उत्पादन, सम-वितरण, सह-उपभोग, सह-जीवन के रूप में दिखाई देती है| यदि हम दूसरों को भूखा रखकर भोजन करते हैं या वस्त्र धारण करते हैं तो यह हिंसा है| इस प्रकार दूसरों को शोषण या आर्थिक कष्ट न |ए और सभी प्रकार के आर्थिक कष्ट झेलकर भूखों रहकर किसी को भी अपनी आँखों से भूखा न देखें - यहीं अहिंसाक अर्थव्यवस्था व समाज की धारणा है| गाँधीजी के अनुसार, ‘‘भारत वर्ष में एक समय ऐसा था जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संगठन अहिंसक धन्धों के आधार पर, मनुष्य के अधिकारों के आधार पर नहीं परन्तु मनुष्य के कर्त्तव्यों के आधार पर होता था| जो इन धन्धों में लगते थे वे अपनी रोजी बेशक कमाते थे, परन्तु उनके श्रम से समाज की भलाई होती थी|‘‘ अहिंसक धन्धों की धारणा से गाँधीजी का तात्पर्य वह धंधा है जो बुनियादी तौर पर हिंसा से मुक्त हो और जिसमें दूसरों का शोषण या ईष्र्या नहीं हो| उदाहरणार्थ एक बढई-गाँव के किसान की जरूरते पूरी करता था| उसे कोई नकद मजदूरी नहीं मिलती थीः परन्तु गाँव वाले उसे अपनी पैदावार में से हिस्सा देते थे|

7.3.2 अर्थव्यवस्था का आधार व लक्ष्य-मनुष्य

गाँधीजी के अनुसार आर्थिक क्षमता के लिए मानव तŸव अत्यावश्यक है| उनके अनुसार अर्थव्यवस्था का आधार मनुष्य है सम्पति या सोना-चांदी नहीं है| वह देश सबसे ज्यादा समृद्ध है जो अधिक से अधिक संख्या में सज्जन और सुखी मानवों का भरण-पोषण करता है| अर्थात् गाँधीजी रत्नरूपी सम्पति को अर्थव्यवस्था का आधार बनाने की बजाय सशक्त, तेजस्वी व नीतिमान मनुष्यों रूपी रत्नों को अर्थव्यवस्था का आधार बनाना चाहते थे| उनका कहना था कि, ‘‘मनुष्य एक इंजन है और उसको गति देने वाली शक्ति आत्मा है| यह विचित्र इंजन अधिक से अधिक कार्य वेतन के लिए या दबाव से नहीं करेगा| यह तभी संभव होगा जब गति देने वाली शक्ति अर्थात् प्राणी की इच्छा शक्ति या

आत्मा में उसी के सही इंधन प्रेम द्वारा अधिक से अधिक बल का संचार किया जायेगा|" गाँधीजी आर्थिक सम्बन्धों में स्वार्थ पूर्ज सिद्धान्तों की बजाय प्रेम, कृपा, दयालुता, स्नेह, सहानुभूति इत्यादि का समावेश करना चाहते थे|

गाँधीजी अर्थव्यवस्था मे मनुष्यों को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते थे| उनके अनुसार ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रचना इस प्रकार होनी चाहिऐ जिसमें हर व्यक्ति को इतना काम अवश्य मिल जाए ताकि वह अपनी आधारभूत आवश्यकतायें यानि रोटी, कपडा और मकान की व्यवस्था का साधन जुटा सके| गाँधीजी का कहना था कि, "जब तक एक भी सशक्त आदमी ऐसा हो जिसे काम न मिलता हो या भोजन न मिलता हो, तब तक हमें आराम करने या भरपेट भोजन करने में शर्म आनी चाहिए|"

7.3.3 समानतार पर आधारित अर्थव्यवस्था

गाँधीजी के अनुसार आर्थिक समानता का तात्पर्य है- सबके पास इतनी सम्पत्ति हो जिससे लोग अपनी कुदरती आवश्यकताऐं पूरी कर सकें| अहिंसा के द्वारा आर्थिक समानता लाने का यही उपाय है कि लोग अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन न करे| हिन्दुस्तानी गरीब प्रजा के साथ अपनी तुलना करके अपनी आवश्यकताऐं कम करें| वे अपने धन कमाने की शक्ति को नियंत्रण में रखें तथा सट्टे और लोभ की प्रवृत्ति का त्याग करें| उनके अनुसार आर्थिक समानता की जड़ में द्रस्टीपन निहित है अर्थात् धानिक को अपने पडौसी से एक कौडी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं| इस साध्य हेतु वे जीवन को हर प्रकार से संयमी बनाऐं और अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के बाद जो बचे उसके लिए पुजा की ओर से ट्रस्टी बनें|

धानिक वर्ग को निश्चित रूप से स्वीकार कर लेना होगा कि किसानों के पास भी वैसी ही आत्मा है जैसी उसके पास है| अपनी दौलत के कारण वह गरीबों से श्रेष्ठ नहीं है| आदर्श जमीदार को किसान के लिए पाठशालाऐं खोलना, कुएं और तालाबों को ठीक करना और उनके मकान की व्यवस्था करनी चाहिए| पूँजीपति वर्ग भारत के सात लाख गाँवों में शांति और सुख को कायम करने में सहभागी बन सकता है|

गाँधीजी का कहना था कि, "सच्चे नीतिधर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता| जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और बलवानों को निर्बलों का शोषण करके धन संग्रह करने की सुविधा देता है उसे शास्त्रों का ज्ञान नहीं दिया जा सकता| सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है, वह समान भाव से सबकी भलाई का -जिनमें कमजोर भी शामिल हैं- प्रयत्न करता है और सभ्यजनोचित सुन्दर जीवन के लिए अनिवार्य है|" इसलिए गाँधीजी समानता हेतु न्यायपूर्ण वितरण की धारणा पर बल देते हैं|

7.3.4 कायिक श्रम और सभी व्यवसायों की समानता

गाँधीजी ने सभी व्यवसायों की अनिवार्य समानता पर बल दिया| उनका मत था कि कायिक श्रम की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेने से, विभिन्न व्यवसायों के मध्य भेदभावों का आधार ही समाप्त हो जोऐगा| उन्होंने शरीर-श्रम के विचार को दिव्य माना और कहा, "ईश्वर ने मनुष्य का निमार्ण श्रम द्वारा अपना भोजन प्राप्त करने के लिए किया और कहा कि जो श्रम किए बिना खाते हैं वे चोर हैं|" गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत 'कायिक श्रम' की धारणा यह अपेक्षा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाने के लिए अनिवार्य रूप से भौतिक श्रम करे| अर्थात् व्यक्ति जो किसी भी व्यवसाय में रत हो, वह शारीरिक श्रम तो आवश्य ही करेगा| अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीविका को शरीर-श्रम से अर्जित कर श्रम के प्रति मन में प्रतिष्ठा अन्तर्व्याप्त कर बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग परोपकार के लिए करे| इस प्रकार 'शरीर-श्रम' का विचार समानता और सामाजिक सद्भाव दोनों को एक साथ सुनिश्चित करेगा|

7.3.5 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था

गाँधीजी ने अन्याय, शोषण व दमन की प्रतीक केन्द्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विचार प्रस्तुत किया था| उनके अनुसार, "हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना और साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण बौद्धिक और नैतिक यानि आध्यात्मिक उन्नति सिद्ध करना है| यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सद्य सकता है| केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज रचना के साथ मेल नहीं बैटता|"

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में खादी और ग्रामोद्योग का प्रमुख स्थान है| आर्थिक संगठन इस प्रकार का हो कि ज्यादातर वस्तुओं का उत्पादन गाँव में ही हो| प्रत्येक गाँव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं ही कर ले| जो वस्तुएँ गाँव में उत्पादित होती है, उनका पक्का माल भी गाँव में बने| कपास गाँव में पैदा होती है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि कपड़ा भी गाँव में ही बने| गाँधीजी तो मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पहनने का कपडा स्वयं तैयार कर ले| खाली समय में हम अपनी आवश्यकता का सूत चरखने के माध्यम से स्वयं कात लें| यदि इतना भी संभव न हो तो प्रत्येक गाँव सामूहिक रूप से वस्त्र के मामले में स्वावलंबी हो| ग्रामोद्योग की अन्य वस्तुऐं भी गाँव में तैयार होनी चाहिए| गाँधीजी के अनुसार कारखानों की केन्द्रीयकृत सभ्यता पर आज अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते, लेकिन वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी ग्रामों के आधार पर निर्माण की जा सकती है| उनहोंने कहा, "मेरी कल्पना की ग्रामीण अर्थ-रचना शोषण का सर्वथा त्याग करती है, और शोषण हिंसा का सार है|"

7.3.6 यंत्रीकरण व उद्योगीकरण का विरोध

गाँधीजी ने अंधाधुंध यंत्रीकरण का विरोध किया था| उनका कहना था कि, "मेरा विरोध यंत्रों के संबंध में फैले हुए दीवानेपन से है यंत्रों से नहीं| परिश्रम का बचाव करने वाले यंत्रों के सम्बन्ध में लोगों का जो दीवानापन है, उसी से मेरा विरोध है| आज परिश्रम की बचत इस हद तक की जाती है कि हजारों लोगों को आखिर में भूखों मरना पड़ता है और

उन्हें तन दैकने तक को कपड़ा नहीं मिलता| मुझे भी समय और परिश्रम का बचाव अवश्य करना है लेकिन वह मुठ्ठी भर आदमियों के लिए नहीं, बल्कि समस्त मानव जाति के लिए|"

गाँधीजी का कहना था कि यंत्रों को काम में लेना तभी अच्छा होता है जब किसी कार्य को निर्धारित समय में करने के लिए श्रम शक्ति कम हो जैसा विदेशों में होता है| किन्तु यह हिन्दुस्तान के लिए लागू नहीं होता क्योंकि यहाँ जितने आदमी चाहिए उससे कहीं अधिक बेकार पडे हुए हैं अतः यंत्रीकरण से बेकारी बढेगी, घटेगी नहीं| उनका मत था कि, "यदि ग्रामवासियों को कुछ काम देना है तो वह यंत्रों के द्वारा सम्भव नहीं है| उनके उद्धार का सच्चा मार्ग तो यही है कि जिन उद्योग-धन्धों को वह अब तक किसी कदर करते चलें आ रहे हैं, उन्हीं को भली-भांति जीवित किया जाए|"

गाँधीजी ने भारत की समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात् यह बताया कि बडे पैमाने का उद्योगीकरण भी हिन्दुस्तान के लिए लाभप्रद नहीं होगा| उनके अनुसार उद्योगीकरण में धन का संचय व व्यवस्था का संचालन कुछ व्यक्तियों के पास होता है जिससे आर्थिक असमानता को प्रोत्साहन मिलता है जो भारत जैसे गरीब देश के लिए घातक है| उनका मत था कि उद्योगीकरण में उत्पादन केन्द्रित होता है| सारा माल गाँव से शहर की ओर जाता है| फलस्वरूप शहरों की वृद्धि और गाँवों का ह्रास होता है| इससे ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था असन्तुलित हो जाती है| उद्योगीकरण से बेरोजगारी में वृद्धि होती है, अनावश्यक एवं विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ना है और बडे पैमाने के कारखानों में उत्पादन होने से मालिक और मजदूर की भावना विकसित होने से वर्ग-सहयोग की जगह वर्ग द्वेष की भावना का विस्तार होता है| अतएव गाँधीजी यंत्रीकरण को एक निश्चित सीमा तक ही स्वीकार करते थे और कुछ विशेष वस्तुओं को उत्पादन ही भारी उद्योगों के माध्यम से होना चाहिए जैसे - बिजली, रेल, डाक, यातायात, जहाज इत्यादि|

7.3.7 खादी और ग्रामोद्योग पर बल

खादी और ग्रामोद्योग का विचार गाँधीजी के आर्थिक ढाँचे की आधार संरचना है| खादी और ग्रामोद्योग परस्पर अन्तर्सम्बन्धित अवधारणा है| गाँधीजी के अनुसार खादी भारतीय मानव -समाज की एकता, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का प्रतीक है| खादी-मनोवृत्ति का अर्थ है- जीवन के आवश्यक पदार्थों के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण अर्थात् प्रत्येक गाँव अपनी जरूरत की तमाम चीजें स्वयं पैदा कर ले और शहरों की आवश्यकताओं के लिए उत्पत्ति भी कर लें| इस तरह खादी ग्राम-स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती है| ग्रामोद्योग सम्बन्धी विचार गाँधीवादी अर्थव्यवस्था का व्यवहारिक स्वरूप है| गाँधीजी ने गाँवों को ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की है जो पूर्णतया लघु उद्योग व कुटीर उद्योगों पर आधारित होगी| अर्थात् जो सघन खेती, छोटे पैमाने पर व्यक्तियों द्वारा खाद्य पदार्थ, सब्जियाँ, फल-फुल उत्पादन और पशुपालन पर आधारित होगी| उनके अनुसार ग्रामोद्योग की वस्तुओं जैसे-हाथ की बनी चीनी,हाथकुटा चावल, हाथ कुटा अनाज, तेलधाणी को तेल आदि बहुत स्वास्थ्य वर्द्धक होते हैं और इनके उपभोग से मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घायु होता है| गाँधीजी के अनुसार कुटीर उद्योग-धन्धों

में एक खास तादाद में लोगों को मजदूरी दी जा सकती है इसलिए ये उद्योग खादी के मुख्य काम में सहयोग दे सकते हैं| हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पद्दोरना, साबुन बनाना, कागज बनाना, चमड़ा बनाना, तेल पेरना और इस तरह के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक व महŸवपूर्ण धन्धों के बिना गाँव क आर्थिक रचना सम्पूर्ण नहीं हो सकती अर्थात् गाँव स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर नहीं बनेंगे| हर एक आदमी को, हर हिन्दुस्तानी को, इसे अपना धर्म समझना चाहिये कि वह हमेशा गाँवों की बनी चीजें ही उपभोग में लें| अगर ऐसी चीजों की मांग पैदा हो जाये तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हमारी ज्यादातर जरूरतें गाँवों से पूरी हो सकती है| जब हम गाँवों के लिए सहानुभूति से सोचने लगेंगे और गाँव की बनी हुई चीजें हमें पसन्द आने लगेंगी तो ऐसी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न होगी जो गरीबी, भुखमरी और आलस्य या बेकारी से मुक्त नए हिन्दुस्तान के साथ मेल खाती होगी|

7.3.8 ग्राम स्वावलम्बन व सहयोग

गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था की बुनियाद सत्य और अहिंसा है| हमारा प्रथम कर्त्तव्य यह है कि हमें समाज का भार नहीं बनना चाहिए अर्थात् हमें स्वावलम्बी होना चाहिए| इस प्रकार स्वावलम्बन एक प्रकार की सेवा है इसलिए गाँधीजी ने गाँवों के सन्दर्भ में स्वावलम्बन व सहयोग की भावना पर अत्यधिक बल दिया था| उनका कहना था कि, "हर एक गाँव को अपने पाँव पर खडा होना होगा| अपनी आवश्यकताऐं खुद पूरी करनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार स्वयं चला सके| यहाँ तक कि वह सारी दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सके|" गाँधी के अनुसार स्वावलम्बनी बनने का अर्थ पूर्णतया स्वयं पूर्ण बनना नहीं है| किसी भी हालत में हम सभी चीजें पैदा कर भी नहीं सकते और न हमें करना है| जो चीजें हम पैदा नहीं कर सकते उन्हें पाने के लिए उनके बदले में देने को हमें अपनी आवश्यकता से अधिक चीजें पैदा करनी ही होंगी| इसलिए गाँधीजी परस्पर सहयोग पर जोर देते हैं| उनके अनुसार पशु में और मनुष्य में यही भेद है कि मनुष्य सामाजिक प्रकृति वाला प्राणी है| अगर उसे स्वाधीन होने का विशेषाधिकार प्राप्त हुआ है तो परस्पराधीन होना उसका कर्त्तव्य भी है| अतः सभी मनुष्यों को सहयोग से रहना चाहिए और सबकी भलाई के लिए काम करना चाहिए| जहाँ तक सम्भव हो गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगें| गाँधीजी ने किसानों को सहकारी पद्धति से खेती करने पर बल दिया ताकि किसानों को अधिक आमदनी हो और खेतों के छोटे-छोटे टूकडे ना हों|

गाँधीजी के उपर्युक्त विचार वर्तमान परिदृश्य में ग्रामों के विकास के बेहतर आधार हैं| स्वावलम्बन के आधार पर जहाँ ग्रामों से शहरों की ओर जाने वाला पलायन रूकेगा, वहीं सहयोग के आधार पर विभिन्न योजनाओं द्वारा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा|

7.3.9 स्वच्छता और स्वास्थ्य व्यवस्था

गाँधीजी के जीवन में स्वच्छता का अत्यधिक महŸव था| वे गाँवों को सुहावने और मनभावन बनाना चाहते थे| उनके अनुसार श्रम व बुद्धि के मध्य अलगाव के कारण गाँवों की लज्जाजनक दुर्दशा और गन्दगी से पैदा होने वाली बीमारियाँ-भोगनी पडती है| अतः उन्होंने गाँव की सारी गंदगी को खाद के रूप में परिवर्तित करके उसके उपयोग करने की योजना प्रस्तुत की| उन्होंने मल-मूत्र एवं अन्य प्रकार की गंदगी को खाद बनाकर और उसका उपयोग खेतों में करके इसकी आर्थिक महत्ता सिद्ध की| गाँधीजी ने गाँवों के तालाब, कुओं व जलाशयों को स्वच्छ रखने की हिमायत की और कहा कि पानी की सफाई के सम्बन्ध में गाँव वालों की उपेक्षा-वृत्ति ही बीमारियों का कारण है| गाँधीजी ने सफाई स्वयं के द्वारा करने की बात की और कहा कि जब हम गन्दगी करते हैं तो स्वयं ही उसे साफ भी करना चाहिए| इस प्रकार का सेवा कार्य शिक्षाप्रद होने के साथ ही साथ अलौकिक रूप से आनन्ददायक भी है और इसमें भारतवर्ष के सन्ताप-पीडित जन समाज का अनिर्वचनीय कल्याण भी समाया हुआ है|

गाँधीजी व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यत्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करना महŸवपूर्ण मानते है| उनके अनुसार व्यक्तियों का भोजन संतुलित होने के साथ-साथ पौष्टिक तत्वो से युक्त होना चाहिए| भोजन स्वास्थ्य के लिए होगा न कि स्वाद के लिए| ये भोजन व्यक्तियों में जीवन-शाप्ति का पूर्ण विकास करेंगें जिससे रोगों का समूल नाश होने के साथ उनकी काम वासना पर भी नियंत्रण रहेगा| काम तथा आराम दोनों को अलग-अलग रखने की बजाए काम आरामदायक होंगे और आराम काम का होगा अर्थात् व्यक्ति के मन को शान्ति पहूँचाने वाले काम मिलने पर उसे आराम की जरूरत ही नही‘ होगी| प्रारम्भ से ही शिक्षा-दीक्षा काम के माध्यम से दी जायेगी जिससे उसे काम में आनन्द आयेगा, वो उसे भार स्वरूप नही समझेगा| गाँधीजी कहते हैं कि मानसिक संतुलन ठीक रहने पर व्यक्ति प्रकृति का सहारा लेकर ही अपना जीवन व्यतीत करेगा, प्रकृत, प्रदत्त पेड पौधों, जडी-बूटी इत्यादि का प्रयोग कर स्वास्थ रह सकेगा| गाँवों में पानी की निकासी व्यवस्था का उचित प्रबन्ध किया जाऐगा| इस प्रकार संतुलित एवं पौष्टिक आहार के साथ-साथ नागरिक शारीरिक स्वच्छता,मानसिक स्वच्छता तथा सामाजिक स्वच्छता का महŸव अपना लेगा तो रोगों का स्वतः नाश हो जायेगा| जिससे व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी|

7.3.10 शिक्षा व्यवस्था

गाँधीजी ने गाँव के बच्चों को गाँव का आदर्श निवासी बनाने हेतु बुनियादी शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात किया| उनके अनुसार बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास करना हैं| उनके अनुसार जिस देश में लाखों आदमी भूखें मरते हैं, वहाँ बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है| इसलिए गाँधीजी चाहते थे कि बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा आरम्भ करे उसी क्षण उसे उत्पादन योग्य बना दिया जाए| उनके अनुसार गरीब देश में हाथ की तालीम देने से दो उद्देश्य सिद्ध होंगें-प्रथमतः बच्चों की शिक्षा का खर्च निकल आयेगा और द्वितीयतः वे

ऐसा धंधा सीख लेंगें जिसका अगर वे चाहें तो उत्तर-जीवन में अपनी जीविका के लिए सहारा ले सकते हैं| इस पद्धति से हमारे बालक आत्मनिर्भर अवश्य हो जायेंगे|

7.4 गाँधी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बंधी विचारों की प्रांसगिकता

वैश्वीकरण के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था नित नई ऊँचाइयाँ छू रही है| भारत की अर्थव्यवस्था सबसे तेज वृद्धि दर वाली वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में से एक है किन्तु यदि तस्वीर का दूसरा पहलू देखने हैं तो स्पष्ट होता है कि आज भारतीय जनता अमीर और गरीब वर्ग में बंटी है जिनके मध्य अत्यन्त गहरी व चैडी खाई है| कुछ लोग ही शानो-शौकत से जीवन व्यतीत कर रहे हैं बाकी अधिकांश अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं| अभाव, दरिद्रता, अज्ञानता, गंदगी, शोषण, बीमारी आदि निरन्तर बढ़ती जा रही है| ऐसी स्थिति में इन सबसे मुक्ति का एक ही मार्ग दिखाई देता है वो है गाँधीवादी प्रतिमान|

गाँधीजी के ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचारों की प्रांसगिकता निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से की जा सकती है-वर्तमान समय में ग्रामीण जीवन व परिदृश्य अत्यन्त शोचनीय अवस्था में पहूँच चुका है| आज का किसान अपनी फसल का यथोचित मूल्य ना मिल पाने और निरन्तर बढ़ते कर्ज की वजह से आत्महत्या कर रहे हैं| यहाँ गाँधीजी के अत्यधिक उत्पादन की बजाय उत्पादन की प्रक्रिया में जनता की व्यापकतम भागीदारी तथा उत्पादन-स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सूत्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं| आज समाज में भौतिकवादी मूल्यों की प्रस्थापना के चलते बढे शहरीकरण ने ग्राम के लोगों को शहर में अमानवीय परिस्थितियों में रहने को विवश किया हैं| शहर में इन लोगों को झुग्गी-झोंपडियों में प्राथमिक आवश्यकताओं (बिजली, पानी, शौचालय) के आभाव में नारकीय जीवन जीना पडता है जिससे अपराध वृत्ति, अनैतिकता, शोषण इत्यादि को बढ़ावा मिलता है| ऐसे गाँधीजी का मूलमंत्र ‘‘गाँवों को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाओ‘‘ इस असाध्य रोगों की रामबाण औषधि है| गाँधीजी ने कहा था कि यदि खादी लघु व कुटीर उद्योगों द्वारा गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल जाता है तो इससे अनावश्यक पलायन रूक जायेगा तथा ग्राम भी आत्मनिर्भर, समुन्नत व सुन्दर हो जायेंगें| आज वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था का आधार पूँजी है जिस से भारत इसके सहउत्पदों यथा-हिंसा, आतंकवाद, दंगे, प्रोनवाद इत्यादि त्याधियों से त्रस्त है| आज मानवीय सम्बन्ध राजा और प्रजा, मालिक और मजदूर, मैनजर और सेवक और स्वार्थ आधारित हो जाने की वजह से तनाव, अवसाद, अलगाव, चिंता इत्यादि नवीन महामरियों के रूप में अवतरित हुई हैं| गाँधीजी का कहना था कि हमें अर्थव्यवस्था का आधार पूँजी को ना बनाकर मनुष्य को बनाना होगा क्योंकि पूँजी का सार मनुष्यों पर सत्ता कायम करना है, आज के परिदृश्य में सर्वधा उचित सिद्ध हुआ है| उन्होंने औध्योगिक सम्बन्धों में आर्थिक हेतु की बजाय करूणा, दया, सहिष्णुता आदि पर आधारित मानवीय सम्बन्धों पर बल दिया जिससे सब व्यक्तियों के मध्य निःस्वार्थ प्रेम व सहयोग कायम हो और अमन, चैन व शांति स्थापित हो| इस तरह गाँधीजी का सम्पूर्ण आर्थिक दर्शन वर्तमान समय की समस्याओं को दूर करने हेतु पथ-प्रदर्शक के रूप में पूर्णरूप से प्रासंगिक है|

7.5 सारांश

गाँधी ने गांवों के लिए ऐसी आर्थिक व्यवस्था की कल्पना की है जो स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर है, जिसमें प्रत्येक श्रम के महत्व को जानता है व श्रमशील है तथा जीसमें प्रत्येक हाथ को काम प्राटत है| उन्होंने स्पष्ट किया कि यह ग्राम-प्रधान विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था लद्यु और कुटीर उद्योगों पर आधारित होगी| इस उत्पादन प्रणाली में पूँजी की तुलना में श्रम की गरिमा स्थपित होगी अतः उत्पादन शोषण को जन्म नहीं देगा| स्थानीय उत्पादन स्थानीय उपभोग और विवेक सम्मत वितरण अर्थव्यवस्था के निर्देशक सूत्र होंगे| इस व्यवस्था में अधिक उत्पादन की बजाय उत्पादन की प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी पर बल दिया जाएगा| इस व्यवस्था में समाजवादी व्यवस्था के इतर-न्याय सम्मत वितरण हेतु राज्य की बाध्यकारी शाक्ति का प्रयोग नहीं होगा अपितु उपभोग का स्थानीयकरण ही यह सुनिश्चित कर देगा कि उत्पादन का समुदाय की आवश्यकता अनुसार वितरण हों|

गाँधीजी के अनुसार देश की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है अगर गाँव नष्ट हो गए तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जाएगा| अतः वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के माध्यम से ऐसे आत्मनिर्भर स्वावलम्बी, सुसंस्कृत, स्वच्छ ग्रामीण जीवन की दिशा दिखाई देती है| जिसमें अभावों, कटुता, घृणा, द्धेष व भौतिक उपलब्धियों के स्थान पर प्रेम, सहयोग, अन्त निर्भरता, आध्यात्मिकता व नैतिकता से परिपूर्ण जीवन होगा|

गाँधीजी ने कहा था कि "मेरी कल्पना के ग्राम में ग्रामीण व्यक्ति जड़ नहीं होगा-शुद्ध चैतन्य होगा| वह गन्दगी में, अंधेरे कमरे में, पशुवत जीवन यापन नही करेगा| स्त्री और पुरूष स्वतन्त्रता से रहेंगे| वहां कोई रोग नहीं रहेगा| न कोई अभाव में जिएगा और न ऐश-आराम में रहेगा| सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी| ..... इस व्यवस्था में डाक घर भी होंगेः और शायद रेलवे भी|"

7.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीजी की ग्रामस्वराज्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए|
2. गाँधीजी के आर्थिक विचारों के प्रमुख आधारों का परीक्षण कीजिए|
3. औद्योगीकरण व यंत्रों के प्रति गाँधीजी के दृष्टिकोण का मूल्यांकन कीजिए|
4. गाँधीजी के खादी व ग्रामोद्योग सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करें|
5. गाँधीजी के विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के प्रतिमान की प्रांसगिकता को समझाइये|

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप कुमार पाण्डेय, गाँधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996.
2. एम.के. गाँधी, ग्राम स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1963
3. एम.के. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, गाँधीजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1997
4. सिंह, रामजी गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1986
5. राय, रामाश्रय, सेल्फ एण्ड सोसाइटी: ए स्टडी इन गाँधीयन थोट, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1985
6. चतुर्वेदी, डी.एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 1991
7. एन.के. बोस, सलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1972
8. कुमरप्पा, जे. सी. गाँधीयन इकोनोमिक थोट, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वारानसी, 1962

इकाई – 8

मानव सुरक्षा हेतु शान्ति एवं संघर्ष निवारण

इकाई रूपरेखा

8.0 उद्देष्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मानव सुरक्षा का अर्थ

8.2.1 सुरक्षा मूल्य

8.2.2 सुरक्षा के लिए धमकियों की प्रकृति

8.3 अवधारणा का विकास

8.4 यू.एन.डी.पी. और मानव सुरक्षा

8.5 व्यक्तियों की सुरक्षा बढ़ाने के तरीके

8.5.1 मानव सुरक्षा आयोग की रिपोर्ट की रूपरेखा

8.5.2 हिसंक संघर्ष में लोगों की सुरक्षा

8.5.3 स्थान परिवर्तन कर रहे व्यक्तियों का संरक्षण व सशक्तिकरण

8.5.4 संघर्षत्तर स्थिति में व्यक्तियों की सुरक्षा और सशक्तिकरण

8.5.5 आर्थिक असुरक्षा-अवसरों की चुनने की शक्ति

8.5.6 मानव सुरक्षा व स्वास्थ्य

8.5.7 मानव सुरक्षा के लिए ज्ञान, कौशल, और मूल्य

8.6 वर्तमान में मानव सुरक्षा

8.7 सारांश

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मानव सुरक्षा की जानकारी प्राप्त करेगे| इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पाऐंगे:-

- मानव सुरक्षा के बारे में|
- मानव सुरक्षा की अवधारणा का विकास के बारे में|
- इस अवधारणा के विकास में यू.एन.डी.पी की भूमिका के बारे में|
- मानव सुरक्षा के महत्व के बारे में|
- व्यक्तियों की सुरक्षा बढ़ाने के विभिन्न मार्ग के बारे में|

8.1 प्रस्तावना

मानव सुरक्षा का अर्थ है जीवन उपयोगी स्वतंत्रताओं की रक्षा| इसका अर्थ है चिन्तनीय और घातक धमकियों से व्यक्तियों की सुरक्षा करना, उनकी इच्छाओं और शक्तियों को मजबूत करना| यह एक ऐसी व्यवस्था के निर्माण पर आधारित है| जो लोगों को जीवन जीने योग्य स्थिति गरिमा व जीवंतीता दे| मानव सुरक्षा विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रता से समबंधित है -अभावों से मुक्ति, भय से मुक्ति और अपने स्वयं के बल पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता|फिर भी, मानव सुरक्षा विषयक प्रारम्भिक चिन्ह 1970 में दिखाई दिए जब मानव अधिकार और विकास के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने निस्त्रीकरण और विकास के मध्य मजबूत कड़ी की अवधारणा दी| इस दौरान, एक शांति शोधकर्ताओं का समूह सामने आया जिसका वैकल्पिक मॉडल मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं पर आधारित था जिसने जल्दी ही संयुक्त राष्ट्र संघ का ध्यान आकर्षित किया| इसमे मानव अधिकारों को भोजन, वस्त्र, आवास,स्वास्थ और शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से जोड़ने की कोशिश की | उन प्रेरणाओं से सत्तर और अस्सी के दशक में इस उपक्षेत्र में पहल शुरू हुई जिनमें प्रमुख विली ब्रांट की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय विकास के मामलों पर एक स्वतंत्र आयोग, अडोल्फ पाल्मे

के नेतृत्व में निरस्त्रीकरण सुरक्षा मुद्दों पर बना स्वतंत्र आयोग और ब्रंटलैंड आयोग, विश्व सुरक्षा और शासन पर स्टोकहोम के प्रयास| फिर भी इस विचार को जड़ें जमाने व तेजी से आम बढ़ने में समय लगा|

8.2 मानव सुरक्षा का अर्थ

इस प्रकार मानव सुरक्षा का प्रथम प्रयोग संयुक्त राष्ट्रसंघ विकास कार्यक्रम द्वारा मानव विकास रिपोर्ट (UNDP) में सामने आया, जो 1993 से शुरू हुआ| इस रिपोर्ट ने इस अवधारणा को निर्मित और परिष्कृत किया| 1994 में, मानव विकास रिपोर्ट में मानव सुरक्षा पर स्पष्ट तौर से ध्यान दिया गया और दो पहलूओं के रूप में इसे परिभाषित कियाः भय से मुक्ति और अभावो से मुक्ति, इसमें भुखमारी, बीमारियों व दमन जैसी पुरानी धमकियों से बचाव और दैनिक जीवन में अचानक आयी बाधाओं से सुरक्षा भी शामिल है| इस रिपोर्ट ने पाँच स्तर दिए :

1. समानता पर जोर देने वाली मानव विकास की अवधारणा, स्थिरता और निचले स्तर तक की सहभागिता|
2. मानव सुरक्षा के विस्तृत ऐजेंडे में शांति स्थापित करने की जिम्मेदारी|
3. वैश्विक बाजार अवसरों और आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु न्याय और समानता को बराबरी के स्तर पर लाने के लिए उत्तर व दक्षिण के मध्य नयी साझेदारी करना |
4. एक नयी वैश्विक सरकार का ढांचा तैयार करना जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) विश्व बैंक (World Bank) और संयुक्त राष्ट्र जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में सुधार पर आधारित हो और
5. विश्व नागरिक समाज की बढ़ती भूमिका|

इसके बाद UNDP रिपोर्ट में मानव सुरक्षा, के सात अंग अथवा मूल्य दिए गए| आर्थिक सुरक्षा, भोजन की सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, पर्यावरण सुरक्षा निजी सुरक्षा, सामुदायिक सुरक्षा, और राजनीतिक सुरक्षा|कनाडा द्वारा दिये गए मध्यवर्तीशक्ति दृष्टिकोण को बाद में नार्वे द्वारा समर्थन मिला जब UNDP की परिभाषा में यह जोड़ा गया 'जीवन की समानता को स्वीकृति' जो शारीरिक सुरक्षा और कल्याण की ओर संकेत करता है, और 'मानव के मौलिक अधिकारों की गारंटी' जिसका अर्थ है लोगों के जीवन, सुरक्षा और अधिकारों को मिलने वाली धमकियों से स्वतंत्रता| जापान की सरकार ने भी मानव सुरक्षा को परिभाषित किया, "एक मानव के जीवन का संरक्षण व सुरक्षा तथा सम्मान केवल तभी सुनिश्चित किया जा सकता है| जब व्यक्ति को भय और अभावों से मुक्त जीवन जीने का विश्वास हो|"

इस प्रकार कनाड़ा की सरकार और इसके विदेश मंत्री श्री लायड एक्सवर्दी ने मानव सुरक्षा को, मानव अधिकार और मानवीय कानूनों से सुस्पष्ट रूप से जोड़ा और UNDP के विशेष ब्यौरे की आलोचाना की जिससे अविकसित देशों से जुड़ी धमकियों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया था, जो हिंसक संघर्ष के कारण मानव सुरक्षा को खत्म कर रही थी|" कनाड़ा के विचार को अन्य मध्यम शक्तियों जैसे नार्वे ने समर्थन दिया और मानव सुरक्षा में

कनाडा के साथ साझेदारी की| इस साझेदारी ने मानव सुरक्षा के नौ बिन्दुओं को चिन्हित कियाः- भूमि पर बारूदी सुरंगों पर प्रतिबन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय का गठन, मानव अधिकार, अन्तर्राष्ट्रीय मानव विधि, सशस्त्र संघर्ष में महिलाऐं व बच्चों पर आक्रमण पर प्रतिबन्ध, छोटे शस्त्रों पर प्रतिबंध, बालश्रम व बाल सैनिक पर प्रतिबन्ध और उत्तरी सहयोग पर बल |" यह बदलाव, "मानव अधिकार संरक्षण के प्रति ,राज्य प्रभुसत्ता के बदलते मूल्यों द्वारा एक नये अन्तर्राष्टीय माहौल को प्रतिविम्बित कर रहा था|"

उदारवादी धारणा के 'प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा' के विचार से मनवीय सुरक्षा की घारणा बहुत पहले ही अलग हो चुकी थी जो व्यक्तिवादी प्रतियोगिता और व्यक्तिवादी अधिकार को आवश्यक मानती थी| इस प्रकार उन्होंने अपना ध्यान विशेष तौर पर व्यवस्थित असुरक्षाओं को कम करने पर लगाया जो व्यक्ति के जीवन के समक्ष चुनौती थी| मानवीय सुरक्षा को केन्द्रबिन्दु बताते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान ने कहा, "विस्तृत अर्थ में मानव सुरक्षा में हिंसक संघर्ष से बहुत अधिकार सम्मिलित है| इसमें मानव अधिकार सुशासन शिक्षा और स्वास्थ्य की देखभाल का अधिकार शामिल है और अपने सामथ्र्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अवसरों व विकल्पों को सुनिश्चित करने का अधिकार है| इस दिशा में वहां प्रत्येक कदम गरीबी कम करने, आर्थिक उन्नति प्राप्त करने और संघर्ष समाधान की ओर बढा कदम है|"

इस प्रकार, नीतिगत अर्थ में मानव सुरक्षा, भय, संघर्ष, उपेक्षा, गरीबी, सामाजिक और सांस्कृतिक वंचन, भूख आदि से संगठित, स्थिर और बोधगम्य सुरक्षा है| विभिन्न स्तरों पर मानव सुरक्षा सम्बधी तर्क का सम्बन्ध अत्यधिक जाने पहचाने सिद्धान्तों जैसे मानव विकास व मानवाधिकार से मिलता जुलता है| UNESCO में कनाडा के स्थायी प्रतिनिधि लुइस हामेल का कहना है, "मानव सुरक्षा व मानव विकास भाई-बहिन है| मानव सुरक्षा, मानव विकास के लिए संरक्षित पर्यावरण उपलब्ध करवाती है, भय से सामाजिक शांति व स्वतंत्रता प्रदान करती है| जिससे विकास व्यवहारिक तरीके से होता है|" जैसा कि मानव सुरक्षा आयोग में जोर देकर कहा गया, "यह गैर राज्य संगठनो व सत्ता का जुड़ना भी अनिवार्य करती है और इसकी सफलता सिर्फ इस बात पर निर्भर नहीं हैं कि यह लोगों को सुरक्षा दे रही हैं वरन् इस लिए भी है कि यह उन्हें सशक्त बना रही है| "इस प्रकार मानव सुरक्षा का ढांचा मानववाद को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहा है और एक ओर विकास से जुड़ा है| वहीं दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा से जुडा है| इस प्रकार वे जो विकास की राजनीति में सम्मिलित हैं और वे जो मानव सुरक्षा को सहयोग कर रहे हैं, के मध्य तनाव बढ़ गया क्योकि संक्रमणकालीन पहलू को बाद के दृष्टिकोण में साकार रूप देने के कार्य का अभी मूल्याँकन चल रहा है|

मानव सुरक्षा, सापेक्षतया नयी अवधारणा हैं परन्तु अब इसका प्रयोग ज्यादातर गृहयुद्ध, जातीय नरसंहार और जनसंख्या को खत्म करने की धमकियों से जुड़े जटिल रूप में होता हैं| मानव सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा में भेद करना महत्वपूर्ण है| जहाँ राष्ट्रीय सुरक्षा, बाहरी आक्रमणों से राज्य की सुरक्षा पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है वहीं मानव सुरक्षा, व्यक्ति और समुदाय की, किसी प्रकार की राजनीतिक हिंसा से संरक्षण है| मानव सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा, को

परस्पर मजबूती देनी चाहिए, जैसा कि अधिकतर होता है| परन्तु सुरक्षित राज्य का अर्थ स्वतः ही सुरक्षित लोग नहीं होता| विदेशी आक्रमणों से नागरिकों की रक्षा करना व्यक्ति की सुरक्षा की आवश्यक शर्त हैं, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है| वास्तव में पिछले 100 सालों में ज्यादातर लोग विदेशी सेनाओं के मुकाबले अपनी ही सरकार द्वारा मारे गए हैं|

शीत युद्व की समाप्ति के साथ सुरक्षा की अवधारणा पर विद्वानों और प्रयोगधर्मियो ने एक समान छानबीन शुरू कर दी| परम्परागत सिद्धान्त में, सुरक्षा का मतलब था राज्य अपनी शक्ति को भौगोलिक एकता के समक्ष मौजूद चुनौतियों का सामना करने में अपनी स्वायत्ता बनाए रखने और प्रमुखरूप से दूसरे राज्यों से घरेलू राजनीतिक व्यवस्था को बचाए रखने में कैसे प्रयुक्त करता है| राष्ट्रीय सुरक्षा के इस परम्परागत ढाँचे की विभिन्न आधारों पर आलोचना की गई|

कुछ विद्वानों के लिए परम्परागत ढांचा अत्यधिक पक्षीय है क्योंकि यह इस विश्व में शक्ति पर बल दे रहा है जहाँ सामूहिक संहार के हथियार मौजूद है और चाहे-अनचाहे आपसी निर्भरता, राष्ट्रो को एक दूसरे से जोड़े हुए हैं| सुरक्षा का एक पक्षीय सिद्धान्त छोड़ देना चाहिए और सहयोगी सुरक्षा को अपनाना चाहिए| अन्य विद्वानों की नजर में, परम्परागत सोच सुरक्षा के केवल दूसरे राज्यों से मिलने वाली सैनिक धमकियों तक सीमित करने की भूल करता है| इस चिन्तन मे प्रतिद्वन्दी राज्यों द्वारा सैनिक आदि तैनात करके एक दूसरे की भौगोलिक एकता और घरेलू राजनीतिक ढाँचे को धमकी दी जा सकती है| इसमें पर्यावरणीय, आर्थिक और संस्कृतिक धमकियां भी शामिल हो सकती हैं| इसके अतिरिक्त, भौगोलिक एकता और राजनीतिक व्यवस्था को मिलने वाली चुनौतियाँ न केवल दूसरे राज्य से हैं बल्कि बहुत से राज्येत्तर कारक और यहाँ तक कि प्राकृतिक विध्वंस भी इसमें शामिल है| सुरक्षा की यह अत्यंत विस्तृत अवधारणा हैं जो चुनौतियों के साधन और स्त्रोतों को और बढ़ाती है| इसे बुद्विमत्तापूर्ण सुरक्षा (comprehensive security) कहा जा सकता है| सुरक्षा की तीसरी और मूलभूत आलोचना यह बताती है कि सुरक्षा राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को प्रतिबंधित नहीं करती| इस दृष्टिकोण से सुरक्षा का परम्परागत सिद्धान्त राज्य की सुरक्षा और कल्याण में हैं, जिसमें केन्द्र मे क्या हो- और क्या होना चाहिए - नागरिक और मानव की सुरक्षा और कल्याण| सुरक्षा की मान्यता को जिसके केन्द्र में सबसे ऊपर व्यक्ति की पवित्रता है, मानव सुरक्षा कहा जा सकता है| मानव सुरक्षा की अवधारणा में सुरक्षा का आधारभूत इकाई मानव है| मानव सुरक्षा राज्य की सुरक्षा की उपेक्षा नहीं करती, परन्तु यह ऐसे व्यक्तिगत सुरक्षा में अधिक नहीं मानती| इस सम्बंध में मुख्य तर्क यह दिया जाता हे कि अन्ततः राज्य की सुरक्षा व्यक्ति की सुरक्षा के लिए ही हैं| अंत में, राज्य ही नागरिकों को सुरक्षा प्रदाता हैं, यह सुरक्षा का साधन है, और इसकी सुरक्षा, सुरक्षा का अंत नहीं हो सकती | व्यक्ति की सुरक्षा ही केवल, सुरक्षा का उपयुक्त और अर्थपूर्ण उद्देश्य है| व्यक्ति और राज्य की सुरक्षा की समान प्रकृति के सम्बध में दूसरा तर्क हैं कि व्यक्ति की सुरक्षा को खतरा है जिसका प्रबंधन राज्य की सामर्थ्य से बाहर है| ये धमकिया संक्रमण कालीन अथवा आन्तरिक है| इस प्रकार एक राज्य दूसरे राज्यों से सुरक्षित रह सकता है, परन्तु धीरे धीरे अन्दर से खोखला हो जाएगा, जैसे ही व्यक्तिगत सुरक्षा का ह्रास होगा| संक्रमणकालीन या देशीय शक्तियां अथवा नेता व्यक्ति को डरा सकते हैं कि राज्य अन्दर से कमजोर हो रहा है| एक समय ऐसा आयेगा जब राज्य अपने बाहरी शत्रुओं का मुकाबला नहीं कर सकेगा क्योंकि उसकी आंन्तरिक शक्तियां समाप्त हो चुकी होगी|

तृतीय, विभिन्न कारणों से एक राज्य की वैधता समाप्त हो सकती है और अपने ही नागरिकों के खिलाफ हो सकती है| राज्य की सुरक्षा और व्यक्तिगत सुरक्षा एक दूसरे से विपरीत तरीके के सम्बंधित हैं| जो राज्य अपने नागरिकों को निजी सुरक्षा और स्वतंत्रता को धमकी देता हैं|ऐसा राज्य अंततोगत्वा शासन करने का अधिकार खो देता है| इस स्थिति में, सुरक्षा आधारभूत मसला नहीं रहती शायद इसकी पुनर्संरचना और यहाँ तक कि इसका विनाश जरूरी होता है - जिससे दूसरा राज्य अस्तित्वमान हो (निर्मित) जो अपनी सीमाओं में व्यक्ति की बेहतर सुरक्षा करें|

व्यक्ति और राज्य एक समान है इसका अर्थ है कि राज्य की सुरक्षा की अत्यंत आवश्यक है, जैसा कि पहले कारण बताया गया था, अर्थात कि राज्य व्यक्ति की सुरक्षा का एक साधन है मुख्य साधन| ऐतिहासिक रूप से राज्यों को व्यक्ति की सुरक्षा और स्वतंत्रता सुनिश्चित करने का सबसे प्रभावशाली दर्जा दिया जा रहा है| कुछ राज्य यह कार्य अन्य राज्यों के मुकाबले कही बेहतर तरीके से करते हैं परन्तु कुछ राज्य पूर्णतया बेकार है| इस प्रकार मानव सुरक्षा सम्बंधी मत में राज्य की सुरक्षा के मामले की उपेक्षा नहीं की जा सकती|

8.2.1 सुरक्षा मूल्य

मानव सुरक्षा की अवधारणा में दो मूल्य सर्वोपरि हैः व्यक्ति की शारीरिक सुरक्षा, और उसकी निजी सुरक्षा| शारीरिक सुरक्षा में दो बातें अन्तर्निहित है - शरीर को दर्द और नाश से सुरक्षा और न्यूनतम स्तर पर शारीरिक कल्याण को प्राप्त करना| निजी स्वतंत्रता के विचार के दो अंग है - व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रता का अर्थ है व्यक्ति अत्यंत निजी और जीवन सम्बंधी महत्वपूर्ण कार्य (जैसे विवाह व्यक्तिगत कानून, लालसा सम्बंधी व रोजगार और दूसरों से जुड़ने की स्वतंत्रता) दूसरी स्वतंत्रता नागरिक स्वतंत्रता है और संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए संगठित होने की स्वतंत्रता के रूप में जाना जाता है| मानव सुरक्षा दोनों मूल्यों के लिए आवश्यक हैं| मानव सुरक्षा केवल व्यक्ति की शारीरिक सुरक्षा और कल्याण ही नहीं है| न ही यह केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता है| स्पष्टरूप से शारीरिक सुरक्षा,मानव सुरक्षा का सार है| एक अधिक विस्तृत रूप में,कल्याण भी इससे काफी जुड़ा है| एक शरीर (व्यक्ति) जो बहुत दुखी नहीं हैं अथवा जो नष्ट नहीं हुआ है परन्तु व्यर्थ जीवन जी रहा है क्योंकि जो अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहा, वह दुख और असामयिक मृत्यु से ज्यादा दूर नहीं है| शारीरिक सुरक्षा का विचार और कल्याण निजी स्वतंत्रता से जुड़ा हैं| दुख और शरीर का नाश अथवा आधारभूत आवश्यकताओं और सुविधाओं से पूर्णतया वंचन भी स्वतंत्रता का अभाव है| कुछ लोग दुख आत्म-विनाश अथवा अत्यधिक वंचन को चुनते है| यही वे इन चुनौतियों का सामना कर सकते है तो इसलिए क्योंकि कोई व्यक्ति अथवा कुछ सामाजिक परिस्थितियां शरीर को उन चुनौतियों के लिए बाधा करती है|

मानव सुरक्षा और शारीरिक सुरक्षा को एक समान स्तर पर लाने की बात भी कही जाती है| इसका कारण मानकात्मक है| कल्पना करें कि समाज में, सरकारी ऐजेंट अथवा सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था दुख, कष्ट और वंचन (अभाव) से सुरक्षा की गारंटी देती है| वे ऐसा व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बंधन लगाकर करते हैं एक दूसरे को चोट

नहीं पहुँचाने को सुनिश्चित करने के लिए, सूक्ष्म बंधन लगाती है और अस्तित्व से वंचित करने वाली सामाजिक स्थितियों को नष्ट करती है| एक सर्वाधिकारवादी सरकार इस तरह के सुरक्षित समाज का वादा कर सकती है| अत्यधिक नियमों से चलने वाली समाज व्यवस्था जिसमें जाति व्यवस्था, दासप्रथा जिसकी शायद सर्वाधिक आलोचना हुई, अधिकार और उपकार हैं| यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना गंतव्य जानता है और वह तब तक दुख-दर्द विनाश और अभावों से सुरक्षित है जब तक वह समाज के नियमों और प्रतिबंधों का सम्मान करते हैं| निश्चित रूप से इस प्रकार की मानव सुरक्षा मूल्यो और मानको के आधार पर स्वीकार करने योग्य नहीं हैं| आधारभूत निजी स्वतंत्रता की कीमत पर दुख,नाश और अभाव से शरीर को सुरक्षित करना मानव सुरक्षा के समान नहीं हो सकता| इसीलिए मानव सुरक्षा, सुरक्षा की आवश्यकता और स्वतंत्रता की जरूरत के मध्य एक संतुलन के रूप में माना जाता है| सुरक्षा अथवा स्वतंत्रता के रूप में पूर्णतावाद, बेकार और स्वयं को खोने जैसा होगा|

8.2.2 सुरक्षा के लिए धमकियों की प्रकृति

धमकियों के मुद्दे पर मानव सुरक्षा का मामला नव यर्थाथवाद धारणा से बहुत अलग है| यथार्थवादी के लिए दूसरे राज्यों से प्रत्यक्ष संगठित हिंसा, सुरक्षा के लिए मूल धमकी है| मानव सुरक्षा की धारणा में वे सभी खतरे शामिल हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, जाने पहचाने स्त्रोतों जैसे दूसरे राज्य और विभिन्न गैर राज्यीय तत्वों और संरचनात्मक संसाधनों जैसे विभिन्न स्तरों पर शक्ति सम्बंधो -परिवार से लेकर विश्व अर्थव्यवस्था तक मौजूद हैं| बाद के मामलों में धमकियों खतरों को पहचानना आसान नहीं है और न ही उनके इरादों को यहाँ तक कि उन परिस्थितियों को भी पहचानना मुश्किल है जो दूसरे के कार्यों अथवा उदासीनता से उत्पन्न होते है|

इसीलिए मानव सुरक्षा के सभी समर्थक इस बात पर सहमत हैं कि उसका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति की सुरक्षा है| परन्तु जनमत इस बात का विश्लेषण करता है कि व्यक्ति की सुरक्षा किस प्रकार की जानी चाहिए मानव सुरक्षा की संकुचित अवधारणा के समर्थक, जिन्होंने मानव सुरक्षा रिपोर्ट को मान्यता दी हैं, में व्यक्ति को मिलने वाली हिंसक धमकियों पर ध्यान केन्द्रित किया है| जबकि ये खतरे गरीबी, राज्य समता में कमी और सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक असमानता के विभिन्न रूपों से गहरे से जुड़े हैं|

मानव सुरक्षा की विस्तृत अवधारणा के समर्थकों ने 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 1994' में अपनी बात स्पष्ट रूप से रखते हुए 'मानव विकास रिपोर्ट दी' और 'मानव सुरक्षा आयोग 2003' की रिपोर्ट अब 'मानव सुरक्षा' में तर्क दिया गया कि खतरों के क्षेत्र को विस्तृत करते हुए इसमें भूख, बीमारी और प्राकृतिक आपदाओं को शामिल करना चाहिए क्योंकि युद्व ,जातीय नरसंहार और आतंकवाद से मारे जाने वाले लोगों के मुकाबले दूसरे मरने वाले लोगों की संख्या कहीं ज्यादा है| हालांकि अनुसंधान के क्षेत्र में यह अभी भी बहस का विषय है लेकिन मानव सुरक्षा के लिए दोनों ही दृष्टिकोण एक दूसरे के विरोधी होने के स्थान पर पूरक हैं|

8.3 अवधारणा का विकास

मानव सुरक्षा के विचार के सबसे महत्वपूर्ण अग्रदूत बहुराष्ट्रीय स्वतंत्र आयोगों की श्रृंखला की रिर्पोट थी, जिसे प्रसिद्व नेताओं ,विद्वानों और शोधकर्ताओं ने तैयार किया था| 1970 में शुरूआत में क्लब ऑफ रोम ग्रुप ने 'विश्व की समस्याऐं' पर अनेक खंडो की सीरिज जारी की जिसका आधार यह विचार था कि "सभी देशों के लोगों को जो जटिल समस्याऐं परेशान कर रही हैं वे हैं - गरीबी, पर्यावरण का निम्न स्तर, संस्थाओं में विश्वास समाप्त होना, अनियंत्रित शहरीकरण, रोजगार सम्बंधी असुरक्षा, युवाओं में अलगाव, परम्परागत मूल्यों की स्वीकृति, मुद्रास्फीति और अन्य मौद्रिक व आर्थिक गड़बड़ियां| रिपोर्ट में कहा गया कि विश्व का प्रत्येक व्यक्ति दबावों और समस्याओं की एक श्रृंखला का सामना कर रहा है| जिस पर ध्यान देने और कार्य किए जाने की आवश्यकता है| ये समस्याऐं उसे विभिन्न स्तरों पर प्रभावित करती है| व्यक्ति अपना ज्यादातर समय कल के भोजन की तलाश में बिता देता है उसे भी निजी शान्ति अथवा जिस देश में वह रह रहा है उसकी शक्ति के बारे में सोचना चाहिए| वह विश्व युद्ध के बारे में सोचे अथवा उसके पड़ौस में अगले सप्ताह होने वाले विभिन्न खानदानी संघर्ष के बारे में|" इस प्रकार के और अन्य महत्वपूर्ण विषय वैश्विक प्रवृतियों और शक्तियों के सन्दर्भ में समझने चाहिए जो व्यक्ति पर प्रभाव डालते हैं विशेष रूप से औद्योगीकरण की तेज रफ्तार, जनसंख्या की तीव्र वृद्दि दर, चारों ओर फैला कुपोषण, संसाधनों को समाप्त करना और पर्यावरण का ह्रास|" इन विस्तृत भौतिक तत्वों के बीच अन्तर्सम्बंध बताता है कि विश्व स्तर पर आर्थिक प्रगति की एक सीमा है, इसीलिए महाप्रलय युक्त भविष्य मानव समाज के सामने है| फिर भी, 'विश्व संतुलन की स्थिति तैयार करनी चाहिए, जिससे प्रत्तेक व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतओं को पहचानने के समान अवसर है|" संक्षेप में, इस समूह ने सुझाव दिया कि जटिल विश्व व्यवस्था व्यक्ति के जीवन अवसरों को प्रभावित कर रही थी और अवधारणात्मक स्तर पर विश्वविकास के लिए कई वैकल्पिक मार्ग थे और अन्ततः विश्व सुरक्षा उन जीवन अवसरों को स्थिर और विकसित करेगी|

1980 के दशक में, दो अन्य स्वतंत्र आयोगों ने विकास और सुरक्षा के चिन्तन को बदलने में योगदान दिया| पहला स्वतंत्र आयोग, विली ब्रांट की अध्यक्षता में बना अन्तर्राष्ट्रीय विकास के मामलों पर था जिसने 1980 में तथाकथित 'उत्तर-दक्षिण रिपोर्ट' दी| रिपोर्ट की प्रस्तावना में ब्रांट ने लिखा, "हमारी रिपोर्ट उन साधारण से सामान्य से हितों पर आधारित है कि मानवजाति जीना चाहती है और प्रत्येक को जीने के लिए नैतिक दायित्व जोडने चाहिए|" इसने न केवल शांति और युद्व से सम्बंधित परम्परागत प्रश्न उठाए बल्कि विश्व में अमीर व गरीब के बीच भूख, बहुसंख्यक के दुख की खतरनाक असमानता को कैसे-जीता जाए यह भी बताया| उत्तर-दक्षिण के विकास कार्यक्रमों की अनिवार्यता पर बहस के दौरान, यह देखा गया कि इस बात का सारतत्व था,"खतरनाक तनावों पर विजय पाना और राष्ट्रों और क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी परिणाम देना -परंन्तु सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण हैं-विश्व के सभी भागों में

मानव जाति के लिए, यह प्राप्त करना|" 1980 के दशक के दूसरे आयोग ने, जो निशस्त्रीकरण और सुरक्षा मामलों हेतु स्वतंत्र आयोग था (जिसके सभापति अलोल्फ पाल्मे थे)| पाल्मे ने अपनी प्रसिद्व 'सामान्य सुरक्षा' रिपोर्ट दी जिसने शांति और सुरक्षा के वैकल्पिक मार्गो की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया| जब इसने सैन्य मामलों पर ध्यान केन्द्रित किया और राष्ट्रीय सुरक्षा को इससे जोड़ा तो इसने माना कि तृतीय विश्व की सुरक्षा को आर्थिक असमानता से उत्पन्न गरीबी और अभाव का अतिरिक्त खतरा है|" रिपोर्ट ने यह भी इंगित किया गया कि "सामान्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि लोग सम्मान और शान्ति से रहें, कि वे भूखे न रहे और रोजगार प्राप्त कर सकें और गरीबी और दीनता के बिना विश्व में रहें |"

शीत युद्व की समाप्ति के बाद सुरक्षा के मामले में नयी सोच तेजी से विकसित हुई| 1991 में, स्टॉकहोम ने विश्व सुरक्षा पर पहल की और प्रशासन ने' 1990'के दशक के सामान्य उत्तरदायित्व के रूप में घोषणा जारी की जिसमें "राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और शस्त्रीकरण के अतिरिक्त सुरक्षा के लिए अन्य चुनौतियों" तथा 'सुरक्षा की व्यापक/विस्तृत अवधारणा के रूप में, जो विकास को समाप्त करने पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने, अत्यधिक जनसंख्या वृद्वि दर और प्रजातंत्र में प्रगति को अवरूद्ध करने वाली धमकियों का निराकरण करने के सम्बंध में कार्य कर रही थी| चार वर्ष बाद विश्व प्रशासन पर आयोग ने रिपोर्ट दी ''हमारे वैश्विक 'पड़ौसी ' इसने सुरक्षा पर स्टॉकहोम के द्वारा की गई पहल को ही प्रतिध्वनि दी – "वैश्विक सुरक्षा के सिद्धान्त को, परम्परागत रूप से केन्द्रित राज्यों की सुरक्षा के विचार से अधिक विस्तृत करते हुए इसमें लोगों की सुरक्षा और इस ग्रह की सुरक्षा को भी शामिल किया जाना चाहिए|"

यदि आयोग की रिपोर्ट मानव सुरक्षा के विचार की पूर्वसूचना थी तो 1990 के प्रारिम्भक काल में निस्संदेह मानव सुरक्षा का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था| उसमें सबसे पहले योगदानकर्ता थे महबूब उल हक और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ;न्छक्च्द्ध| एक सम्माननीय विकासवादी अर्थशास्त्री और UNDP के लम्बे समय तक सलाहकार रहे श्री हक, मानव विकास सूचकांक भ्फप् देने वालो के रूप में मुख्य थे| मानव विकास के प्रयास स्पष्ट रूप से इस धारणा को केन्द्र में रख कर किए गए थे कि विकास की सोच और नीतियां का केन्द्र; सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कल्याण के स्थान पर, व्यक्ति के कल्याण को होना चाहिए| मानव सुरक्षा पर दूसरा महत्वपूर्ण विचार कनाडा सरकार और कनाडा के उन विद्वानों का था जिन्होने मध्यवर्ती शक्ति में पहल की|

मानव सुरक्षा का विचार सामान्यतः संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम-1994 की रिपोर्ट की ओर ले जाता है| स्वर्गीय श्री महबूब-उल-हक सलाहकार अर्थशास्त्री,जो इस विचार से प्रारम्भ से ही बहुत गहराई से जुडे थे| हक ने मानव विकास सूचकांक तैयार करने में मुख्य भूमिका निभाई और मानवीय प्रशासन सूचकांक (HGI) के पीछे निरन्तर एक सक्रिय शक्ति के रूप में कार्यरत रहे| श्री हक का दृष्टिकोण उनके शोधपत्र 'मानव सुरक्षा की नयी अनिवार्यताऐं 1994'में प्रस्तुत की गयी है|

श्री हक ने 'सुरक्षा किसके लिए' प्रश्न का अत्यंत सरल उत्तर दिया| उनके अनुसार मानव सुरक्षा, राज्यों और राष्ट्रों के बारे में नहीं हैं, परन्तु यह धारणा व्यक्तियों और लोगों से जुड़ी है| इस प्रकार उनका तर्क था कि "विश्व, मानव सुरक्षा के एक नये युग में प्रवेश कर रहा है जिसमें सुरक्षा का सम्पूर्ण सिद्वान्त ही बदल जाएगा- और नाटकीय ढंग से बदलेगा|" इस नयी मान्यता में सुरक्षा, राष्ट्रों की सुरक्षा होने के स्थान पर व्यक्तियों की सुरक्षा के समकक्ष होगी अथवा इस तरह भी कहा जा सकता है कि लोगों की सुरक्षा सिर्फ राज्यक्षेत्र की सुरक्षा मात्र नही होगी| इसके अलावा उन्होने अधिक जोर देकर लिखा कि "हमें मानव सुरक्षा के एक नये सिद्धान्त को प्रचलन में लाने की आवश्यकता है जो हमारे देश के हथियारों में दिखाई देने के स्थान पर हमारे लोगों के जीवन में प्रतिबिम्बत हो|"

हक के अनुसार इस नये सिद्धान्त को संरक्षण दिलाने हेतु किन मूल्यों की तलाश किया जा रहा है, यह बहुत स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु स्पष्ट तौर पर व्यक्ति की सुरक्षा और कल्याण मोटे तौर पर मुख्य मूल्य हैं| जहाँ सुरक्षा का परम्परागत सिद्धान्त राज्यक्षेत्र की अखंडता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर मूलभूत मूल्य के रूप में बल देता है, जिनकी सुरक्षा की आवश्यकता हैं, मानव सुरक्षा इन सबसे सम्बंधित होने के अलावा,'सभी लोगों की सब जगह - अपने घर में,अपने कार्य स्थल पर अपनी गलियों में, अपने समुदाय में और अपने पर्यावरण में सुरक्षा और कल्याण है'|

इन मूल्यों की सबसे बडी चुनौतियों के बारे में हक अपने शोधपत्र में संक्षिप्त सूची देते हैं - नशीली दवाईयां, आतंकवाद, और गरीबी | आगे इस लेख में उन्होंने मानव सुरक्षा के खतरों के निराकरण पर विचार करते हुए लिखा कि है कि "कम से कम कार्यान्वयन के स्तर पर एक अत्यंत आधारभूत खतरा मौजूद है जो असमान विश्व व्यवस्था के नाम से जाना जाता है, जिसमें थोडे से राज्य और अभिजन विशाल मानवता की हानि के लिए जिम्मेदार हैं| यह विश्व व्यवस्था इस सिद्धान्त और विकास के प्रयोगों को मूर्तरूप देने में सफल हुई जो सुरक्षा हेतु हथियारों पर विश्वास करता है, विश्व को उत्तर और दक्षिण में बाँट देता है और और वैश्विक संस्थाओं (जैसे संयुक्त राष्ट्रसंघ और ब्रेटन वुड्स संस्थाएं) की सीमितता बढाता है|"

मानव सुरक्षा को प्राप्त करने के बारे में हक ने महत्वपूर्ण योगदान दिया और कहा कि मानव सुरक्षा को "विकास से प्राप्त किया जा सकता है न कि हथियारों से|" हक के अनुसार विशेष रूप से 5 बुनियादी कदम इस सिद्धान्त को नव जीवन देने हेतु आवश्यक है - मानव विकास का सिद्धान्त जो समानता पर बल देता हो, निरन्तर और स्थिर जनसाधारण की सहभागिता, मानव सुरक्षा के विस्तृत एजेंडा में शांति की योजना, उत्तर और दक्षिण के मध्य एक नयी साझेदारी शुरू करना जिसका आधार न्याय हो, दान नहीं, जो वैश्विक बाजार के अवसरों की समानता और आर्थिक पुनर्निर्माण पर आधारित हो, विश्व सरकार के एक नये ढाँचे का निर्माण करना जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्रसंघ आदि में सुधार करे और अन्त में विश्व नागरिक समाज की भूमिका को बढ़ाना| हक ने मानव की वैश्विक सुरक्षा के लिए सुझावों की एक लम्बी सूची दी| इसमें शामिल है:-

विकास के स्तर पर इसमें स्थिरता, अवसरों की समानता (उत्पादक साधनों को उचित वितरण जिसमें भूमि और लाभ शामिल है| बाजार के अवसरों में मुक्त प्रवेश, रोजगार उत्पन्न करना, सामाजिक सुरक्षा का ढाँचा विद्दमान है) और वैश्विक न्याय (जिसमें शामिल है, विश्व आय, उपभोग और जीवन शैली प्रतिमान का पुनर्निमाण) शामिल है|

सैन्यरूप से:- हथियारों पर होने वाले खर्चो को कम करना, सभी सैनिक अड्डों को बंद करना, सैन्य सहायता को आर्थिक सहायता में बदलना, हथियार देने की योजनाओं को रोकना, अस्त्र निर्यात पर आर्थिक सहायता समाप्त करना, सुरक्षा उद्योगों में कामगारों को पुर्नप्रशिक्षित करना|

उत्तर-दक्षिण पुनर्निर्माण:- विश्व बाजार तक गरीब राष्ट्रों की समान पहुँच बनाना और व्यापार प्रतिबंधों को हटाना (विशेष तौर पर कपड़ा उद्योग व कृषि में), अप्रवासी नियंत्रण और वैश्विक पर्यावरण संसाधनों के अत्याधिक दोहन के कारण धनी राष्ट्रों से वित्तीय क्षतिपूर्ति दिलवाना और विभिन्न सेवाओं (जैसे पर्यावरण् सेवायें, नशीली दवाओं और बीमारियों की रोकथाम) के लिए वैश्विक भुगतान व्यवस्था विकसित करना, आर्थिक संकट और गलत आर्थिक आचरण (जैसे प्रतिभा पलायन को बढ़ावा देना, अकुशल श्रम को बाहर जाने से रोकना, निर्यात प्रतिबंध) से होने वाली हानि से बचने हेतु यह व्यवस्था आवश्यक मानी|

संस्थागत रूप से:- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष ,विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र को पुनर्जीवित और पुनर्निर्मित करना जिससें मानव विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित हो आर्थिक व्यवस्था में सामन्जस्य करना जिसका लक्ष्य गरीब के मुकाबले अमीर हो, गरीबों को सशक्त करने वाली नयी सरकार का मॉडल, नयी संस्थाऐं जैसे विश्व केन्द्रिय बैंक, एक वैश्विक कर व्यवस्था विश्व व्यापार संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय निवेश ट्रस्ट, विश्व कोष और इन सबसे अलग प्रतिनिधि और वीटो रहित आर्थिक सुरक्षा परिषद (संयुक्त राष्ट्र संघ में) हो जो निर्णय निर्माण की सर्वोच्च संस्था हो और भोजन, पर्यावरण सुरक्षा, गरीबी तथा रोजगार अप्रवास व नशे से सम्बंधित सभी मामलों पर कार्य करेगी जो मानवता के विरूद्ध है|

वैश्विक नागरिक समाज का विकासः-इन सबके अतिरिक्त जनसाधारण की सहभागिता और निरंकुश व्यवस्था से प्रजातांत्रिक सरकार में परिवर्तन अत्यंत आवश्यक है|

8.4 यू. एन. डी. पी. और मानव सुरक्षा

जिस वर्ष श्री हक की मानव सुरक्षा पर संक्षिप्त पुस्तक प्रकाशित हुई, उसी वर्ष संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम रिपोर्ट 1994, प्रकाशित हुई जिसमें मानव सुरक्षा को एक खण्ड के रूप में शामिल किया गया| 'सुरक्षा की पुर्नपरिभाषा मानवीय पहलू' नामक इस रिपोर्ट में परम्परागत सुरक्षा के स्थान पर विकल्प और मानव विकास के बारे में आवश्यक सहायक उपाय देने का दावा किया गया| इसने सुरक्षा से सम्बंधित 4 प्रमुख प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार दिए? इस रिपोर्ट "सुरक्षा किस की?" प्रश्न का उत्तर सुरक्षा की परम्परागत धारणाओं के सन्दर्भ में दिया गया| सुरक्षा की परम्परागत धारणा का संबंध था "बाहरी आक्रमण से राज्य की सुरक्षा से, अथवा विदेश नीति में राष्ट्रीय हित की सुरक्षा से अथवा

परमाणविक संहार की धमकी से विश्व की सुरक्षा से|" इसका सम्बंध व्यक्तियों की अपेक्षा राष्ट्रीय-राज्य से अधिक था| इस धारणा ने "साधारण मानव की तार्किक सोच को अनदेखा किया जो अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में सुरक्षा के इच्छुक थे|" दूसरी ओर मानव सुरक्षा व्यक्ति केन्द्रित है | इस प्रकार श्री हक की तरह इस रिपोर्ट में भी इस बात पर बल दिया गया कि मानव सुरक्षा का उद्देश्य व्यक्ति अथवा लोगों की सुरक्षा है| इस तर्क के पक्ष में रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के मूल दस्तावेजों और सुरक्षा की मूल रूपरेखा में इसे 'भय से मुक्ति' 'अभावों से मुक्ति' और 'राज्य और व्यक्ति को समान मानना' जैसे उद्धरणों से इसकी विशिष्टता को लागू किया गया है| दुर्भाग्य से, शीत युद्ध के दौरान, सुरक्षा की सोच राज्य -क्षेत्र के संरक्षण की ओर हो गई थी, लेकिन शीत युद्र के बाद संतुलन करने का समय था और उसमें लोगों का संरक्षण भी शामिल था|

इस रिपोर्ट में सुरक्षा को लेकर दो भाग है| इसका पहला भाग-'संरक्षण और सशक्तिकरण' है| संरक्षण लोगों की खतरों के समय कवच की तरह काम करता है| कुछ प्रक्रियाओं और मानकों, संस्थाओं को विकसित करने के लिए, इसे संगठित प्रयासों की आवश्यकता हैं जिससे असुरक्षा को व्यवस्थित तरीके से समझा जा सके| सशक्तिकरण से लोगों में अपनी पूरी क्षमता का विकास होता है और इससे वे निर्णय-निर्माण में पूर्ण सहभागी बनेगे| संरक्षण (सुरक्षा) और सशक्तिकरण परस्पर सम्बंद्ध हैं और अधिकतर स्थितियों में दोनों की आवश्यकता होती है| मानव सुरक्षा, राज्य सुरक्षा की पूरक है, मानव विकास को प्रोत्साहन देती है और मानवाधिकार को आगे बढाती है| यह जनकेन्द्रण के माध्यम से राज्य सुरक्षा की पूरक है और असुरक्षा को खत्म करती है जिसे राज्य की सुरक्षा के लिए खतरा नहीं माना जाता| इसके नीचे के खतरों को देखने पर दूसरे मानव विकास का ध्यान 'प्रगति व समानता' से अलग हो जाता हैं| मानवाधिकारों का सम्मान करना ही मानव सुरक्षा संरक्षण का सार है| प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को बढ़ावा देना मानव सुरक्षा और विकास को प्राप्त करने की ओर, एक कदम है| इससे जनता शासन में भाग लेने योग्य और अपनी समस्याओं की सुनवाई करवाने योग्य सक्षम बनती है| इसके लिए मजबूत संस्थाओं के निर्माण विधि के शासन को स्थापित करने और जनता को सशक्त करने की आवश्कता है|

8.5 व्यक्तियों की सुरक्षा बढ़ाने के तरीके

मानव सुरक्षा संघर्ष और अभावों जैसे मुद्दे पर सशक्त करने और एक जुट प्रयास करने की इच्छुक है| इसके लिए प्रयास किए गए जैसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई सहस्त्राब्दी की घोषणा और सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य (MDGS)| मानव सुरक्षा को पाने के लिए, सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य को पाने और उनसे आगे जाने हेतु लोगों को मिलने वाली धमकियों का सामना करने के लिए पूर्ण प्रयास करने की आवश्यकता है|

8.5.1 मानव सुरक्षा पर आयोग की रिपोर्ट की रूपरेखा

आयोग ने विभिन्न छोड़े गए क्षेत्रों में अपनी नीतियों को प्रस्तुत किया:-

1. हिंसक संघर्ष में लोगों को संरक्षण|

2. हथियारों की होड़ से लोगों की सुरक्षा|

3. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे लोगों की सुरक्षा का समर्थन करना|

4. संघर्षोत्तर काल के लिए मानव सुरक्षा संक्रमण कोष बनाना |

5. अत्यधिक गरीबों के लाभ हेतु व्यापार मेलों और बाजारों को प्रोत्साहित करना|

6. प्रत्येक को न्यूनतम जीवन स्तर प्रदान करने हेतु कार्य करना|

7. मूलभूत स्वास्थ्य सेवाओं तक विश्व की पहुँच को सुनिश्चित करने को सर्वाधिक प्राथमिकता देना|

8. सुरक्षित अधिकारों के लिए सशक्त समान वैश्विक व्यवस्था विकसित करना|

9. मूलभूत वैश्विक शिक्षा से सभी लोगों को सशक्त करना|

10. जब व्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान विभिन्न पहचानों और मान्यताओं से जुड़ा है, ऐसे में मानव की वैश्विक पहचान को स्पष्ट करना|

8.5.2 हिंसक संघर्ष में लोगों की सुरक्षा

संघर्षों में मुख्यतया नागरिक ही हताहत होते है| नागरिकों को सुरक्षित करने के लिए सिद्धान्तों और व्यवस्था को शक्ति शाली बनाना होगा| इसके लिए बोधगम्य और संगठित रणनीतियों की आवश्यकता है जो राजनीतिक सैन्य, मानवीय और विकास के विभिन्न आयामों को जोड़े| इस आयोग ने मानव सुरक्षा को ,सुरक्षा संगठनों के सभी स्तरों पर प्राथमिकता पर रखने का सुझाव दिया, मानवीय कानून और नागरिकता के सन्दर्भ में मानव सुरक्षा का समर्थन कैसे हो, इस पर काफी विरोध हैं| इन अन्तरों को पाटना उतना ही आवश्यक है जितना मानवाधिकारों के हनन के अपराध की प्रवृति को रोकने पर ध्यान देना|

लोगों के मध्य सह अस्तित्व और विश्वास को बढ़ाने के लिए समुदाय आधारित रणनीतियां सहायक होगी| इसी के समान, मानवीय सहायता द्वारा जीवन रक्षक आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी अत्यंत आवश्यक है| महिलाओं, बच्चों, बुजुर्गों और अन्य अति संवेदनशील समूहों के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए| हथियारों की होड़ और अवैध व्यापार को रोक कर, अपराधों के खिलाफ लड़ना और लोगों को शस्त्र विहीन करना तथा लोगों को महत्व देना इसकी प्राथमिकता है|

8.5.3 स्थान परिवर्तन कर रहे व्यक्तियों संरक्षण व सशक्त करना

बहुसंख्यकों के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना अपनी आजीविका को उन्नत करने का अवसर है| अन्य लोगों के लिए प्रवास करना स्वयं की सुरक्षा का एक विकल्प हैं| ऐसा उन लोगों के लिए हैं जिन्हें संघर्षों अथवा गंभीर मानवाधिकार हनन के लिए मजबूर भागना पड़ता है| कुछ अन्य लोगों को अचानक आई विपदा अथवा अत्यधिक अभावों से बचने के लिए अपना घर छोड़ने को मजबूर होना पड़ता हैं| वर्तमान में,शरणाथियों के अलावा प्रवास को नियंत्रित करने अथवा संरक्षण स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था नहीं हैं| प्रवासी लोगों की सुरक्षा और राष्ट्रों की सुरक्षा और विकास की आवश्यकताओं पर ध्यानपूर्वक संतुलन करने पर उच्च स्तरीय खुले विचार-विमर्श तथा संवादों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय आव्रजन ढाँचे को खोजा जाना चाहिए| शरणार्थियों का संरक्षण और आन्तरिक रूप से अपनी जगह से अलग हुए लोगों का संरक्षण सुरक्षित करना और उनको इस स्थिति से छुटकारा दिलाने के तरीके को पहचानना भी उतना ही महत्वपूर्ण हैं|

8.5.4 संघर्षोत्तर काल में व्यक्तियों का संरक्षण और सशक्तिकरण

युद्ध विराम समझौते और शांति समझौतों ने संघर्ष समाप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इससे शांति और मानव सुरक्षा आ जाए| संघर्ष में लोगों की सुरक्षा का दायित्व पुनर्निर्माण के दायित्व का पूरक होना चाहिए| संघर्ष पीड़ित राज्यों के पुनर्निमाण हेतु एक नये ढ़ांचे और वित्तीय रणनीति की आवश्यकता हैं, एक ऐसी रणनीति जो लोगों की सुरक्षा और सशक्तिकरण पर केन्द्रित हो|इस तरह का मानव सुरक्षा ढ़ाँचा विभिन्न, मुद्दों के आपसी तालमेल पर बल देता हैं जैसे नागरिक पुलिस को सशक्त कर लड़ाकूओं को कमजोर कर लोगों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना, जगह परिवर्तित करने वाले लोगों की तत्काल (मूलभूत) आवश्यकताओं को पूरा करना, पुनर्निर्माण और विकास शुरू करना, झगड़ों को निपटाना और सहअस्तित्व को उन्नत करना और प्रभावशाली सरकार को बढ़ावा देना| सफलता के लिए, नेतृत्व की आवश्यकता है जो मानव सुरक्षा के मुद्दे पर सभी को एक कर सके| इस रूप रेखा को क्रियान्वित करने के लिए संघर्षोत्तर स्थितियों में एक नयी कोष निर्माण करने की नीति बनानी होगी, जिसमें वास्तविक स्तर पर योजना व बजट सामजंस्य सुनिश्चित किया जा सके|

8.5.5 आर्थिक असुरक्षा अवसरों के चयन की शक्ति

विश्व में अत्यधिक गरीबी व्याप्त हैं| बाजारों की उचित काम काज ,साथ ही गैर व्यवसायिक संस्थाओं के विकास से ही गरीबी उन्मूलन हो सकता है| सक्षम और समान व्यापार व्यवस्थाऐं गरीबतम व्यक्ति तक आर्थिक प्रगति को पहुँच और लाभों का उचित वितरण आवश्यक है| इस अत्यधिक गरीबी की बात करने के साथ-साथ मानव सुरक्षा का विचार अचानक आए आर्थिक संकट, प्राकृतिक आपदा और संकटों के सामाजिक प्रभावों पर भी, अपना ध्यान केन्द्रित करता है| जब संकट आता हैं अथवा उन्हें गरीबी से बाहर निकालने में लोगों को सुरक्षित करने के लिए हमें

उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामाजिक बन्दोबस्त हैं तथा न्यूनतम आर्थिक व सामाजिक स्तर सुनिश्चित करने की आवश्यकता है| विश्व के दो तिहाई लोग सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं हैं अथवा उनके पास सुरक्षित निश्चित कार्य नहीं है| सभी के लिए सतत् आजीविका सुनिश्चित करने और कार्य आधारित सुरक्षा हेतु प्रयासों पर बल देने की जरूरत है| भूमि, लाभ, शिक्षा और घर, की प्राप्ति , विशेषरूप से गरीब महिलाओं के लिए बहुत मुश्किल है| संसाधनों का समान वितरण आजीविका की सुरक्षा की कुंजी है और इससे लोगों के स्वयं की सामथ्र्य और कुशलता को बढ़ाया जा सकता है| सामाजिक संरक्षण के उपाय और सुरक्षा व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक स्तर को बढ़ा सकते है| अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की सहायता से राज्यों को प्राकृतिक आपदाओं ,और आर्थिक अथवा वित्तीय संकटों की पूर्व चेतावनी और उनसे बचाव के उपाय की व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है|

8.5.6 मानव सुरक्षा व स्वास्थ्य

स्वास्थ्य संम्बंधी देखभाल में प्रगति होने के बावजूद भी 2001 में 22 लाख लोग निवारक रोगों से मर गए| HIV AIDS जल्दी ही सबसे बड़ी स्वास्थ्य सम्बंधी महाविनाश साबित होगी| इन वैश्विक संक्रामक बीमारियों के प्रभाव और गहनता के कारण, गरीबी में जुड़े खतरों और हिंसा जनित स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित लोगों के लिए तुरन्त कार्य करने की आवश्यकता है| सभी स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को स्वास्थ्य सेवाओं को सार्वजनिक भलाई में बढ़ावा देना चाहिए| सामाजिक कार्यो को सक्रिय करना तथा सहायक सामाजिक व्यवस्थाओं में निवेश करना आवश्यक हैं, इसमें शामिल है, सूचनाओं तक व्यक्ति की पहुँच ; बीमारी के कारणों को दूर करने के लिए चेतावनी व्यवस्था मुहैया कराना और बीमारी का अग्रता को करना| विकासशील देशों में जीवन रक्षक दवाओं तक आम नागरिक की पहुँच मुश्किल है| एक समान बौद्धिक सम्पदा अधिकार को विकसित करने की आवश्यकता हैं ताकि शोध और विकास को प्रोत्साहन मिले और जीवन रक्षक दवाओं तक लोगों की पहुँच सुनिश्चित हो सके| अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को भी स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ाने के लिए एक वैश्विक साझेदारी विकसित करनी चाहिए, जैसे संक्रामक रोगों के लिए निगरानी और नियंत्रण व्यवस्था को विकसित करना|

8.5.7 मानव सुरक्षा के लिए ज्ञान, कौशल, और मूल्य

ज्ञान जीवन दाता और विभिन्नताओं को सम्मान देना सिखाने वाली बुनियादी शिक्षा और सार्वजनिक सूचना, मानव सुरक्षा के लिए विशेषरूप से महत्वपूर्ण है| सुरक्षा आयोग ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से आग्रह किया कि उन्हें विश्व में प्राथमिक शिक्षा विशेष रूप से बालिका शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्रिय रूप से सहायता करनी चाहिए| स्कूलों में बच्चों को शारीरिक असुरक्षा नहीं होनी चाहिए बल्कि छात्रों का हिंसा, जिसमें सेक्सुअल हिंसा भी शामिल हैं से सुरक्षा मिलनी चाहिए| शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विभिन्नता को सम्मान दें और एक संतुलित पाठ्यक्रम और पढ़ाने के तरीके से हमारी पहचान को बढ़ावा दे| सार्वजनिक संचार माध्यम बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे जीवन दक्षता और राजनीतिक मामलों पर सूचनाऐं दे सकते हैं और सार्वजनिक बहस में जनता की आवाज को मुखर करते है| शिक्षा

और संचार सेवाओं को केवल कार्य अवसर और परिवार के स्वास्थ्य सम्बंधी सूचना तथा दक्षता ही नहीं देनी चाहिए वरन उन्हे लोगों को अपने अधिकार और दायित्वों को पूरा करने योग्य भी बनाना चाहिए|

8.6 वर्तमान में मानव सुरक्षा

सम्पूर्ण विश्व की मानव सुरक्षा जुड़ी हुई है-जैसे आज विश्व में ,वस्तुऐं ,सेवाऐं, वित, लोग और लोगों की धारणाऐं | राजनीतिक उदारीकरण और प्रजातंत्रीकरण ने जहाँ नये अवसर विकसित किए हैं वही , राज्यों में राजनीतिक और आर्थिक अस्थिरता और संघर्ष जैसे दोष भी उत्पन्न किए हैं| एक वर्ष में 800से अधिक लोगें ने हिंसा में मारे गऐ| लगभग 2.8 अरब लोग गरीबी, बीमारी ,अशिक्षा और अन्य से ग्रस्त हैं| संघर्ष और अभाव एक दूसरे से जुड़े है| अभाव हिंसा से कई तरीकों से जुड़ा हैं हांलाकि इसकी सावधानीपूर्वक पड़ताल होनी चाहिए| इसके विपरीत युद्ध लोगों को मारता हैं, उनके बीच के विश्वास को खत्म करता हैं, गरीबी और अपराध बढ़ाता हैं तथा अर्थव्यवस्था की विकास दर को धीमा कर देता हैं| इस तरह की असुरक्षाऐं प्रभावशाली तरीके के एक संगठित दृष्टिकोण की मांग करती है| रिपोर्ट में मानव सुरक्षा पर दी गई घोषणा आज के विश्व की चुनौतियाँ पर प्रतिक्रिया है| इन असुरक्षाओं पर संस्थाओं और नीतियों में आधिक मजबूत और एकजुट तरीके से कार्य करना चाहिए| राजा को सुरक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी निभाते रहना होगा| परन्तु सुरक्षा सम्बंधी चुनौतियों के अधिक जटिल हो जाने तथा नये लोगों द्वारा कार्य किए जाने के कारण हमें इस क्षेत्र में परिवर्तन की आवश्यकता हैं|

इस प्रकार सम्पूर्ण सोच का केन्द्र राज्य से बढ़ कर व्यक्ति की सुरक्षा होना चाहिए ,जिसे मानव सुरक्षा कहा गया| मानव सुरक्षा से अभिप्राय हैं जीवनोपयोगी महत्वपूर्ण स्वतंत्रताओं का संरक्षण| इसका अर्थ हैं लोगों को घातक और सब ओर व्याप्त धमकियों और हालातों से संरक्षण देना;उनकी शक्ति और आकांक्षाओं को मजबूती देना| इसका अर्थ लोगों को जीने योग्य स्थितियां ,सम्मान और आजीविका देना भी है| मानव सुरक्षा विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताओं को जोड़ती हैं| मानव सुरक्षा विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताओं को जोड़ती हैं-अभावों से मुक्ति ,भय से मुक्ति और अपने स्वंय के स्तर पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता| ऐसा करने के लिए दो नीतियां हैं- संरक्षण और सशक्तिकरण संरक्षण लोगों को खतरों से बचाता हैं|इसके लिए मिल-जुल कर प्रयास करने की आवश्यकता हैं जिससे ऐसे मूल्य, प्रक्रियाऐं और संस्थाओं को विकसित किया जा सके जिनसे असुरक्षा से व्यवस्थित तरीके से निपटा जा सके| सशक्तिकरण लोगों को अपनी क्षमता विकसित करने योग्य बनाता हैं| जिससे ये लोग निर्णय निर्माण में पूर्ण भागीदार बने| संरक्षण और सशक्तिकरण परस्पर मजबूती प्रदान करता हैं और अधिकतर स्थितियों में दोनों की जरूरत होती है|

मानव सुरक्षा, राज्य सुरक्षा की पूरक हैं, जो मानव विकास को उन्नत और मानवाधिकार को आगे बढ़ती है| यह जनकेन्द्रित होकर राज्य सुरक्षा की पूरक हैं और असुरक्षा को महत्व नहीं देती | अन्य खतरों को देखते हुए यह मानव विकास का ध्यान‘‘ समानता के साथ प्रगति’’ से आगे विस्तृत करती है| मानव अधिकारों को सम्मान देना ही मानव सुरक्षा के संरक्षण का सार है|

प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को बढावा देना, मानव सुरक्षा और विकास को प्राप्त करने की ओर एक कदम हैं| इससे लोग सरकार में सहभागिता देने योग्य बनते हैं और उनकी बात को महत्व मिलने लगता है| इसके लिए शक्तिशाली संस्थाओं, विधि का शासन स्थापित करने तथा लोगों को सशक्त करना आवश्यक हैं|

8.7 सारांश

इनमें से प्रत्येक नीति को प्राप्त करने के लिए संयुक्त प्रयास आवश्यक हैं- सार्वजनिक, निजी और नागरिक समाज के सभी कार्यकर्ताओं का , आपसी तालमेल होना चाहिए जिससे मूल्यों और मानकों के स्पष्टीकरण और विकास में सहायता मिले विविधताओं से परिपूर्ण कार्यो को एक जुट होकर प्रारम्भ कर सके, और प्रगति व कार्य निष्पादन पर नजर रखी जा सके| इस प्रकार के प्रयास एक क्षैतिजीय, वैधता के सीमाओं के पार साधन सृजित कर सकेगें जो परम्परागत लम्बवत ढ़ाँचे के पूरक होंगे| इस मैत्री का शानदार प्रदर्शन उदीयमान अन्तर्राष्ट्रीय जनमत की आवाज को सामने लाएगा| मानव सुरक्षा एक उत्प्रेरक की तरह काम कर सकेगी जो बहुत सी चल रही योजनाओं को जोड़ेगी| संसाधनों की प्रभावकारी व पर्याप्त सक्रियता भी आवश्यक है| केवल अतिरिक्त संसाधन देने की प्रतिबद्धता ही काफी नहीं हैं बल्कि जरूरतमंद लोगों को सहायता देना प्राथमिकता होनी चाहिए| इसी सन्दर्भ में आयोग ने मानव सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ट्रस्ट फंड के महान योगदान की सराहना की और दानदाताओं की संख्या बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित किया| इस आयोग ने मानव सुरक्षा पर एक सलाहकार बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश भी की जो संयुक्त राष्ट्र ट्रस्ट फंड को दिशा दे और आयोग की सिफारिशों पर कार्यवाही करे| आयोग ने एक मुख्य समूह बनाने का सुक्षाव दिया जिसमें स्वेच्छा से मानव सुरक्षा में रूचि लेने वाले राज्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और नागरिक समाज शामिल हों और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा ब्रेटेन वुड्स संस्थाओं के साथ कार्य करें- इससे संसाधनो का थोड़े से निवेश ही अत्यधिक प्रभाव डाले और अलग अलग हो रहे मानव सुरक्षा कार्यकर्ताओं को शक्तिशाली वैश्विक मित्रता में आगे बढ़ाएँ|

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. मानव सुरक्षा से आप क्या समझते है?
2. मानव सुरक्षा के विकास में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की भूमिका का विश्लेषण कीजिये?
3. जन सुरक्षा बढ़ाने के विभिन्न उपायों का मूल्यांकन करें?

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लॉयड एक्सवर्थी, कनाडा एंड ह्यूमन सिक्योरिटीः दि नीड फॉर लीडरशिप, अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, वॉल्यूम LII, 1997
2. बॉल्विन, डेविक ए.,दि कॉन्सेप्ट ऑफ सिक्योरिटी' रिन्यू ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, वॉल्यूम 23, 1997
3. बॉअर, लीन एंड एड कॉक, डेवलेपमेट एंड ह्यूमन सिक्योरिटी'' थर्ड क्वाटर्ली, वॉल्यूम 15, न. 3, 1914
4. बूजन, बैरी, ओले वीवर एंड जैप डी वायल्ड, सिक्योरिटीः ए न्यू फ्रेमवर्क ऑफ एनालिसिस, बॉल्डर लीनर रेनर, 1998

इकाई – 9

शिक्षा व्यवस्था की पुनर्संरचना और गाँधी

इकाई रूपरेखा

9.0 उद्देष्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 शिक्षा का आशय

9.3 शिक्षा का उद्देश्य

9.4 भारत में प्रचलित शिक्षा-प्रणालियों का अध्ययन

9.5 गाँधी की नयी तालीम

9.6 स्व शिक्षा के आदर्श

9.7 नयी तालीम के उद्देश्य एवं सिद्धान्त

9.8 नयी तालीम का पाठ्यक्रम

9.9 शिक्षक और विद्यार्थी

9.10 राष्ट्रीय शिक्षा

9.11 राष्ट्र का पुर्नगठन

9.12 नयी तालीम के विविध आयाम

9.12.1 तालीम और सत्याग्रह

9.12.2 मूल्य और तालीम

9.12.3 हस्तकला और तालीम

9.12.4 कृषि तालीम

9.13 सारांश

9.14 अभ्यास प्रश्न

9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप समझ सकेंगे

- शिक्षा पद्धति का आशय और उद्देश्य
- भरात में प्रचलित ऐतिहासिक शिक्षा-पद्धतियाँ
- गाँधी की नयी तालीम की योजना
- स्व शिक्षा के आदर्श
- नयी तालीम के विभिन्न आयाम

9.1 प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्ति की छिपी हुयी क्षमताओं को उद्दीप्त करने, प्रकट करने की प्रक्रिया का नाम हे| शिक्षा वह है जो व्यक्ति के शरीरिक, बोद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास द्वारा सर्वांगीण विकास करती हो| शिक्षा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक ज्ञान के संचरण का माध्यम रही है| इसलिए व्यक्तिके सामाजिक तथा वैयक्तिक स्वरूप को शिक्षा के द्वाराप्रकट किया जा सकता है| लेकिन वर्तमान में शिक्षा का तेजी से व्यवसायीकरण, निजीकरण हुआ है| शिक्षा सामाजिक सेवा का माध्य मरही है, इसमें मात्रात्मक विस्तारऔर गुणात्मक सुधार हों, शिक्षा महज नौकरी का जरिया या कम्पनियों और सरकारों के लिए लिपिक पैदा करने का तरीका न बनकर सर्जनात्मक सामाजिक सोच का सामथ्र्य उत्पन्न करने का माध्यम भी बने| आज नयी सदी में भूमण्डलीकरण, उदारीकरण के चलते दुनिया की भौगोलिक, सांस्कृतिक सीमाएं सिमट गयी हैं| इसके परिणामस्वरूप देशों में मध्य दुनियांकम और हिंसा में बढ़ोत्तरी हुयी है| इसका प्रमुख कारण वर्तमान शिक्षा में नीतिशास्त्र और मूल्यों का अभाव का पाया जाना हे| आज के शिक्षा केन्द्रों का कार्य अच्छे नागरिक तैयार करना ना होकर लाभ कमाना हो गया है| शिक्षा चिररित्रक व सामाजिक विकास का साधन है| जो, व्यक्ति को स्व जीवन दर्शन, आदर्शों, तक्ष्यों से ही नही ंजोउत्रती अपितु उसको समाज म से भी जोड़ती है| गाँधी का मानना था कि

समाज में व्याप्त गरीबी, बेराजगारी, असमानता, आर्थिक शोषण , दिशाहीनता, किताबी ज्ञान, सांस्कृतिक मूल्यों, एवम् मातृभाषा की उपेक्षा जैसी समस्याओं का हल शैक्षणिक व्यवस्था में ही ढूँढ़ना होगा| इसलिएउन्होंने वर्गहीन, शोषणमुक्त अहिंसक समाज-रचना के उच्च आदर्श की प्राप्ति के साधन के रूप में नयी तालीम का विचार अक्टूबर, 1937 में देश के समक्ष रखा था| इसका नाम उनहोंने 'नयी तालीम' रखा| यह शिक्षा-योजना गाँधी के जीवन के प्रयोगों एवं अनुभवों की शिक्षासे प्रारम्भ करके, फीनिक्स आश्रम, टॉलस्टॉय आश्रम कोचरब आश्रम, चमपारण में नील सतयाग्रह के समय, साबरमति आश्रम, गुजरात विद्यापीठ तथा सेवाग्राम आश्रम में शिक्षा से सम्बन्धित कई प्रकार के प्रयोग किये और इन सभी प्रयोगों से प्राप्त अनुभवों के आधार पर 'नयी तालीम' की योजना प्रस्तुत की थी|

9.2 शिक्षा का आशय

शिक्षा समाजीकरण, परिवर्तन और नवीनता लाने की प्रक्रिया है| शिक्षा व्यक्ति में ऐसी समझ और सामर्थ्य पैदा करती है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी क्षमताओं, योग्यताओं का भली प्रकार से उपयोग करके स्वयं तथा समाज का उत्थान कर सकता है| इस तरह शिक्षा व्यक्ति की नैसर्गिक चेष्टा और उसकी विकासशील प्रवृत्ति है| शिक्षा कोई वस्तु नहीं, जो किसी पदार्थ यी बीज के रूप में प्रदान की जाए| शिक्षा जड़, स्थिर न होकर चेतनशील, प्रवाहमान, गतिशील है जिसे मानव स्वयं प्राप्त करता है|

गाँधी का मानना है कि शिक्षा का आशय पुरानी या वर्तमान पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है| सच्ची शिक्षा वातावरण में है| आस-पास की परिस्थिति में है और साथ संगति में, जिससे जाने-अनजाने हम आदतें ग्रहण करते हैं खास कर अपने काम के अनुभव से|

शिक्षा अर्थ स्पष्ट करते हुए गाँधी ने कहा है कि बच्चे या व्यक्ति की तमाम शारीरिक, मानसिक और अत्मिक शक्तियों का सर्वोत्तम विकास है| शिक्ष का अर्थ ककहरा सीख कर बैठ जाना नहीं है बल्कि यह जानना है कि अधिकारों के साथ हमारे उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य क्या हैं| यदि प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी, सतयनिष्ठा से अपने कर्त्तव्यों का पालन करे तो सबको अधिकार स्वतः ही मिल जायेंगे|

इस प्रकार शिक्षा वह प्रकाश है तो व्यक्ति के मस्तिष्क पर छाए अज्ञान रूपी अंधकार को मिटा कर ज्ञान की ज्योति जगाता है| इस प्रकाश से व्यक्तियों में कर्त्तव्यपरायणता, एकता तथा सर्वोदय भावना पैदा होगी|

9.3 शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा मानव निर्माण्ध की कला तका विज्ञान है अतः शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव का निर्माण तथा व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है| शिक्षा व्यक्ति की उन क्षमताओं को उजागर और प्रेरित करती है जो व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई या अन्तर्निहित है, शिक्षा क्षमताओं का निर्माण नहीं करती|

शिक्षा के तीन शाश्वत उद्देश्य इस प्रकार हैं -

1. मनुष्य का स्वयं को और जगत को जानने का प्रयास करते रहना और स्वयं को शिक्षा जगत से प्रभावशाली ढ़ंग से जोड़ना;

2. अतीत और भविष्य के बीच पुल का निर्माण, अर्थात् अतीत के एकत्रित परिणामों का विकासमान पीढ़ी को सम्प्रेषण करना ताकि वह सांस्कृतिक विरासत को आगे ले जा सके और भविष्य का निर्माण कर सकें;

3. जहाँ तक सम्भव हो, मानव प्रगति की प्रक्रिष्या को तेज करना|

इसमें सभी लोगों के प्रति आदर भाव उनकी संस्कृति सभ्यता, मूल्यों और जीवन शैली के प्रति सम्मान निहित हैं| सन् 1971 में यूनेस्कों की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा की प्रमुख आवश्यकता है 'जानना, हासिल करना, बनना'| यहाँ 'होना' का अर्थ 'व्यक्तित्व और इसके विकास' से है| सरल शब्दों में कहा जाए तो प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना, लिखना, सीखना है, माध्यमिक स्तर पर चरित्र-निर्माण है, उच्च माध्यमिक स्तर पर समाज को समझना है और महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर पर दक्षता प्राप्त करना है|

9.4 भारत में प्रचलित शिक्षा-प्रणालियों का अध्ययन

भारत की शैक्षणिक व्यवस्था को समझने के लिए इसे दो भागों में बाँटना होगा| एक अतीत में शिक्षा और दूसरा ब्रिटिश कालीन शिक्षा| वैदिक काल से विद्यालय आवासीय होते थे जहाँ लगभग 7 वर्ष की आयु में बालक को गुरू को सौंप दिया जाता था| जहाँ विद्यार्थी को उपयोगितात्मक ज्ञान न देकर आदर्शात्मक ज्ञाना दिया जाता था| शिक्षा पूर्ण और विस्तृत थी| जहाँ शारीरिक शिक्षा युद्ध की ट्रेनिंग, धनुर्विद्या, घुड़सवारी, रथ हाँकना आदि सीखाया जाता था| विद्यालीय शिक्षा स्वर विज्ञान से शुरू होकर व्याकरण, तर्क शास्त्र, हस्तकौशल, अनुशासन पर आकर समाप्त होती थी| इस प्रकार भाषा, तर्कशास्त्र, शिल्प, अनुशासन और चरित्र-निर्माण शिक्षा के मूल आधार होते थे|

वैदिक काल के उपरान्त ब्राह्मण युग की शुरूआत होती है| इस युग में वैदिक साहित्य तथा वेदों का ज्ञान प्रमुख शैक्षणिक कार्य होता था| शूद्रों और महिलाओं को शिक्षा-ग्रहण करने से वंचित रखा गया| शिक्षा योग्यता एवं रूचि की अपेक्षा जातिगत आधार पर दी जाती थी|

मुस्लिम युग के आगमन के साथ शिक्षा के उद्देश्य में भी बदलाव दिखाई दिये| इसमें लिखने-पढ़ने की शिक्षा पर जोर दिया गया और फारसी शिक्षा का माध्यम बना| स्कूलों के पास अपने भवनों का अभाव होने के कारण अनेक स्थानों पर तो स्कूल मंदिरों, मस्जिदों या गाँव के खुले चबूतरों पर चलाये जाते थे| मुस्लिम छात्रों के लिए पृथक से ये मदरसे में मौलवियें द्वारा और हिन्दू छात्रों के लिए ब्राह्मणों द्वारा चलाए जाते थे| शारीरिक शिक्षा, विचार शक्ति के विकास या किसी शिल्प की शिक्षा पर बल नहीं दिया जाता था| पवित्रता, सरलता, समानता छात्र जीवन के आदर्श नहीं थे|

भारत में उपनिवेशकालीन शिक्षा प्रणाली पुस्तक प्रवीण, बौद्धिक और साहित्यिक थी| इसमें प्रयोगों को समझाने की बजाय करने पर अधिक बल दिया जाता था| इस प्रणाली में व्यावहारिक कुशलता और सामाजिक निपुणता का अभाव होने के कारण विद्यार्थी अपने जीवन-कार्य के प्रति निष्क्रिय तथा काम चोर बन जाता है| इस शिक्षा का लक्ष्य भारत में अधिक से अधिक लिपिक पैदा करना था|

गाँधी जी जब से अफ्रीका से हिन्दुस्तान आये तभी से प्रचलित शिक्षा की खामियेां की ओर देश का ध्यान आकर्षित करते रहे थे| परन्तु सन् 1920 के असहयोग आन्दोलन के दरम्यान उन्होंने काले द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था की कटु आलोचना करते हुए कहा कि वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि शिक्षा पाने के बाद हम किसी नौकरी के योग्य हो जायें और यदि नौकरी मिल जाती है तो हम अपने को कुछ ऊँचा उठा हुआ मानने लगते हैं| पुश्तैनी कारीगरों के बच्चे पढ़कर धन्धे को उन्नत करने के बजाय उसे नीचा धन्धा मानकर छोड़ देते हैं और दफ्तर में क्लर्की में अपनी प्रतिष्ठा मानते हैं| माता-पिता भी इसी तरह सोचते हैं और हम लोग इस प्रकार कर्त्तव्य भ्रष्ट होकर गुलाम बनते जा रहे हैं| घर और स्कूल के वातावरण विरोधाभाषी हैं| पाठ्यपुस्तकों में जो पढ़ाया जाता है उसका व्यवहारिक जीवन से सम्बन्ध न होने के कारण माता-पिता भी उदासीन बने रहते हैं| अधिकांश अध्ययन केवल परीक्षा देने के उद्देश्य से किया गया कठिन श्रम ही होता है और परीक्ष देने के बाद हम उसे यथासंभव जल्दी से जल्दी भूल जाने का प्रयतन करते हैं| इसके अलावा विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने के कारण हम अपनी भाषाओं को भिखारी बना रहे हैं| गाँधी का स्पष्ट मानना था कि जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती हऔर जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाये जा सकते, तब तक रष्ट्र को नया ज्ञाननहीं मिल सकेगा| अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से बच्चों के दिमाग में अधिक से अधिक सूचनाएँ व जानकारियाँ ठूँसने का ही कार्य किया जा रहा है| जिससे विद्यार्थी अधिकतर निकम्में, कमजोर, निरूत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन रहे हैं|

गाँधीजी के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत पढ़ाये जाने वाले विषयों का देश की समस्याओं-कृषि, खेलकूद, व्यायाम, इतिहास, भूगोल, सफाई व्यवस्था से सम्बन्धनहीं होता है| आज भी स्कूल और महाविद्यालय सरकार के लिए क्लर्क और सरकारी कर्मचारी गढ़लने के कारखाने हैं| यदि नौकरी व डिग्री का मेाह हम अपने मन से निकाल बाहर करें तो एक ही झटके में वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था निरूद्देश्य, निष्फल व बेकार सिद्ध हो जाती है| वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का विदेशी संस्कृति पर आधारित होने के कारण इसका भारतीय सभ्यता, मूल्यों, आदर्शों तथा यहाँ तक कि परिस्थिति और आवश्यकताओं से बहुत कम सम्बन्ध है| यह हृदय और हाथ के विकास की उपेक्षा करती है ओर केवल मस्तिष्क के विकास पर ही जोर देती हैइस कारण बच्चे का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है|

गाँधी का मानना था कि जब तक देश में चरित्रवान शिक्षकों द्वारा मातृभाषा में स्वावलम्बन, शिक्षा और धर्म संगमधारित शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक बच्चों और जवानों के मन पर पड़ने वाला बोझ दूर नहीं हेागा| सच्ची शिक्षा

अक्षरज्ञान में नहीं बल्कि शील में हाथ और पैरों के उद्योग में और शरीरिक श्रम में है| बुद्धि का सच्चा विकास हाथ, पाँव, कान, आँख आदि अवयवों के सदुपयोग से ही हो सकता है, पुस्तकों के रटने से नहीं|

9.5 गाँधी की नयी तालीम

यद्यपि गाँधी अंग्रेजरो द्वारा प्रदत्त शिक्षा व्यवस्था को चरित्र-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण तथा भारतीय वातावरण के अनूकूल नहीं मानते थे| उन्होंने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर नयी शिक्षा प्रणाली का विचार रखा जो मानव के शारीरिक, बौद्धिक तार्किक और आध्यात्मिक विकास को पूर्ण करती हो| इसी नवाचार को 'नयी तालीम' कहा गया है|

नयी तालीम में गाँधी ने प्रारम्भिक और माध्यमिक दोनों स्तरों की शिक्षा को शामिल किया| इस शिक्षा प्रणाली तथा पाठ्यक्रम को इस रूप में निर्धारित एवं संचालित किया जायेगा जिससे शिक्षा विद्यार्थियों के हृदय, बुद्धि और शरीर तीनों के सम्मिलित विकास का जरिया बन सके|

नयी तालीम की गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित रूपरेखा के प्रमुख बिन्दुओं को अग्रांकित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. शिक्षा की वर्तमान पद्धति किसी भी तरह देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती| कयेांकि इसमें अक्षर ज्ञान कराने परजोर होता है इतिहास, भूगोल और कताई कला पर नहीं| इस शिक्षा का ग्रामीण वातावरण से भी कोई सरोकार नहीं है|

2. प्राथमिक शिक्षा कापाठ्यक्रम सात साल का होगा जिसमें जोर अंग्रेजी भाषा पर न देकर ठोस घन्धे की शिक्षा पर दिया जायेगा|

3. शिक्षा में बालक और बालिकाओं के बीच कोई भेद नहीं किया जाना चाहिये और माध्यत्मिक स्तर तक की यह नयी तालीम अनिवार्य कर दी जानी चाहिए|

4. माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर और स्वपोषी होनी चाहिए| राज्य इन विद्यालयों में बनाई गई चीजों को स्वयं निर्धारित दरेां पर खरीदकर शिक्षण संस्थाओं की आत्मनिर्भरता में सहायता दे सकता है|

5. विद्यालयों में विद्यार्थियों को सम्प्रर्दायक प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए, किन्तु उन्हें नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उनमें मानव-मात्र के प्रति आदर, सम्मान और प्रेम का भाव जागृत हो सकें|

6. इस शिक्षा योजना में हस्तशिल्पियों का समाज मे सम्मान बढ़ेगा तथा प्रतिष्ठा स्थापित होगी|

गाँधी जी का मानना था कि मेरी नयी ताली की योजना व्यक्ति और समाज के विकास का माध्यम बनेगी| यह शिक्षा नीति एक शांत सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से गाँव और शहर के मध्य सम्बन्धों को एक स्वस्थ और नैतिक आधार प्रदान करेगी और एक न्यायानिष्ठ सामाजिक व्यवस्था की नीवं डालेगी|

उच्च शिक्षा गाँधी की दृष्टि में सच्ची शिक्षा तो जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिष्या का नाम है| इस दृष्टि से शिक्षा में औपचारिक स्कूलों, महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों का विशेष महत्व नहीं है| इसका मतलब शिक्षा प्राप्ति के साधन के रूप में इन संस्थाओं के महत्व को नकारना नही है| नयी तालीम के माध्यम से उन्होंने विद्यालयों को, विद्यार्थियों और ग्रामीण जीवन की आत्मनिर्भरता का माध्यम बनाने का प्रयास किया|

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी ने निम्न सुझाव दिये -

1. उच्च शिक्षा पर होने वाले खर्च का भार राज्य द्वारा वहन नहीं किया जाना चाहिए|
2. गाँधी निजी क्षेत्र को उच्च शिक्षा का भार सौंपना चाहते हैं| आपने प्राविधिक, व्यावसायिक एवम् वाणिजय सम्बन्धी महाविद्यालयों को व्यापारी एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानो द्वारा चलाये जाने की जिम्मेदारी सुझाई है|
3. वे कृषि, कला एवं आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों को आत्म-निर्भर रखने अथवा स्वैच्छिक चन्दे से चलाने का सुझाव दिया है|
4. वे राजकीय विश्वविद्यालयों को सिर्फ परीक्षा लेने तक सीमित रखना चाहते हैं और उन्हें परीक्षा-शुल्क द्वारा आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं|
5. उच्च शिक्षा प्राप्त करने का माध्यम अंग्रेजी न होकर अपनी मातृभाषा अथवा प्रान्तीय मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए|
6. मेडिकल शिक्षा से जुड़े महाविद्यालयों को चुने हुए अस्पतालों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए| धनाड्य वर्ग ही इन स्वास्थ्य केन्द्रों को अधिक उपयोग करते हैं इसलिए इनका व्यय भी स्वेच्छापूर्णक वे ही वहन करेंगे|

उच्च शिक्षा में क्रान्तिकारी बदलाव करते हुए गाँधी ने कहा है कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ| मेरी योजना में तो अधिक से अधिक पुस्तकालय प्रयोगशालायें और शोध संस्थान रहेंगे| देश के लिए डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर पैदा करेंगे जो अंग्रेजी भाषा में वार्तालाप नहीं करेंगे अपनी भाषा में वार्तालाप करेंगे जिससे आस-पास के ग्रामीण जन उनकी बातचीत को समझ सकेंगे|

9.6 स्व शिक्षा के आदर्श

गाँधी का मानना है कि नीयी तालीम देश की विद्यमान परिस्थितियों का परिणाम तथा सामज में व्याप्त बुराईयों को खत्म करने में सक्षम हैं| यह नीयी शिक्षा निम्न आदर्शों पर कार्य रकेगी -

1. समस्त आयु वर्ग के स्त्री-पुरूषों को प्रवेश दिया जायेगा| यह जीवन पर जारी रहेगी - गर्भाधान से अन्तिम संस्कार तक|
2. सामाजिक अथवा धार्मिक शिक्षा की बजाय विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा दी जायेगी|
3. शिक्षा का माध्यम मात्भाषा हिन्दी होगा|
4. शिक्षा का आधार कर्मनिष्ठ तथा श्रमनिष्ठ होगा|
5. सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी होगीं
7. यह शिक्षा छुआछूत तथा साम्प्रदायिक विद्वेष और सन्देह से मुक्त होगी|

9.7 नयी तालीम के उद्देश्य एवं सिद्धान्त

गाँधी के अनुसार नयी तालीम का उद्देश्य समग्र व्यक्तित्व का विकास करना अर्थात् बच्चे के अन्त में छिपे सभी गुणों को सम1चित व सन्तुलित विकास जिससे वह श्रेष्ठ नागरिक के सभी अनिवार्य गुणों यथा निस्वार्थ भावना, समाज-सेवा, कर्त्तव्यपरायणता, सत्य, अहिंसा, श्रमनिष्ठा, स्वावलम्बन आदि से सम्पन्न हो सके| नयी तालीम नया समाज बनाने का साधन है|

इस प्रकार शिक्षा का लक्ष्य है व्यक्ति के चरित्र का निर्माण| उसमें साहस, शक्ति, गुणों का इस प्रकार विकास करना है कि वह महान उद्देश्यों के लिए कार्य करते हुए अपने-आप को भुला दे| साक्षरता या अकादमिक शिख इस उच्चतर लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मात्र है| साक्षरता शिक्षा का उद्दश्य नहीं है| चरित्र निमा्रण साक्षरता से पूर्णतया अलग या स्वतंत्र है|

प्रमुख सिद्धान्त -

नयी तालीम के पाँ प्रमुख सिद्धान्त हैं| वर्धा सम्मेलन में देश के जाने-माने नब्बे शिक्षाशास्त्रियों के गहन विचा-विमर्श के पश्चात् इन्हें स्वीकार किया गया है| इन सिद्धान्तों पर ही गाँधीवादी तालीम की आधारशिला अवस्थित है| ये पाँच सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं -

1. सात वर्षों की निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा
2. मातृभाषा द्वारा शिक्षा
3. उद्योग के आधार पर शिक्षा
4. सावयवी शिक्षा और
5. स्वावलम्बी शिक्षा|

उपर्युक्त सिद्धान्तों का सविस्तार विवेचन निम्नानुसार है -

1. सात वर्षों की निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा

गाँधी का मानना था कि भारत सात लाख गाँवों में निवास करता है जहाँ लोगों कि आर्थिक स्थिति बहुत खराब (दयनीय) है| गरीबी के चलते महंगी शिक्षा ग्रहण करना संभव नहीं है इसलिए उन्होंने निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पर जोर दिया| उन्होंने शिक्षा पाते हुए विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्य करने की सीख भी दी जिससे वे विद्यालय के खर्च हेतु आर्थिक राशि भी जुटा सकें|

2. मातृभाषा द्वारा शिक्षा

गाँधी ने कहा था कि शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए| मात्भाषा को बच्चा जन्म से ही, वातावरण से सीख लेता है| जन्म से सीचाने के कारण बच्चा अपने विचारों का आदान-प्रदान भी आसानी से कर सकता है| विदेशी भाषा हमें अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा अलंकार से विहिन कर देती है| अतः मानव शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए|

3. उद्योग के आधार पर शिक्षा

देश को गरीबी ये मुक्त करने तथा लोगों के आलस्य को दूर कर कर्मशील बनाने के लिए देश मेंऔद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता हे| गाँधी ने उद्योग को शिक्षा का माध्यम माना है| किसी न किसी दस्तकारी को केन्द्र में रखकर उसके सम्बन्ध में तमाम जानकारी - जैसे गणित, इतिहास, भूगोलर्, अर्थ शास्त्र आदि से सम्बन्धित ज्ञान देना ही नयी तालीम है| गाँधी मानते थे कि हस्तकर्म से मस्तिष्क और हृदय का सच्चा विकास हो सकता हे| किन्तु केवल उद्योग सीखने तथा उसके सम्बन्ध में तमाम जानकारी कर लेने से ही जीवन की पूरी शिक्षा नहीं हो पाती है| बालक की वही शिक्षा पूर्ण मानी जायेगी जो उद्योग-केन्द्रित, समाज-केन्द्रित तथा प्रकति केन्द्रित हो| इस प्रकार शिक्षा के माध्यम उद्योग, सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण हैं|

4. सावयवी शिक्षा

समवाय को भ्रमवश ऐसा अनुबन्ध माना जाता है जो दो पृथक-पृथक अपने अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए एक दूसरे से अनुबन्धित हो सकते हैं| किन्तु समवाय अनुबन्ध से भिन्न है| मनुष्य की मुख्यतः पांच मौलिक आवश्यकताएँ - आहार, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा| इन्हीं आवश्यकताओं की पूत्रि के लिए उसे तरह-तरह के यत्न, श्रम और उद्यम आदि करने पड़ते हैं| किसी उद्देश्यपूर्ण क्रियाशील की योजना बनाने, कार्यान्वयन तथा प्रगति के अवलोकन में ज्ञान की जिज्ञासा एवं भूख अपने आप से जागृत होती है, उसी जिज्ञासा एवं भूख की तृप्ति के लिए जो ज्ञान पाया जाता है उसे 'समन्वायी ज्ञान' कहा जाता है|

5. स्वावलम्बी शिक्षा

स्वावलम्बी शिक्षा का अर्थ है बच्चे जो कुछ भी उत्पादन करें उसकी कीमत से शिक्षक का वेतन आना चाहिए| नयी तालीम का लक्ष्य ही स्वावलम्बी तथा उनसे बने स्वालम्बी समाज पैदा करना है| समाज के लोग आपस में मिल-जुलकर अपने भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करें|

9.8 नयी तालीम का पाठ्यक्रम

महात्मा गाँधी ने एक ऐसी नयी तालीम की योजना का पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जो विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का मॉडल है| नयी तालीम के आठ वर्ष के पाठ्यक्रम में वस्त्रोपादन, कष्षि, काष्ठकला, फलोत्पादन, साग, सब्जी, चमड़े के काम तथा अन्य उपयोगी और मातृभाषा, गणित, सामान्य विज्ञान, समाजशास्त्र कला (चित्र, संगीत,नष्त्य) सामान्य भाषा आदि विषय रखे गए है|

ये शिक्षा योजना हिन्दुस्तान की प्रकष्ति पूर्णरूपेण अनुकूल है जो गरीबी और शोषण तथा बेकारी से मुक्ति दिलाने वाली बुनियादी शिक्षा में बालक-बालकाओं के लिए पाँचवी कक्षा तक संमान पाठ्यक्रम था| बालिकाएँ छठीं और सातवीं कक्षाओं में आधारभूत शिक्षा के स्थान पर गष्ह-विज्ञान में उच्च पाठ्य विषय ले सकती है| शिक्षा का माध्यम मात्भाषा है, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है|

9.9 शिक्षक और विद्यार्थी

इस योजना को सफल बनाने के लिए सबसे जरूरी शर्त यही है कि शिक्षकों को उचित तालीम दी जाय| जब सम्पूर्ण शिक्षण-प्रणाली जड़मूल से बदलने की बात सोची जा रही है, तब योग्य, प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता ओर बढ़ जाती है| शिक्षकों को केवल पुस्तकीय विषय नही अपितु दस्तकारियाँ भी सीखनी है| शिक्षक को अपने आस-पास के सामाजिक जीवन की प्रवुत्तियों में दिलचस्पी रखनी होगी ताकि स्कूल और समाज के बीच के सम्बन्धों को अच्छी तरह से समझ सके| शिक्षकों की तालीम का पाठ्यक्रम तीन साल का है| इसके अन्तर्गत निम्न विषय हैः- (1) कपास

की खेती, धुनाई,कताई करना (2) चरखा तथा अन्य दस्तकारी औजार की बनावट का ज्ञान (3) देहाती उद्योग से सम्बन्धित अर्थशास्त्र का ज्ञान अथवा बढ़ईगिरी का ज्ञान|

इस बुनियादी शिक्षा पद्धति में बालक का प्रातः काल की प्रार्थना से रात्रि तक का समस्त कार्य शिक्षकों के सानिध्य में ही सम्पन्न होते है| इसलिए शिक्षको का भी व्यक्त, भाषा, विषय ज्ञान, साहित्यिक समझ बाल मनोविज्ञान तथा प्रशिक्षण उच्च कोटि तथा ग्राम प्रधान, उद्योगप्रदान होना चाहिए| देश में ऐसे कार्यकुशल, बुद्धिमान, सुशिक्षित, कारीगर, शिक्षक, तैयार हो, जिनके दि लमे समाज-सेवा की लगन हो और जो इस नयी शिक्षा योजना की तह में बैठे हुए आध्यात्मिक और सामाजिक आदर्श को हमारे राष्ट्र के बच्चों के पास | सके|

शिक्षकों की तालीम का पाठ्यक्रम तीन साल का है| इसके अन्तर्गत निम्न विषय हैः- (1) कपास की खेती, धुनाई, कताई करना (2) चरखा तथा अन्य दस्तकारी औजार की बनावट का ज्ञान (3) देहाती उद्योग से सम्बन्धित अर्थशास्त्र का ज्ञान अथवा बढ़ाईगिरी का ज्ञान|

इस बुनियादी शिक्षा पद्धति में बालक का प्रातःकाल की प्रार्थना से रात्रि तक का समस्त कार्य शिक्षकों के सानिध्य में ही सम्पन्न होते है| इसलिए शिक्षकों का भी व्यक्ति, भाषा , विषय ज्ञान, साहित्यिक समझ, बाल मनोविज्ञान तथा प्रशिक्षण उच्च कोटि तथा ग्राम प्रधान, उद्योगप्रदान होना चाहिए| देश में ऐसे कार्यकुशल, बुद्धिमान, सुशिक्षित, कारीगर, शिक्षक तैयार हों, जिनके दिल में समाज-सेवा की गलन हो और जो इस नयी शिक्षा योजना की तह में बैठे हुए आध्यात्मिक और सामाजिक आदर्श को हमारे राष्ट्र के बच्चों के पास | सके|

9.10 राष्ट्रीय शिक्षा

गाँधी शिक्षा में सुधार की स्वराज की कुंजी मानते है| उनका स्पष्ट मनना था कि शुद्ध-शिक्षा के अभाव में राजनैतिक स्वराज की प्राप्ति के प्रयत्न बेकार है| आज विद्यालयों में जो शिक्षा दी जा रही हैं उसका माता-पिता, नौकर चाकर अर्थात वातावरण से कोई सरोकार नहीं है क्योंकि इसका माध्यम विदेशी भाषा अंग्रेजी से है| मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है| जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह स्वदेश भक्त कहलाने लायक नहीं है|

इसलिए शुद्ध राष्ट्रीय शिक्षा हर प्रान्त की भाषा में दी जानी चाहिए| शिक्षक ऊँचे दर्जे के होने चाहिए| स्कूल ऐसे जगह होना चाहिए, जहाँ विद्यार्थी को साफ हवा-पानी, शान्ति मिले और मकान तथा आसपास की जमीन से स्वास्थय का सबक मिले| शिक्षण-पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जिससे भारत के मुख्य धन्धों और खास-खास धर्मों की जानकारी मिल सकें|

9.11 राष्ट्र का पुनर्गठन

नयी तालीम का दर्शन गाँधी के जीवन का अन्तिम तथा मौलिक कार्य था| इस तालीम के माध्यम से वे भारत की शैक्षणिक तस्वरी बदलना चाहते थे| उनका मानना था कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मूल्यरहित, नीतिरहित कामचोर वर्ग बना रही| देश के लिए साक्षर लुहार, सुनार किसान, उद्योग प्रवीण कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है| नयी तालीम माता के गर्भादान से प्रारम्भ होकर जीवनपर्यन्त सीखने की प्रक्रिया है| यदि माता कर्मशील, श्रमशील व आत्मसंयमी है तो यह गुण अगली पीढ़ी में स्वतः ही चले जायेंगे| इस तरह प्रशिक्षित, गुणी, कार्यशील बालक को उनलप के मोटे-मोटे गद्दे पर बैठने से खुशी न मिलकर घर के पर्श की सफाई से मिलेंगी| बालक के कार्य करने की आदत से देश की बेकारी और गरीबी दूर होगी| इस प्रकार नयी तालीम में गाँव और कुटीर उद्योग एक ही सिक्के के दो पहलू है|

9.12 नयी तालीम के विविध आयाम

गाँधी की शिक्षा योजना वैयक्तिक विकास अथवा बालक की रूचियों एवं प्रवष्तियों के अनुकुल कार्य देकर उनकी शक्तियों का विकास करती है| इसके अन्तर्गत श्रम के आयोजन एवं उद्योग की प्रधानता द्वारा वर्ग-भेद की गहरी खाई को पाटने की व्यवस्था की गई है| इस शिक्षा योजना में स्वावलम्बन, बालक-बालिकाओं की अभिरूचियों को प्रोत्साहन, पारस्परिक विचार विनिमय से बालकों का उन्नयन, वैदिक कालीन संस्कष्ति का संयोजन शामिल है| गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्य,अहिंसा, न्याय एवं स्वाधीनता के सिद्धान्त मानव उत्थान का वातावरण सष्जन करते है|

9.12.1 तालीम और सत्याग्रह -

गाँधीजी अपनी शिक्षा-प्रणाली में सत्य, सहयोग, प्रेम, अहिंसा तथा कर्म, शील पर अधिक जोर देते है| विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो सत्याग्रह के द्वारा हिंसा,घृणा, आंतक जैसी बुराइयों से लड़कर विजय प्राप्त कर सके| सत्याग्रही न्याय के रास्ते से उगमगाता नहीं बल्कि वह सदा शान्तिपथ का अनुसरण करता है| सत्याग्रह शत्रु के हृदय परिवर्तन का माध्यम है|

9.12.2 मूल्य और तालीम

गाँधी जी ने अंग्रेजी माध्यम की पुस्तकों से दी जाने वाली शिक्षा की बजाय मूल्यधारित ग्रामीण वातावरण से स्वतः सीखने वाली शिक्षा को अधिक महŸव दिया है| उनका मानना था कि शिक्षा वहीं है जो चित्त की शुद्धि,मन व इंन्द्रियों को वश मे करे, मानव में निर्भयता और स्वावलम्बन पैदा करे, जीवन निर्वाह का मार्ग बताये, आजाद रहने का हौसला पैदा करे तथा तार्किक कुशलता और मातृभाषा को महत्व दे, वही शिक्षा उपयोगी है|

9.12.3 हस्तकला और तालीम

गाँधी ने अपनी तालीम की योजना में हस्तकला की प्राथमिकता दी| उनका मनना था कि बौद्धिक प्रशिक्षित मस्तिष्क और हृदय सभी संघर्षों में विजयी हो सकता है|जब मानसिक तथा,शारीरिक क्षमताओं का अधिकतम उपयोग हो जो लोग बौद्धिक क्रिया में विश्वास तथा अपने हाथों को प्रशिक्षित नहीं करते, उनके जीवन में साम्यता का अभाव होता है उनकी क्षमताएँ निश्चित अविकसीत होती है| अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पढ़ा लिखा इंजीनियर जब किसी भवन का निमार्ण अपने पुस्तकीय ज्ञान से करवाता है तो परिणाम कुछ सालों में वह भवन जर्जर हो जाता है या गिर जाता है जबकि ग्रामीण वातावरण में बढ़ा-गढ़ा कारीगर अपने अनुभव से जिस भवन का निमार्ण करता है वह सदियों तक वैसे का वैसे ही रहता है| दुर्भाग्य से गाँव के कारीगरो के कार्य को नीचा समझकर नकार दिया जाता है| गाँधीजी इस वर्ताव के विरोधी थे|

9.12.4 खेती और तालीम

आज हिन्दुस्तान के गाँवों में जो फल, नारियल, सब्जियाँ, घी, दूध पैदा होता है उसे देहाती नहीं खाते है बल्कि शहरों में बेचते है| नयी तालीम के मदरसे में ग्रामीणों को सीखाया जायेगा कि जो तुम खेती में उगाते हो उसे पहले गाँव वाले खाये फिर शेष रहने पर उसका बेचान करे| गाँधी कहते है कि नयीतालीम का शिक्षक आला दर्जे का कारीगर होगा| देहात के सब बालक कुदरती तौर पर देहात में ही रहेंगें और शिक्षक से मिलकर अपनी जरूरतों का सब सामान पैदा करेंगे| इस प्रकार सबको मुफ्त शिक्षा मिलेगी|

9.12.5 हरिजनों की तालीम

ब्राह्मण कालीन शिक्षा प्रणाली में दलितों व महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने पर प्रतिबन्ध होने के कारण इन वर्गों का समाज से सम्पर्क नही के बराबर होने के कारण इनका संस्कारी करण शिक्षित नहीं हुआ था| इसी कारण गाँधी ने हरिजन बालकों के लिए विशेष पाठशालाओं की आवश्यकता पर जोर दिया| उनका मानना था कि इन बालकों को सर्वप्रथम, सफाई, बातचीत, खान-पान तथा आचार विचार की शिक्षा दी जानी चाहिए| ऐसा करते समय शिक्षकों को हरिजनभय हो जाना चाहिए| 1915 में गाँधी एक हरिजन बालक को कोचरब आश्रम ले गये थे| वहाँ उन्होंने उस बालक के बाल मुँडवाये, नहलाया, साडी धोती कुर्त्ता पहनाया घड़ी-भर में वह बालक उच्च घराने का संस्कारवान दिखायी देने लगा था| इस तरह शिक्षक हरिजन बालकों के पैर मुँह, दाँत, नाक, आंखे, बाल, नाखून साफ करवाये| शिक्षंक की तीक्षण दृष्टि माँ की भांति चारो तरफ घूमती रहना चाहिए|

9.12.6 स्त्रियों की तालीम

गाँधीजी के समक्ष हरिजनों की भांति स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न भी काफी जटिल था| उनका मानना था कि बालक और बालिकाओं का एक समान शिक्षा मिलनी चाहिए| स्त्रियों को सामान्य शिक्षा के रूप् में हिन्दी, भगवदगीता का

अर्थ समझाने लायक संस्कष्त, सम्मान्य अंकगणित, सम्मान्य लेखन कला, सामान्य संगीत और बच्चों की देखभाल करना, इतना ज्ञान तो होना ही चाहिए|

नारी शिक्षा की प्रगति के मार्ग में आने वाले अवरोधकों को सर्वप्रथम दूर करना होगा| नारियो की शिक्षा के लिए शहर और देहात में पर्याप्त विद्यालयों, प्रशिक्षणों की व्यवस्था की जाय| बालिकाओं को विद्यालयों की और उन्मुख करने के लिए छात्रवृति या स्कूटी योजना शुरू की जाय| पुरूषों को अपना संकीर्ण, भेद-भाव तथा कट्टरपन का भाव छोड़कर नारि शिक्षा मे सहयोग को आगे आना होगा तभी गाँधी की नयी तालीम का लक्ष्य पूर्ण होगा|

9.13 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते है कि गाँधी का शिक्षा सिद्धान्त मानव की छिपी प्रतिमाओं के बाहर निकालने का एक माध्यम है| वहीं दूसरी ओर बहुत विद्धान इस सिद्धान्त की कटुआलोचना भी करते है| जैसे, नयी तालीम क्राफ्ट केन्द्रित है बाल केन्द्रित नहीं| आधुनिक शिक्षा-प्रणाली बालक की रूचि, प्रवष्ति, अभिरूचि के अनुरूप शिक्षा देने पर जोर देती है|

यह शिक्षा भावनात्मक तथा धर्ममुक्त है| इस युग मे प्रत्येक विद्यालयों को आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी बनाना अव्यावहारिक जान पड़ता है| इस शिक्षा योजना मे नगरों की उपेक्षा करके गाँवों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है| इस शिक्षा योजना में प्राथमिक व माध्यात्मिक स्तर की योजना दी पर महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में किस तरह की शिक्षा दी जायेगी इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है| गाँधी ने ऐसी शिक्षा में मशीनों का विरोध किया है| जो आधुनिक समाज में आलोचना का विषय है, लेकिन फिर भी गाँधी द्वारा दिमागी श्रम के साथ-साथ शारीरिक श्रम की आवश्यकता तथा प्रतिष्ठा को प्रतिपादित किया गया है क्योंकि इसके अभाव में ही हमारे समाज में कोई शिल्पकारों को हीन दष्टि से देखा जाता है|

भारत जैसे देश में जहाँ सामाजिक ओर आर्थिक विषमताएँ व्याप्त है, वहाँ श्रम के प्रति आदर तथा अमीरी-गरीबी के भेड को पाटने के लिए यह बुनियादी शिक्षा प्रणाली एक अद्वितीय माध्यम है| इस शिक्षा योजना में बालक के सम्पूर्ण विकास के अनुरूप परिस्थितियों व वातावरण का पूरा ध्यान रखा जाता है| प्रत्येक विद्यालय अपना खर्च आप निकाल सकता है, परन्तु इस शर्त पर कि सरकार विद्यालय में अपनी बनाई हुई चीजों को खरीद ले ऐसी अवस्था में स्वावलम्बन को अव्यावहारिक नहीं कहां जा सकता|

इस तालीम में धार्मिकता के अभाव की बात भी उचित नहीं लगती है क्योंकि सत्य अहिंसा, और ज्ञान का इसमें भरपूर उल्लेख किया है| यह शिक्षा गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त चलने वाली होने के कारण इसे असंतुलित बताना गलत है|

भारत तथा विश्वस्तर पर घटित घटनाओं, तनावों शस्त्रीकरण, पर्यावरण असन्तुलन, भुमण्डलीकरण और नैतिक मूल्यों का हास, राजनीतिक अपराधीकरण, भ्रष्टाचार तथा शिक्षा का घटता स्तर महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों से छात्रों की दूरियाँ, शिक्षक, संस्थाओं की घटती गरिमा हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की उपदेयता का इम्तिहान है|

आजादी के बाद भारत ने तेजी से तरक्की की है परन्तु हमारी शिक्षा प्रणाली रोजगारन्मुख ग्रामीण परिवेश तथा हर शिक्षित नौजवान को काम देने में असफल रही है| ऐसे हालात में गाँधीवादी शिक्षा योजना ही सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का माध्यम हो सकती है| यही कारण है कि गाँधी ने दक्षिणी अफ्रीका में क्रूरता के खिलाफ लड़ने के लिए तथा बाद में भारत की आजादी के संघर्ष में शिक्षा को एक माध्यम बनाया था|अतः गाँधीवादी नयी तालीम उच्च नैतिक चेतना का प्रतीक है परन्तु इसे व्यावहारिक रूप् में लागू करना कठिन कार्य हे|

9.14 अभयास प्रश्न

1. नयी तालीम की अवधारणा तथा उद्देश्यों को बताइये|
2. भारत में प्रचलित ऐतिहासिक शिक्षा-पद्धतियों का विवेचन कीजिये|
3. नयी तालीम के प्रमुख सिद्धान्तों को समझाइये|
4. नयी तालीम के अनुसार शिक्षकों के दायित्व बातइये|
5. नयी तालीम की कमियों को समझाइयें
6. नयी तालीम के पाठ्यक्रम की व्यख्या कीजिये|

9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिवदत्त (स.), समग्र नयी तालीम, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नयी दिल्ली, 2006
2. सत्यमूर्ति, महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन, अरूण प्रकाशन, दिल्ली, 2004
3. एम.के सिंह, गाँधी ऑन एजुकेशन, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2008
4. सुधर्मा, जोशी, एजुकेशनल थोट ऑफ महात्मागाँधी, क्रीसेंट पब्लिशिंग कोरपोरेशन, नई दिल्ली, 2008
5. राम आहूजा, भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2000
6. कृष्ण कुमार, गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, ग्रन्थशिल्पी, दिल्ली 2006

इकाई – 10

भारत में भाषायी समस्या और गाँधी

इकाई रूपरेखा

10.0 उद्देष्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भाषा का विकास एवं गाँधी

10.3 राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में गाँधी के विचार

10.4 प्रान्तीय भाषा के सम्बन्ध में गाँधी के विचार

10.5 अंग्रेजी भाषा पर गाँधी के विचार

10.6 शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा एवं गाँधी

10.7 समीक्षा

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

भाषा जनमानस में संपर्क सूत्र का सशक्त माध्यम है जो लोगों के मध्य सामंजस्य स्थापित करती है| प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य भाषा के माध्यम से एक सूत्रता एवं राष्ट्रीय एकीकरण के बारे में बताना है| इस दृष्टि से गाँधी जी के भाषा सम्बन्धी विचारों का वर्णन निम्न बिन्दुओं के तहत किया गया है, ताकि विद्यार्थी:-

- भाषा के विकास से परिचित हो सके,

- राष्ट्रभाषा पर गाँधी के विचार का अध्ययन करें,
- गाँधी के विचारों का प्रान्तीय भाषा के सन्दर्भ में अध्ययन करें,
- अंग्रेजी भाषा पर गाँधी के विचारों से परिचित हो सकें,
- शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा का अध्ययन कर सकें|

10.1 प्रस्तावना

किसी भी देश की राष्ट्रीय भावना के विकास में एक सामान्य भाषा का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है| राष्ट्र में एक सामान्य भाषा का होना एक ऐसी निर्विवाद आवश्यकता है जिसके माध्यम से राष्ट्रीय जीवन के विविध क्रिया-कलाप संचालित होते हैं| भारत को एक राष्ट्र के रूप में सुदृढ़ करने के उद्देश्य से ही इसके उन्नायकों ने प्रारम्भ से ही इस बात पर बल दिया था कि 'राष्ट्रभाषा के अभाव में भारतीय राष्ट्रीयता सुदृढ़ नहीं हो सकती| यही कारण था कि बंगाल के केशव चन्द्र सेन और बंकिम चन्द्र चटर्जी तथा गुजरात के महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गाँधी एवं महाराष्ट्र के लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि गैर-हिन्दी भाषी प्रान्तों के मान्य नेताओं ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के लिए उपयुक्त बताया था|

10.2 भाषा का विकास एवं गाँधी

भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है- बोलना| अर्थात् जो बोली जाये वही भाषा है| हमारे मन के भाव अथवा विचार जिस साधन द्वारा व्यक्त अथवा सम्पादित होते हैं, उसे भाषा कहते हैं| भाषा के बारे में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएं की हैं, परन्तु उन सभी विद्वानों की परिभाषाओं को साररूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि ''भाषा विश्लेषण सापेक्ष, सार्थक, परम्परागत एवं यादृच्छिक ध्वनिमूलक व्यवस्था है, जिसके माध्यम से सामाजिक मनुष्य अपनी अनुभूतियों भावों तथा विचारों आदि को व्यक्त करता है| प्रारंभ से अन्त तक इसका लक्ष्य पारस्परिक बोध है|'' इस तरह भाषा नैसर्गिक है, उसकी प्राप्ति मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि है| परिवर्तनशीलता भाषा की एक प्रमुख विशेषता है| अतएव् इसके स्वरूप में निरंतर विकास होता रहता है और नये-नये रूप सामने आते रहते हैं|

भाषा के विविध रूप होते हैं, जिसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप 'राष्ट्रभाषा' है| प्रत्येक समुन्नत, स्वतंत्र, स्वाभिमानी देश की अपनी राष्ट्रभाषा होती है| अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस, जापान, चीन आदि सभी देशों में वहाँ की व्यापक बहुप्रचलित भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में व्यवहृत होती है| राष्ट्रभाषा की रक्षा सीमाओं की रक्षा से भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि वह विदेशी आक्रमण को रोकने में पर्वतों और नदियों से भी अधिक समर्थ है| अफ्रीका

के दसों देश विगत् शताब्दी में स्वतंत्र हुए| उनका सांस्कृतिक स्थिति प्रायः शून्य है| उनकी साहित्यिक या भाषिक परम्परा कोई लम्बी-चैड़ी नहीं है और कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी नहीं है| एक भाषा है, जिसके बल पर प्रत्येक जाति ने विदेशी आधिपत्य से मुक्ति पा ली है| हमारे देश के साथ ही श्रीलंका, बर्मा और पाकिस्तान में स्वतंत्र सत्ता की स्थापना हुई| इन सभी देशों की अपनी अपनी भाषा है जिसमें सबका कार्य-व्यवहार होता है| यह अन्यन्त खेद की बात है कि भारत में आज भी 'राष्ट्रभाषा' कमोबेश एक समस्या बनी हुई है|

किसी भी देश की राजभाषा भले ही कोई भी हो परन्तु उसकी राष्ट्रभाषा अपनी ही होनी चाहिए| अकबर के समय से लेकर लगभग तीन शताब्दियों तक भारत की राजभाषा फारसी रही थी और सन् 1833 के बाद निचले स्तर पर उर्दू और उच्च स्तर पर अंग्रेजी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त रहा| परन्तु हमेशा से सारे देश की सम्पर्क भाषा हिन्दी ही रही है| राजभाषा वह है जिसके माध्यम से सारे राजकार्य-सरकारी आदेश, कचेहरी, विज्ञापन आदि, सम्पन्न होते हैं जबकि राष्ट्रभाषा वह है कि जिसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र के नागरिक आपसी सम्पर्क, पत्र-व्यवहार अथवा सार्वदेशिक स्तर पर साहित्य का सृजन करते हैं|

भारत में युगों-युगों से मध्य देश की भाषा सारे देश की माध्यम बन जाती रही है| संस्कृत, पालि, प्राकृत और हिन्दी क्रमशः प्रत्येक युग में सम्पूर्ण देश में प्रयुक्त होती रही है| राजनीतिक दृष्टि से भारत की एकता भले ही हाल की चीज हो, किन्तु यहाँ पर सांस्कृतिक एकता सदा बनी रही है और एक भाषा का विस्तार भारतीय संस्कृति के विस्तार के साथ होता ही रहा है|

सैकड़ों वर्षों से जिस किसी को भी जन-सम्पर्क करने की आवश्यकता हुई चाहे वह शासक हो, धार्मिक या सामाजिक नेता हो, लेखक हो, उसने हिन्दी का उपयोग किया| हिन्दी के आदिकाल का सारा साहित्य हिन्दी प्रदेश के बाहर रचा गया| नाथ साहित्य पश्चिमी भारत में, सिद्ध साहित्य पूर्वी भारत में एवं आदि भक्ति साहित्य महाराष्ट्र और गुजरात में लिखा गया| युगों-युगों से तीर्थयात्रियों, व्यापारियों और कलाकारों सभी की भाषा हिन्दी ही रही है|

19वीं सदी में खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार-प्रसार जोरों से हुआ| ईसाई मिशनरियों ने तो पहले से ही अपने प्रचार का अखिल भारतीय माध्यम हिन्दी को बनाया था| उन्हें इस बात का सहज ही आभास था कि जनसाधारण तक पहुँचने की एकमात्र साधन हिन्दी ही है|

एच.टी. कोलबुरक ने 'एशियाटिक रिसर्च' में लिखा था- ''जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रान्त के लोग करते हैं, जो पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ दोनों की साधारण बोल-चाल की भाषा है और जिसको प्रत्येक गाँव में थोड़े बहुत लोग अवश्य समझ लेते हैं| उसी का यथार्थ नाम हिन्दी है|

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी एक लम्बे अवधि से सारे देश के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा रही है| कबीर और तुलसी की वाणी आज भी उन लोगों के कण्ठों से प्रतिध्वनित हो रही है जिनकी मातृभाषा

हिन्दी नहीं है| हिन्दी की इसी स्वीकार्यता के आधार पर हमारे राष्ट्रपिता गाँधी ने इसे भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का सदैव ही पुरजोर प्रयास किया| समय-समय पर गाँधी जी ने अपने विभिन्न लेखों, पत्रिकाओं व भाषणों में इस पर व्यापक प्रकाश डाला है|

भाषा सम्बन्धी अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए गाँधी अत्यन्त ही गहरे सोच और दूरदर्शिता का परिचय देते हैं| उन्होंने समय-समय पर भाषा सम्बन्धी विचार अपने द्वारा सम्पादित व प्रकाशित पत्रों में लिखे अपने लेखों एवं शिक्षा-परिषदों तथा अन्य सामाजिक सेवा-परिषदों की बैठकों में व्यक्त किया है| उनके भाषा सम्बन्धी विचारों को अलग अलग (राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में विचार, प्रान्तीय भाषा के सम्बन्ध में विचार, अंग्रेजी भाषा के सम्बन्ध में विचार) शीर्षकों के रूप में समझा जा सकता है|

10.3 राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचार

गाँधी जी का स्पष्ट मानना है कि 'अगर हमें एक राष्ट्र होने का अपना दावा सिद्ध करना है, तो हमारी अनेक बातें एक-सी होनी चाहिये|' भिन्न भिन्न धर्म और सम्प्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाली एक सामान्य संस्कृति है| इसी तरह हमें देशी और प्रान्तीय भाषाओं की जगह एक सामान्य भाषा की भी जरूरत है| उनका कहना है "यह भाषा कोई और नहीं बल्कि 'हिन्दुस्तानी' ही है, जो 'हिन्दी' और 'उर्दू' के मेल से बने और जिसमें न तो संस्कृत की और न ही फारसी या अरबी की ही भरमार हो| हमारे रास्ते की सबसे बड़ी रूकावट हमारी देशी भाषाओं की कई लिपियाँ हैं| अगर एक सामान्य लिपि अपनाना संभव हो तो एक सामान्य भाषा का हमारा जो स्वप्न है, उसे पूरा करने के मार्ग की एक बड़ी बाधा दूर हो जायेगी|"

राष्ट्रभाषा के बारे में विचार करते हुए गाँधी जी कुछ सामान्य लक्षणों को बताते हैं जो किसी भी राष्ट्रीय भाषा में अवश्य ही होनी चाहिए| वे निम्नवत् हैं-

(i) वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए|

(ii) उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज होना चाहिये|

(iii) उस भाषा को भारत के अधिकांश लोग बोलते हो|

(iv) वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो|

(v) उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहने वाली स्थिति पर जोर न दिया जाय|

गाँधी जी व्यावहारिक आधार पर कहते हैं कि मुझे इनमें से एक भी लक्षण अंग्रेजी भाषा में नहीं मिला| व्यावहारिक तौर पर वह कहते हैं कि आज भी अंग्रेजी सरकार के अन्तर्गत जो प्रशासनिक मशीनरी कार्य कर रही है उसमें अंग्रेज

अधिकारी गिनती के ही हैं| आज भी अधिकतर कर्मचारी भारतीय हैं और दिन-ब-दिन उनकी संख्या बढ़ती ही रही है| ऐसे में यह स्वीकार करना ही होगा कि सरकारी सेवाओं में जहाँ भारतीयों की संख्या बहुतायत में है, के लिए अंग्रेजी की तुलना में 'हिन्दी' कही अधिक सरल है|

दूसरे लक्षण पर विचार करते हुए हम देखते हैं जब तक सभी लोग अंग्रेजी भाषा की जानकारी प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमारा धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवहार सामान्य रूप से नहीं हो सकता| यहाँ भी अंग्रेजी भाषा की सीमितता का सहज ही आभास हो जाता है| क्योंकि सबको अंग्रेजी सिखाया जाय इससे अधिक तर्कसंगत है कि कुछ लोगों को हिन्दी भाषा सिखाया जाय|

तीसरा महत्वूपर्ण लक्षण भी हिन्दी के पक्ष में है| अंग्रेजी आज भी कुछ थोड़े लोगों की ही भाषा है| उसकी तुलना में हिन्दी भारत में बड़ी संख्या में लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है|

चैथा लक्षण भी अंग्रेजी में नहीं देखा जाता क्योंकि सारे राष्ट्र के लिए वह इतनी आसान नहीं है|

पाँचवें लक्षण पर विचार करते समय हम देखते हैं कि अंग्रेजी भाषा की आज की सत्ता क्षणिक है| सदा बनी रहने वाली स्थिति तो यह है कि भारत में जनता के राष्ट्रीय काम में अंग्रेजी भाषा की जरूरत थोड़ी ही रहेगी| अंग्रेजी साम्राज्य में उसकी जरूरत होगी|

इन आधारों पर हिन्दी निश्चित रूप से अंग्रेजी की तुलना मे अधिक सशक्त भाषा है| क्योंकि ये सारे लक्षण हिन्दी में मौजूद हैं| गाँधी कहते हैं- 'हिन्दी के बाद दूसरा स्थान बंगला का है| फिर भी बंगाली लोग बंगाल के बाहर हिन्दी का ही उपयोग करते हैं| हिन्दी बोलने वाले लोग सभी जगह हिन्दी का ही उपयोग करते हैं| उनके ऐसा करने पर किसी को भी आश्चर्य नहीं होता क्योंकि कमोवेश हर जगह हिन्दी की उपस्थिति अवश्य है| हिन्दी के धर्मोपदेशक और उर्दू के मौलवी सम्पूर्ण भारत में अपने भाषण हिन्दी में ही देते हैं और अनपढ़ जनता उन्हें समझ लेती है|' गाँधी जी का कहना है कि- 'ठेठ द्राविड प्रान्त में भी हिन्दी की आवाज सुनाई देती है| मद्रास में मैने अपना सारा काम हिन्दी में चलाया है| सैकड़ों मद्रासी मुसाफिरों को मैने दूसरे लोगों के साथ हिन्दी में बोलते सुना है| इसके सिवा, मद्रास के मुस्लिम लोग भी हिन्दी अच्छी तरह बोलते हैं| यह भी ध्यान रखने की बात है कि सारे भारत के मुसलमान उर्दू बोलते हैं और उनकी संख्या सारे प्रान्तों में कुछ कम नहीं है|'

इस तरह हिन्दी भाषा पहले से ही राष्ट्रभाषा बन चुकी है| हमने बरसों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है| उर्दू भी हिन्दी की इस शक्ति से ही पैदा हुई हैं| मुस्लिम बादशाह भारत में फारसी-अरबी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके| उन्होंनें हिन्दी के व्याकरण को मानकर उर्दू लिपि काम में ली और फारसी शब्दों का ज्यादा उपयोग किया| परन्तु आम लोगों के साथ अपना व्यवहार वे विदेशी भाषा के द्वारा नहीं चला सके| यह हालत अंग्रेज अधिकारियों से छिपी हुई नहीं थी| इसलिए अंग्रेजों ने भी आम जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हिन्दी का ही इस्तेमाल किया|

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी में राष्ट्रभाषा के रूप में संपूर्ण भारतवासियों की भाषा बनने की पात्रता सर्वाधिक है| गाँधी जी को इसी कारण इस बात का पूर्ण विश्वास था कि सारे भारतवासियों को आपस में सद्भावपूर्वक जोड़ने में हिन्दी भाषा ही सक्षम है|

10.4 प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचार

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः|"

भगवद्गीता का यह वाक्य सभी क्षेत्रों में लागू हो सकता है| स्वभाषा को छोड़कर परभाषा के मोह में पड़ना, बहुत बड़ा द्रोह है| माता, मातृभाषा और मातृभूमि-इन तीन में से किसी का भी अपमान स्वाभिमानी मनुष्य कभी सहन नहीं कर सकता| इस भावना से प्रेरित होकर हरिजन-सेवक (25.08.1946) में प्रान्तीय भाषाओं की महत्ता पर लिखे अपने लेख में गाँधी जी कहते हैः- "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है| मैं अंग्रेजी को भी उसकी जगह प्यार करता हूँ| लेकिन अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है, तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा| यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गयी है| इसलिए मैं उसे दूसरी जबान के तौर पर जगह दूँगा- लेकिन विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में, स्कूलों में नहीं| वह कुछ लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखो-करोड़ों की नहीं| आज अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही हम यह मानने लगे हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता| मैं इस चीज को नहीं मानता|"

गाँधी जी का निश्चित मानना है कि – "हमने अपनी मातृभाषाओं के मुकाबले अंग्रेजी से ज्यादा मुहब्बत रखी, जिसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े-लिखे और राजनीतिक दृष्टि से जागे हुए ऊँचे तबके के लोगों के साथ आम लोगों का रिश्ता बिल्कुल टूट गया और उन दोनों के बीच एक गहरी खाई बन गई| यही वजह है कि हिन्दुस्तान की भाषायें गरीब बन गई हैं और उन्हें पूरा पोषण नहीं मिला|..... हमारे पास विज्ञान के निश्चित पारिभाषिक शब्द नहीं हैं| इस सबका नतीजा खतरनाक हुआ है| हमारी आम जनता आधुनिक मानस से यानी नये जमाने के विचारों से बिल्कुल अछूती रही है| हिन्दुस्तान के महान भाषाओं की जो अवगणना हुई है और उसकी वजह से हिन्दुस्तान को जो बेहद नुकसान है, उसका कोई अंदाजा या माप हम नहीं लगा सकते, क्योंकि हम इस घटना के बहुत नजदीक हैं| लेकिन अगर इस नुकसान की भरपाई करने की कोशिश हमने नहीं की तो हमारी आम जनता को मानसिक मुक्ति नहीं मिलेगी| वह रूढ़ियों एवं बहमों से घिरी रहेगी| नतीजा यह होगा कि आम जनता स्वराज के निर्माण में कोई ठोस मदद नहीं कर सकेगी| अहिंसा की बुनियाद पर रचे गये स्वराज की चर्चा में यह बात शामिल है कि हमारा हर एक आदमी आजादी की हमारी लड़ाई में खुद स्वतंत्र रूप से हाथ बटाये|"

स्वतंत्र भारत की सरकार से इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने की अपेक्षा करते हुए गाँधी जी हरिजन-सेवक (21.09.1947) में लिखते हैं कि, "अगर सरकारें और उनके दफ्तर सावधानी नहीं लेंगे तो मुमकिन है कि अंग्रेजी भाषा हिन्दुस्तानी का स्थान हड़प ले| इससे हिन्दुस्तान के उन करोड़ों लोगों को बेहद नुकसान होगा, जो कभी भी अंग्रेजी समझ नहीं सकेंगे| मेरे ख्याल में प्रान्तीय सरकारों के लिए यह बहुत आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहाँ ऐसे कर्मचारी रखें, जो सारा काम प्रान्तीय भावनाओं में और अन्तर-प्रान्तीय भाषा में कर सकें| मेरी राय में अन्तर-प्रान्तीय भाषा सिर्फ 'नागरी' या 'उर्दू' लिपि में लिखी जाने वाली 'हिन्दुस्तानी' ही हो सकती है|"

इस बारे में सुझाव देते हुए वे कहते हैं, "सबसे पहली और जरूरी चीज यह है कि हम अपनी उन प्रान्तीय भाषाओं का संशोधन करें, जो हिन्दुस्तान को वरदान की तरह मिली हुई हैं| यह कहना दिमागी आलस के सिवा और कुछ नहीं है कि हमारे अदालतों, हमारे स्कूलों और यहाँ तक कि हमारे दफ्तरों में भी यह भाषा-सम्बन्धी फेरफार करने के लिए कुछ समय, शायद कुछ बरस चाहिए| हाँ, जब तक भाषा के आधार पर फिर से प्रान्तों का बँटवारा नहीं होता, तब तक बम्बई और मद्रास जैसे प्रान्तों में, जहाँ बहुत सी भाषायें बोली जाती हैं, थोड़ी मुश्किल जरूर होगी| प्रान्तीय सरकारें ऐसा कोई तरीका खोज सकती हैं, जिससे उन प्रान्तों के लोग वहाँ अपनापन का अनुभव कर सकें| जब तक हिन्दुस्तानी संघ इस सवाल को हल न कर ले कि अन्तर-प्रान्तीय भाषा 'नागरी' या 'उर्दू' लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी हो, तब तक प्रान्तीय सरकारें ठहरी न रहें| इसकी वजह से उन्हें जरूरी सुधार करने में देर न लगानी चाहिए|"

गाँधी ने कहा, "भाषा के बारे में एक बिल्कुल गैर जरूरी विवाद खड़ा हो गया है, जिसकी वजह से हिन्दुस्तान में अंग्रेजी भाषा घुस सकती है| और अगर ऐसा हुआ तो इस देश के लिए वह एक ऐसे कलंक की बात होगी, जिसे धोना हमेशा के लिए असंभव हो जायेगा| अगर सारे सरकारी दफ्तरों मे प्रान्तीय भाषा का उपयोग इस्तेमाल करने का कदम इसी वक्त, उठाया जाय, तो अन्तर-प्रान्तीय भाषा का उपयोग तो इसे तुरंत बाद ही होने लगेगा|"

देश के गैर-हिन्दी भाषी राज्यों विशेषकर दक्षिण भारत और बंगाल में हिन्दी की स्वीकारोक्ति के लिए गाँधी जी कुछ सुझाव देते हैं| उनका कहना है कि "द्रविड़ भाई-बहन अंग्रेजी भाषा सीखने के लिए जितनी मेहनत करते हैं, उसका आठवां हिस्सा भी हिन्दी सीखने मे करें, तो बाकी हिन्दुस्तान के जो दरवाजे उनके लिए बन्द हैं वे खुल जायें और वे इस तरह हमारे साथ एक हो जाएँ जैसे पहले कभी न थे|" एक व्यावहारिक सुझाव देते हुए वे कहते हैं कि "द्रविड़ लोगों की संख्या कम है इसलिए राष्ट्र की शक्ति के मितव्यय की दृष्टि से यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान के बाकी सब लोगों को द्रविड़ भारत के साथ बातचीत करने के लिए तमिल, तेलगु, कन्नड़, और मलयालम सिखाने के बदले द्रविड़ भारत वालों को शेष हिन्दुस्तान की भाषा सीख लेनी चाहिए|"

दूसरा, महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि "सभी बड़ी-बड़ी म्युनिसीपैलिटियों को अपने मदरसों में हिन्दी की पढ़ाई को वैकल्पिक बना देनी चाहिए| दक्षिण अफ्रीका के अपने अनुभवों को बताते हुए वे कहते हैं कि 'वहाँ रहने वाले

लगभग सभी तमिल-तेलगु भाषी लोग हिन्दी बोलते और समझ लेते हैं| इसी तरह बंगाली भाई अगर रोजाना 2-3 घंटे खर्च करें तो अगले दो महीनों में हिन्दी पूरी तरह सीख लेंगे|"

10.5 अंग्रेजी भाषा के बारे में गाँधी जी के विचार

गाँधी जी का कहना है कि "अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, कूटनीति की भाषा है| उसमें अनेक अच्छे साहित्यिक रत्न भरे हैं और उसके द्वारा हमें पाश्चात्य विचार और संस्कृति का परिचय मिलता है| इसलिए हममें से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी जानना जरूरी है| वे राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति के विभाग चला सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं| यह अंग्रेजी का उत्तम उपयोग होगा| इस बारे में कोई दो मत नहीं कि आधुनिक ज्ञान की प्राप्ति, आधुनिक साहित्य के अध्ययन, सारे जगत का परिचय, अर्थप्राप्ति तथा राज्याधिकारियों के साथ सम्पर्क रखने और ऐसे ही अन्य कार्यों के लिए हमें अंग्रेजी के ज्ञान की आवश्यकता है| बावजूद इसके अंग्रेजी कभी भी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती| भले ही आज उसका साम्राज्य सा जरूर दिखाई देता है| और हमारे राष्ट्रीय कार्यों में अंग्रेजी ने बड़ा स्थान ले रखा है लेकिन फिर भी हमें इस भ्रम में कभी न पड़ना चाहिए कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा बन रही है|"

आज के भारत में अंग्रेजी ने हमारे हृदय पर अधिकार कर लिया है और हमारी मातृभाषाओं को वहाँ से सिंहासनच्युत कर दिया है| आवश्यकता यह है कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना ही भारतीय मस्तिष्क का उच्च-से-उच्च विकास सम्भव होना चाहिए| अंग्रेजी के मोह से छुटकारा पाना स्वराज के लिए एक जरूरी शर्त है| अगर स्वराज करोड़ों मरने वालों का, करोड़ो निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है|

1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन (इंदौर) में अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में वह कहते हैं, "मैं हमेशा से मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रान्तीय भाषाओं को नुकसान |ना या मिटाना नहीं चाहते| हमारा मतलब सिर्फ इतना है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें| वही भाषा राष्ट्रीय भाषा बन सकती है जिसे अधिक संख्या में लोग बोलते-जानते हों और जो सीखने में सुगम हो|"

गाँधी का मत था कि "अगर हिन्दुस्तान को हमें सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता| इसलिए उचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा का, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी का तथा अंतर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो|"

10.6 शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा एवं गाँधी

शिक्षा में विदेशी भाषा की आलोचना करते हुए गाँधी कहते हैं, "करोड़ो लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा होता है| मैकॉले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी| यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इंसाफ पाना हो तो, मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़े| बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल ही न सकूँ| हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग हैं|"

उनके अनुसार "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में जो बोझ दिमाग पर पड़ता है वह असह्य है| यह बोझ केवल हमारे ही बच्चे उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी ही पड़ती है| वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते| इससे हमारे ग्रेज्युएट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरूत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं| उनमें खोज की शक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं|"

गाँधी ने कहा "माँ के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाई देते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा से लेने से लुट जाता है| इससे शिक्षित वर्ग और सामान्य जनता के बीच में भेद पड़ गया है| वह हमें साहब समझती है और हमसे डरती है, वह हम पर भरोसा नहीं करती| ....यह रूकावट पैदा हो जाने से राष्ट्रीय जीवन का प्रवाह रूक गया है|" गाँधी ने यह भी कहा "सच तो यह है कि अंग्रेजी अपनी जगह चली जायेगी और मातृभाषा को अपना पद मिल जायेगा, तब हमारे मन जो अभी रूंधे हुए हैं, कैद से छूटेंगे और शिक्षित और सुसंस्कृत होने पर भी ताजा रहते हुए हमारे दिमाग को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने का बोझ भारी नहीं लगेगा|" वे कहते हैं कि "मातृभाषा का जो अनादर हम कर रहे हैं, उसका हमें भारी प्रायश्चित करना पड़ेगा| इससे आम जनता का बड़ा नुकसान हुआ है|"

20 अक्टूबर 1917, भड़ौच में आयोजित दूसरी गुजरात शिक्षा-परिषद में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए गाँधी जी ने कहा कि "अंग्रेजी सीखने के लिए हमारा जो विचारहीन मोह है, उससे खुद मुक्त होकर और समाज को मुक्त करके हम भारतीय जनता की बड़ी से बड़ी सेवा कर सकते हैं| अंग्रेजी के ज्ञान की आवश्यकता के विश्वास ने हमें गुलाम बना दिया है| उसने हमें सच्ची देश सेवा में असमर्थ बना दिया है| पिछले 60 वर्षों से हमारी सारी शक्ति ज्ञानोपार्जन के बजाय अपरिचित शब्द और उनके उच्चारण सीखने में खर्च हो रही है| यह हमारे राष्ट्र की एक अत्यन्त दुःखपूर्ण घटना है| हमारी पहली और बड़ी-से-बड़ी समाज सेवा यह होगी कि हम अपनी प्रान्तीय भाषाओं का उपयोग शुरू करें, हिन्दी को स्वाभाविक स्थान दें, प्रान्तीय कामकाज प्रान्तीय भाषाओं में करें और राष्ट्रीय कामकाज हिन्दी में करें|"

27 दिसम्बर 1917, कलकत्ता में आयोजित पहली अखिल भारतीय समाज-सेवा-परिषद के अध्यक्षीय सम्बोधन में उनहोंने कहा कि "यह मेरा निश्चित मत है कि आज की अंग्रेजी शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन बना दिया है| इसने भारतीय विद्यार्थियों की शक्ति पर भारी बोझ डाला है और हमें नकलची बना दिया है| कोई भी देश

नकचलियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बन सकता| भारत आज जिन वहमों का शिकार है उनमें सबसे बड़ा वहम यह है कि स्वतंत्रता से सम्बन्धित विचारों को हृदयगम करने के लिए और तर्कशुद्धि चिन्तन की क्षमता का विकास करने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है|"

गाँधी सदैव इस बात पर बल देते है कि भारतीय शिक्षा-पद्धति में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्ता दी जाती है, जबकि उसकी जगह मातृभाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं में शिक्षा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है| मातृभाषा में शिक्षा का सिद्धान्त जो हर जगह लागू है| चीन, जापान, रूस, फ्रांस जैसे देशों ने अपनी भाषाओं द्वारा ही विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय विकास किया है| अतः इस बात की महती आवश्यकता है कि हम गाँधी जी के सुझाये गये सिद्धान्तों के आधार पर मातृभाषा और भारतीय भाषाओं के आधार पर ही अपनी शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला को निर्मित करें|

10.7 सारांश

भारत विविधताओं से भरा हुआ देश है| अपनी भौगोलिक विषमताओं व विविधताओं के साथ ही यह सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से भी अत्यन्त विविधीकृत देश है| आमतौर पर अन्य किसी भी देश में इतनी विविधता देखने को नहीं मिलती| अतः यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि हमारे यहाँ अनेक भाषायें भी प्रचलित रही है| डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार हमारे यहाँ लगभग साढ़े तीन सौ से भी अधिक भाषायें है, जिनमें 22 समृद्ध, भाषाओं को हमने अपने संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया है| हमारे यहाँ प्रान्तों के विभाजन का आधार भी भाषा ही है, ताकि उस प्रदेश के सामान्य कामकाज उसकी अपनी भाषा में चले| इन प्रान्तीय भाषाओं का हजारों वर्षों का इतिहास है| कुछ भाषायें तो इनती समृद्ध है कि वे भारत ही नहीं वरन् विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाती है| हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल आदि ऐसी ही भाषायें हैं| इन भाषाओं में रचित साहित्यों का विश्वव्यापी प्रकाशन होता है| रवीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा रचित 'गीतांजली' नामक कृति का नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होना इसका ज्वलंत उदाहरण है|

भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद का भी यह कहना महत्वपूर्ण है कि "अपनी मातृभाषा में प्रवीण होना हरेक के लिए जरूरी है| इस तहर हमारी प्रान्तीय भाषाओं का महत्व बहुत ज्यादा है| हमें अपने तमाम कार्य-व्यवहारों में पहला स्थान मातृभाषा को ही देना चाहिए| अंग्रेजी के गलत व्यामोह में न तो हम अंग्रेजी ठीक तरह से सीखते हैं, और न ही मातृभाषा के साथ न्याय कर पाते हैं| इसके लिए हरेक भाषा को अपना योग्य स्थान मिले, यह जरूरी है|" इस तरह गाँधी जी का यह कहना कि प्रान्तीय स्तर पर हरेक कार्य वहाँ के स्थानीय भाषा में होना अत्यन्त प्रासंगिक है| साथ ही उनके द्वारा व्यक्त गये सुझाव कि, हमें अपने प्रत्येक व्यवहार में अपनी भाषा का आदर करना सीखना चाहिए, अत्यन्त आवश्यक है| जब तक हम अंग्रेजी के व्यामोह से स्वयं को पृथक नहीं करते यह अत्यन्त

दुष्कर होगा कि हमारी स्वभाषायें अधिक विकसित व समृद्ध होगी और हमारी आम जनता देश को समृद्ध व मजबूत बनाने में कोई भूमिका निभा सकेगी|

भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसी भाषा हो जो आपस में सभी भाषाओं को जोड़े| यह भाषा निश्चित तौर पर 'हिन्दी' ही है| यद्यपि यह भाषा कई उत्तर भारतीय प्रान्तों की मातृभाषा है परन्तु सम्पूर्ण देश में बोली और समझी जाती है| गाँधी जी ने अपने राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विचारों में बहुत ही स्पष्टता से हिन्दी के पक्ष में 'हिन्द-स्वराज' में लिखा है "समग्र हिन्दुस्तान को जो चाहिए वह तो हिन्दी भाषा ही है और उसे नागरी अथवा फारसी लिपि मे लिखने की छूट होनी चाहिए|" दक्षिण अफ्रीका में स्थापित आश्रमों में उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी कार्य किया था, उसी समय उन्हें इस बात का विश्वास हो गया था कि सारे भारतीयों को जोड़ने वाली एकमात्र भाषा 'हिन्दी' ही है|

राष्ट्रभाषा के जो लक्षण उनहोंने बताये हैं उसके आधार पर भी अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी ही राष्ट्र की भाषा के रूप में खरी उतरती है| हिन्दी को सम्पूर्ण देश में लोकप्रिय बनाने की दिशा में भी उनहोंने महत्वपूर्ण कार्य किया| भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के वार्षिक सम्मेलनों, जो देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों मे आयोजित होते थे, गाँधी जी सदैव हिन्दी में ही बोला करते थे| 1918 में उन्होंने दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार के लिए अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास को मद्रास भेजा था और तबसे स्थापित 'दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा' आज भी दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार-प्रसार जोर शोर से कर रही है| सच्चाई यह है कि दक्षिण भारतीय प्रान्तों में हिन्दी के जितने विरोध की बात कही जाती है, वह वास्तव में वहाँ की आम जनता द्वारा कम बल्कि राजनीतिक तौर पर अधिक है| गाँधी जी ने 1936 में दक्षिण भारत के अलावा अन्य अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए वर्धा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' को स्थापित किया था|

हिन्दी की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी ग्रहणशीलता रही है| एक ओर जहाँ वह संस्कृत से काफी हद तक जुड़ी रही है, जो दक्षिण भारतीय भाषाओं तामिल, तेलगु व मलयालम आदि की मूल भाषा मानी जाती है, वहीं दूसरी ओर उसने उर्दू से भी अनेक शब्दों को ग्रहण करके अपने को समृद्ध बनाया है| ध्यातव्य है कि उर्दू भाषा का प्रचलन पंजाब, कश्मीर व बंगाल आदि में काफी रहा है| इस तरह सही मायनों में हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रव्यापी भाषा हो सकती है| 1941 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बापू की हिन्दी की परिभाषा में उर्दू को अस्वीकार कर दिया| तत्पश्चात् गाँधी जी ने वर्धा में ही 1942 में 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' का स्थापना की तथा नागरी एवं उर्दू दोनों लिपियों में राष्ट्रभाषा प्रचार का काम प्रारम्भ किया|

14 सितम्बर 1949 को भारतीय संविधान निर्मात्री सभा ने देवनागरी में हिन्दी को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया, परन्तु साथ ही संविधान की धारा 51 में स्पष्ट रूप से यह भी उपबन्धित किया गया कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार करे, उसका विकास करे ताकि वह भारत की मिली जुली संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके|" इस तरह भले ही संविधान में गाँधी जी द्वारा सुझाये गये शब्द 'हिन्दुस्तानी' नाम या उर्दू लिपि को स्वीकार न किया गया हो, परन्तु उसका स्वरूप 'हिन्दुस्तानी' का ही होगा, यह उपरोक्त धारा मे बहुत

स्पष्टता से कहा गया है| डा. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इस सन्दर्भ में स्पष्ट कहा था कि "हमारा कर्तव्य तो उस भाषा को जानने तथा उसे देवनगरी और उर्दू दोनों लिपियों में पढ़ना-लिखना सीखना है|"

आचार्य विनोबा भावे ने मातृभाषा और राष्ट्रभाषा की तुलना मनुष्य की दो आँखों से की है और कहा है कि जो महत्व दोनों आँखों का है वही महत्व दोनों भाषाओं का है| हमे उनका गौरव करना चाहिए तथा अपने दैनिक जीवन में उसका अमल करना चाहिए| हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रभाषा हमारी राष्ट्रीय एकता का अपरिहार्य तत्व है जिसको सरल, सुगम और सर्वस्वीकार्य बनाना हरेक भारतवासी का कर्तव्य है|

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्याय में गाँधी जी के भाषा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन हिन्दी भाषा, प्रान्तीय भाषा, अंग्रेजी भाषा आदि के सन्दर्भ में किया गया है| इस अध्ययन से उन कारणों का पता चलता है जिनके कारण गाँधी हिनदुस्थान में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का विरोघ करते थे एवं स्वभाषाओं तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकार्यता पर बल देते थे| सशक्त और एकीकृत भारत के लिए गाँधी राष्ट्रभाषा के तौर पर हिन्दुस्तानी का समर्थन करते थे उन्होंने प्रान्तीय भाषा की आवश्यकता, उनका संरक्षण और संवर्धन का समर्थन किया ताकि भारत के सांस्कृतिक विरासत फल-फूल सकें| अंग्रेजी भाषा को राष्ट्रभाषा हेतु अनुपयोगी मानते हुए उन्होंने हिन्दी को विचारों के आदान-प्रदान हेतु उपयुक्त भाषा माना|

10.9 अभ्यास प्रश्न

1 भाषा के विकास पर गाँधी के विचारों की समीक्षा कीजिये|

2 'भाषा राष्ट्रीय एकीकरण का सशक्त माध्यम है|' इस कथन के पक्ष एवं विपक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत कीजिये|

3 राष्ट्रभाषा पर एक लघु निबन्ध लिखिये|

4 'शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही होनी चाहिए- गाँधी'| टिप्पणी लिखिए|

5 अंग्रेजी भाषा पर गाँधी के विचारों की विवेचना कीजिए|

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम.के., मेरे सपनों का भारत; नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2008
2. गाँधी, एम.के. हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2008
3. गोयनका, कमल किशोर, पत्रकारिता के युग निर्माता महात्मा गाँधी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2008

4. शाह, दशरथ लाल, गाँधीजी और हमारी राष्ट्रभाषा, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 2004

5. पाण्डे, बी.एन., महात्मा गाँधी समग्र चिन्तन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, 1994

6. प्रभाकर, विष्णु, गाँधी: समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

इकाई – 11

आधुनिक सभ्यता पर गाँधी के विचार

इकाई रूपरेखा

11.0 उद्देष्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आधुनिक सभ्यता: अर्थ और लक्षण

11.3 मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार

11.4 विकास का पूँजीवादी मॉडल

11.5 आधुनिक सभ्यता की गाँधीजी द्वारा आलोचना

11.6 गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ

11.7 गाँधीजी का आदर्श समाज - सर्वोदय

11.8 सारांश

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्दे श्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित विषयों की जानकारी पा सकेंगे:-

- आधुनिक सभ्यता और पूँजीवादी विकास का निहितार्थ|
- गाँधीजी के अनुसार मानव जीवन का निहितार्थ|

- गाँधीजी के अनुसार आधुनिक सभ्यता में निहित कमियाँ|
- गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ|
- गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था की विशेषताऐं|

11.1 प्रस्तावना

दक्षिण अफ्रीका और भारत में, अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता के कुछ क्रूर पक्ष का कटु अनुभव प्राप्त किया| इन्ही अनुभवों तथा आत्म-मंथन ने आधुनिक, विकसित और श्रेष्ठ होने का डिंडोरा पीटने वाले पश्चिमी जगत के प्रति गाँधीजी का मोह भंग किया और वे इसके कटु आालोचक बने| उनके अनुसार आधुनिक सभ्यता में भातिकवाद, नास्तिक विचार और स्वार्थःपरक अवगुणों की प्राधान्यता है और सदगुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, सादगी, इत्यादि का अभाव है| इसने व्यक्ति के धर्मिक और नैतिक होने के मूल्यों को धर्मनिर्पेक्षता और वैज्ञानिकता के आधार पर अप्रासंगिक बताया| मशीनीकरण का अंधाधुन्ध अनुकरण करने, सैन्यवादी सोच रखने और शक्ति के नशे में चूर इन तथाकथित आाधुनिक देशों ने ऐशिया और अफ्रिका माहाद्वीप में स्थित अनेक देशों का जमकर शोषण किया| गाँधीजी ने कहा कि शैतान का रूप धारण किए हुए ऐसे आधुनिक सभ्यता की झंझीरों में जकडे ब्रिटेन जैसे उपनिवेशवादी शासनों का विश्व के प्रत्येक कौने से समाप्ति तत्काल होना चाहिए| इसी संदर्भ में उन्होंने स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की और इसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह का दर्शन और तकनीक विश्व को दिया| अपने समकालीन समाज की बुराइयों को दूर करने तथा आधुनिक सभ्यता की ओर अंधी दैड़ लगाने वाले भारत जैसे देशों के लिए उनकी सोच थी कि जब तक ये राष्ट्र सभ्यता का सही अर्थ नही जानेंगे और अपनायेंगे तथा नैतिकता की अनुपालना नही करेंगे तब तक इनका भविष्य अंधकारमय रहेगा| अपने विचारों, कार्यों और लेखन के द्वारा उन्होंने अपनी बात जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया|

11.2 आधुनिक सभ्यता : अर्थ और लक्षण

इतिहासकार आधुनिक युग का प्रारम्भ लगभग 1500 ई से मानते हैं| यह युग तर्कवाद पर आधारित वैज्ञानिक अविष्कारों और अनेक खोज का युग था| वैज्ञानिक अविष्कारों के आधार पर बडे-बडे उद्योग स्थापित हुए| सामन्तवादी व्यवस्था समाप्त हुई और पूँजी का महत्व बडा| चर्च और ईसायित का व्यक्ति के सार्वजनिक जीवन और राज्य पर नियन्त्रण समाप्त हुआ| पश्चिमी विश्व में क्रमशः राष्ट्र-राज्यों की उत्पत्ति हुई| शक्तिशाली राजाओं का केंद्रीयकृत शासन स्थापित हुआ| अविष्कारों और खोजों से प्रेरित होकर, तथा अक्सर राज्य समर्थन प्राप्त कर, साहसी व्यक्तियों ने विश्व की खोज और विश्व-व्यापार बढाने का भरसक प्रयास किया| क्रमशः इन देशों ने साम्राज्यादी नीति अपनाते हुए विश्व-भर में अपने उपनिवेशों के माध्यम से विशाल साम्राज्य स्थापित किए| वैज्ञानिकवाद और तर्कवाद ने व्यक्ति की

सोच और जीवन शैली को बदल डाला| धर्म और नैतिक मूल्य अब उसके लिए पहले जितने महत्वपूर्ण नही रहे| व्यक्तिवाद की कसौटी पर प्रत्येक सोच और कार्य की औचित्यता निधारित होने लगी| उपर्युक्त सभी सोच और समृद्धि ने विलासी को व्यक्ति की शान और दुनिया बदल डाला| आधुनिक युग ने जिस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था, सोच और संस्कृति को जन्म दिया है उसे ही आधुनिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है| इसके प्रमुख लक्षण निम्नानुसार है:-

11.2.1 तर्कवाद और विज्ञानवाद को प्राथमिकता

पश्चिमी दुनिया ने पुनर्जागरण के प्रारम्भ होने तथा उसके बाद से विवेक और तर्क को अत्यधिक महत्व प्रदान किया| पुनर्जागरण को 'तर्क का युग' कहा जाता है क्योंकि मनुष्य और उसके द्वारा स्थापित संस्थाओं की गतिविधियों का औचित्य निर्धारण विवेक और तर्क के आाधार पर किया जाने लगा| पुरातन मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया और विवेक, तर्क और मानव कल्याण के अनुरूप न होंने पर निरर्थक मानकर अस्वीकार कर दिए गए| विज्ञान के विकास के साथ तथ्यों अथवा प्रमाणों को प्राथमिकता दी जाने लगा| ऐसा माना जाता है कि उपर्युक्त तर्कवादी और विज्ञानवादी प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पुनर्जागरण से प्रारम्भ बौद्धिक परिवर्तनों ने मध्य युग को विराम लगाकर आाधुनिक युग की शुरूआत का बिगुल बजाया| पुनर्जागरण और विज्ञान ने अनेक खोज और आविष्कारों को जन्म दिया| जीवन-व्यापन के लिए न केवल सुख-सुविधा के अनेक विकल्प मनुष्य को उपलब्ध हाने लगे बल्कि सम्पन्नता भी बढने लगी|

11.2.2 आधुनिकता

पुनर्जागरण के दौरान विज्ञान के विकास के साथ तथ्यों अथवा प्रमाणों को दिए जाने वाले प्राथमिकता के कारण आनुभविकता को ज्ञान का आधार माना जाने लगा| ऐसा माना जाने लगा कि विज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है| विज्ञान से प्रमाणित ज्ञान को आधुनिक कहा गया| उसे मनुष्य के लिए उपयोगी माना गया| इस आधुनिकता की सोच ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओ और प्रक्रियाओं में आमूल-चूल परिवर्तन किये| भौतिकवादी सोच, व्यक्तिवादी चिन्तन और व्यवहार, पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ इत्यादि आधुनिकता के प्रतीक चिह्न बन गये|

11.2.3 यथार्थवादी-धर्मनिरपेक्ष सोच

पुनर्जागरण द्वारा विवेक और तर्क पर अत्यधिक बल के कारण धर्मनिरपेक्ष सोच और यथार्थवाद भी मानव आचरण के महत्वपूर्ण निर्धारक बने| इहलौकिक विषय और व्यक्ति के सुख को महत्वपूर्ण माना गया और चर्च और पादरियों तथा धार्मिक ग्रन्थों का प्रभाव परिणामस्वरूप क्षीण होने लगा| राजनीतिक स्तर पर नागरिकों के लिए राजा चर्च के पादरी से ज्यादा महत्वपूर्ण बन गया| शक्तिशाली राजा ने चर्च और पादरियों को अपने अधीन कर स्वयं और राज्य की

तात्कालिक आवश्यकताओं को शासन का आधार बनाया| संस्थागत धर्म और धर्म-ग्रन्थ व्यक्तिगत जीवन के विषय माना जाने लगा|

11.2.4 राष्ट्र-राज्य के प्रति निष्ठा

धर्मनिपेरक्ष और यथार्थवादी सोच से आए राजनीतिक परिवर्तनों ने राष्ट्र-राज्यों को जन्म दिया| नागरिकों की सार्वजनिक निष्ठा चर्च और पादरी से हटकर राज्य और राजा के प्रति समर्पित हुई| शक्तिशाली राजा और राज्य के अधीन वे अपनी सुरक्षा और कल्याण की कामना करने लगे| ऐसे राजा और राज्य की शक्ति बढाने के लिए वे लडने और मरने के लिए तैयार हुए| राजा के सैन्य-बल के आधार पर यूरोप में क्रमशः बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्य स्थपित हुए|

11.2.5 पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ

विज्ञान और प्रोद्यौगिक विकास ने आर्थिक स्तर पर अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये| यद्यपि सम्पन्नता बहुत बढने लगी यह कुछ ही लोगों तक सीमित रही| कृषि और भूमि का महत्व घटा और उद्योग और पूँजी का महत्व बढने लगा| धन एवं सम्पत्ति को व्यापार और उद्योंगों मे निवेश कर व्यक्ति अपनी सम्पन्नता को और बढाने का प्रयास करने लगा| सम्पन्नता ने समाज में भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढावा दिया| इसी सम्पन्नता के आधर पर व्यक्ति समाज में अपना प्रभाव और शक्ति को भी बढाने का प्रयास करने लगा|

11.2.6 ओद्योगिक विकास

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी द्वारा किए गए महत्वपूर्ण आार्थिक परिवर्तनों में ओद्योगिक विकास भी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था| प्रिंटिंग-प्रेस, सिलाई मशीन, भाप-चलित मशीन एवं अन्य ऐसे अविष्कारों ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया| धीरे-धीरे पूरे यूरोप में बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हुए और उत्पादन बहुतायत मात्रा में होने लगी| क्रमशः दुनिया भर से उत्पादन के लिए कच्चा माल लाया जाने लगा और उत्पादित माल विश्व के कोने-कोने तक बेचने के लिए व्यवस्था की गई| इसके लिये रेल और सडक मार्गों का तीव्र विकास किया गया और बाजार ढूँढा गया| औद्योगिक विकास ने पूर्व में प्रचलित भू-स्वामी अथवा जमीन्दार और कृषक कहलाने वाले वर्ग को समाप्त किया और अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले दो नए वर्ग - पूँजीपति और श्रमिक - को जन्म दिया|

11.2.7 उपनिवेशवाद

औद्यौगिक क्रान्ति धीरे-धीरे पूरे यूरोप में फैलने लगी| उत्पादन बहुतायत मात्रा में होने लगी| इस प्रकार के उत्पादन ने राज्यों को अपनी सीमा के पार विद्यमान प्राकृतिक सम्पदा और बाजार पर अपना सम्पर्क स्थापित करने के लिए पे्ररित किया| वैज्ञानिक अविष्कार और भौगोलिक खोज ने ऐसे सम्पर्क को सम्भव बनाया| एशिया, अमेरिका और अफ्रिका में अनेक व्यापारियों का आवगमन प्रारम्भ हुआ| राज्य संरक्षण प्राप्त होने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और बडा जिससे न

केवल व्यापारियों को, अपितु राज्य को भी आर्थिक दृष्टि से अनेक फायदा हुआ| इससे प्राप्त समृद्धि ने राज्यों की लालसा बढाने का काम किया और वे आर्थिक प्रतिस्पर्धा करने लगे| तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने इन राज्यों द्वारा एशिया, अमेरिका और अफ्रिका के राजनीतिक व्यवस्थाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने की इच्छा को प्रबल बनाया| इस तरह यूरोपीय राज्यों ने एशिया, अमेरिका और अफ्रिका में अपने उपनिवेश स्थापित किए| उपनिवेश राज्य अपने शासक राज्य की सभी आर्थिक इच्छाओं की पूर्ति करने लगा| उपभोगतावादी, स्वार्थ पूर्ति के लिए नीति को परित्याग करने वाली और संवेदन-विहीन संस्कृति ने कालान्तर में शोषणात्मक व्यवस्था को स्थापित किया| राज्यों की यह होड़ दो विश्व युद्ध में परिणीत हुई|

11.2.8 नगरीय संस्कृति

आधुनिक सभ्यता की एक महत्वपूर्ण विशेषता नगरीय संस्कृति का प्रचलन भी है| औद्यौगिक क्रान्ति ने कृषि के परम्परागत महत्व को कम कर दिया और उद्योगों को आजीविका का महत्वपूण साधन बना दिया| उद्योगों ने शहरों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया| परम्परागत रूप से व्यापन किए जाने वाली कृषि-प्रधान सीधी-साधी जिन्दगी में काफी परिवर्तन आया| लोग धीरे-धीरे उन जगहों पर बसने लगे जहाँ कारखाने स्थापित किए गए थे| इन जगहों पर भीड़भाड़ होने लगी| विवशता अथवा उदासीनता के कारण इन जगहों की स्वच्छता प्रभावित होंने लगी| कारखानों से निकलता धुआँ भी वातावरण को दूषित करने लगा| कारखनों में मजदूरी कर रहे श्रमिक भी ऐसे काम की बाध्यता के अनुरूप अपना जीवन व्यापन करने लगे| कारखानों में प्रति दिन विपरीत स्वास्थ्य व्यवस्था में लम्बे समय तक काम करना पर फिर भी कम मजदूरी प्राप्त करना, अनेक आर्थिक और सामाजिक संघर्षों में लिप्त होना, अनेक बुराइयों से ग्रसित होना, इत्यादि श्रमिकों के जीवन की पहचान बन गई| दूसरी तरफ पूँजीपति लोग जिन्होंने बडे-बडे कारखानों को स्थापित किया था, वे अपार सम्पत्ति के मालिक बन गये और मोटर-गाडी, आलीशान बंगले और विलासिता के अन्य साधनों का सुख भोगने लगे| समाज में बढ़ती हुई सम्पन्नता परन्तु इस सम्पन्नता पर कुछ ही लोगों का एकाधिकार, उपभोगतावादी प्रवृत्ति, अनेक बुराइयाँ का व्याप्त होना, आर्थिक और सामाजिक संघर्षों के कारण सामाजिक समरसता का अभाव, इत्यादि इस नवीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और जीवन की विशेषता बन गई| इस व्यवस्था को लोग शहर और इसके जीवन जीने की शैली को शहरी अथवा नगरीय संस्कृति कहने लगे|

11.3 मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार

गाँधी दर्शन एवं गाँधीजी के कार्यों का एक महत्वपूर्ण घटक है मानव अस्तित्व एवं उसकी प्रकृति की गहरी समझ| अपने कई पूर्ववर्तियों के समान गाँधी का विश्वास था कि व्यक्ति का सम्पूर्ण 'स्व' 'बाह्य स्व' और 'आन्तरिक स्व' से मिलकर बना है| उनके मतानुसार मनुष्य को विरासत में दो मूल प्रवृत्तियाँ प्राप्त हैं - जीव वैज्ञानिक और सामाजिक आध्यात्मिक| दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य जानवरों का विकसित स्वरूप होने के साथ-साथ उसमें सामाजिकता का पक्ष और दैवीय गुण विद्यमान है| चूँकि गाँधीजी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था अतः उनका मानना था कि मानव

अस्तित्व के जैविक और सामाजिक पक्ष को नैतिक सिद्धान्तों के अधीन होना चाहिये| यद्यपि गाँधी जी वैज्ञानिकों के इस तर्क से सहमत थे कि मनुष्य जानवर का ही विकसित स्वरूप है, वे इस बात से सहमत नहीं थे कि मनुष्य मात्र विकसित जानवर है क्योंकि यह स्वरूप मनुष्य के आत्मिक गुणों एवं दैवीय स्वरूप को प्रकट नहीं करता| गाँधीजी का विचार था कि मनुष्य जानवरों से भिन्न है क्योंकि उसके पास आत्मिक शक्ति है जो उसे सही मार्ग एवं सामाजिक जीवन की ओर ले जाती है| गाँधीजी मानते थे कि यही आत्मिक शक्ति वह परम दैवीय शक्ति है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित है एवं जो सभी वस्तुओं और जीवों के अस्तित्व का कारण है| इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार मनुष्य का दैवीय स्वरूप उसे विशिष्टता प्रदान करता है| गाँधीजी के अनुसार "खाने, सोने और अन्य शारीरिक क्रियाओं में मनुष्य पशु से भिन्न नहीं है नैतिक स्तरों पर पशुओं से ऊपर स्थान प्राप्त करने का अथक् संघर्ष ही मनुष्य को पशुओं से भिन्नता प्रदान करता है|"

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों को प्रभावित किया| दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही मनुष्य और मानव जीवन के बारे में उनके विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ| चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है अतः वे इस बात पर हमेशा बल देते थे मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करें| गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य में दैवीयता उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है| वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यों एवं विचारों का निर्धारण करें|

इस प्रकार गाँधीजी का मानना था कि मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक गुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग आदि का विकास करें| गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं की शक्तियों को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रता का अनुभव करें| बाह्य स्वतंत्रता एवं आंतरिक स्वतंत्रता के अंतर को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतंत्रता वह स्वतंत्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर शासन करे| उन्होंने इसे 'स्वराज' कहा| उनका मानना था कि इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थिति से प्राप्त नहीं की जा सकती| इसके लिये मनुष्य को अपने भीतर ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा| आत्मिक जीवन जीना और भौतिक समाज का हिस्सा बनना ये दोनों बातें परस्पर विरोधाभासी प्रतीत होती हैं| लेकिन गाँधीजी ऐसा नहीं मानते थे| उनका विचार था कि इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सीख लें| इस नियंत्रण का प्रभाव उनके अनुसार यह होगा कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं के आकर्षण में बंध कर आध्यात्मिकता के मार्ग से प्रथक नहीं होगा| इस संदर्भ में गाँधीजी ने कुछ सिद्धान्तों और मूल्यों का प्रतिपादन किया| गाँधीजी चाहते थे कि लोग अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में इन सिद्धान्तों का अनुसरण करें| उनका मत था कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन करने पर मनुष्य स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत और विकसित महसूस करेगा| ये सभी आत्म अनुशासनात्मक मूल्य गाँधीजी की दृष्टि में आत्मानुभूति की ओर अग्रसर हाने एवं स्वराज स्थापित करने के साधन हैं|

11.4 विकास का पूँजीवादी मॉडल

विकास का सामान्य अर्थ उस प्रगति से है जो सरल अथवा निम्न स्तर या अवस्था से उच्च, परिपक्व अथवा जटिल आाकार या अवस्था की ओर ले जाता है| इसे क्रमिक या प्रगतिशील परिवर्तन की श्रंखला के माध्यम से उन्नति और विकास के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है| विकास कोई स्थायी स्तर नही है, यह एक प्रक्रिया है जो कुछ निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पथ निर्धारित करता है| आधुनिक युग में विकास सम्बन्धी परिचर्चाओं में आर्थिक मापदंड हावी हैं| ऐसा ही एक कसौटी 'प्रति व्यक्ति आय है' और जिन देशों में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) प्रति व्यक्ति उच्च है उन्हें विकसित देश माना जाता है| विकसित देश माने जाने का एक और कसौटी औद्योगीकरण की मात्रा है, जहाँ औद्योगीकरण की मात्रा अधिक है और नागरिक प्राथमिक क्षेत्र जैसे कृषि पर अपने जीवन-व्यापन के लिए न्यूनतम मात्रा में निर्भर हैं उन औद्योगिक देशों को विकसित माना जाता है| वर्तमान में एक और नए कसौटी को विकास का प्रतिमान के रूप में स्वीकारा गया है| इसे 'मानव विकास सूचकांक' कहा जाता है| यह राष्ट्रीय आय जैसे आर्थिक कसौटी के साथ अन्य कसौटियाँ जैसे जीवन प्रत्याशा और शिक्षा के सूचकांकों को जोडती है| उच्च दर के मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) प्राप्त देशों को विकसित देश माना जाता है| संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव कॉफी अन्नान के अनुसार एक विकसित राष्ट्र वह है जो अपने सभी नागरिकों को सुरक्षित वातावरण में स्वतंत्र और स्वस्थ जीवन व्यापन करने की अनुमति प्रदान करता हो|

पश्चिम जगत में सामन्तवादी व्यवस्था के पतन के बाद और औद्यैगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप 19वीं और 20वीं शताब्दी में पूँजीवाद नई अर्थव्यवस्था के रूप में उदयमान हुआ| इसमें उत्पादन के साधनों पर व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण स्थापित हुआ और ये व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करने के लिए अपने नियन्त्रण का प्रयोग करने लगे| यह कहना उचित होगा कि पूँजीवाद में वस्तुओं और सेवाओं का सृजन लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है| यही लाभ की इच्छा तीव्र आर्थिक प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है| लाभ कमाने और तीव्र प्रतिस्पर्धा करने हेतु पूँजीवाद व्यापक स्वतन्त्रता और निजी सम्पत्ति के अधिकार की माँग करता है| इसी क्रम में वह सरकार पर निःहस्ताक्षेपवादी आचरण के लिए दबाव डालता है| सामान्य हित के अनुरूप इस व्यवस्था में दो वर्ग स्वीकृत हैं - पूँजीवादी वर्ग जो पूँजी पर नियन्त्रण रखते हैं और श्रमिक वर्ग जो श्रम उपलब्ध कराते हैं| पूँजी के योगदान के लिए लाभ प्राप्ति और श्रम के लिए मज़दूरी की व्यवस्था इसके अन्तर्गत विद्यमान है| पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक मानते हैं कि इस व्यवस्था में निहित तीव्र प्रतिस्पर्धा और व्यापक स्वतन्त्रता जैसी विशेषतायें धन-सृजन और आार्थिक विकास को बढावा देती है और सम्पन्नता की ओर ले जाती है|

पूँजीवादी व्यवस्था के अनेक आलोचक हैं| जिन आधारों पर पूँजीवादी व्यवस्था की आलोचना की जाती है उनमें से एक प्रमुख आलोचना यह है कि यथार्थ में साधनों पर कुछ ही व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण होने और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने का ध्येय रखने के कारण सम्पन्नता कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित हो जाती है और अधिकांश लोग इससे वांछित रहते हैं| 'कुछ की सम्पन्नता और अधिकांश को पीड़ा' की परिस्थिति के परिणामस्वरूप अन्याय, असमानता और असुरक्षा की भावना व्यापक हो जाती है| कुछ आलोचक का कहना है कि यह विकास और धन-सृजन का इसका दावा भ्रान्ति है| इनकी आर्थिक शक्ति के दबाव में सरकार ऐसे निर्णय लेती है जो सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र हित के अनुकूल नही होते| ऐसी स्थिति में जिन उद्योगों, संस्थाओं और नियम-कानूनों का विकास होता है वह केवल पूँजीवादी वर्ग का ही हित साधक बन जाता है| जिनके पास पूँजी की शक्ति है वे इसका दुरूपयोग कर अन्य वर्गों, समाज एवं राष्ट्रों के शोषण करते हैं| इस तरह आम व्यक्ति और राष्ट्र की वास्तविक स्वतन्त्रता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है| उपभोगतावादी संस्कृति को बढावा देने और कृत्रिम माँग का सृजन कर प्रकृति का अनावश्यक दोहन करने में यह तनिक भी संकोच नही करता| बेरोजगार, अल्परोजगार, शोषण और वर्ग-संघर्ष भी पूँजीवाद से जुडी समस्यायें हैं| धन-सृजन जैसे अल्पकालिक फायदे आम जन से जुडी हुई क्रमशः बढ़ते संकटों में विलुप्त हो जाते हैं|

विकास का पूँजीवादी मॉडल का तात्पर्य उस पूँजीवादी सोच, तद्रूरूप नियोजन और क्रियान्वयन से है जिसके माध्यम से विकास करने का प्रयास किया जाता है| यह मॉडल उदार और व्यक्तिवादी सिद्धान्त पर आधारित है जो मानता है कि मानव एक विवेकशील प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निश्चित कर सकता है कि उसकी रूचि और हित किसमें है| इसलिए उसे स्वतंत्र छोड देना चाहिए ताकि वह अपने निजी और सामाजिक जीवन में आत्मनिर्णय ले सके|

आधुनिक सभ्यता विकास के पूँजीवादी मॉडल का जनक है| यह मॉडल व्यक्तिवाद और उपयोगितावाद के सिद्धान्त पर आधरित है| यह मानता है कि मानव एक तार्किक प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निर्धारित कर सकता है कि उसका हित किसमें है| इसलिए उस पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए, उसे स्वतन्त्र छोड देना चाहिए ताकि वह अपने हित को पूरा करने के लिए इच्छानुसार कार्य कर सके| तर्कवाद ने भौतिकवादी विचारों को जन्म दिया और विज्ञान और तकनीकी का प्रयोग ज्यादा से ज्यादा भौतिकवादी जीवन के सुख और सुविधा जुटाने के किया जाना लगा| विज्ञान और तकनीकी की सहायता से बड़े-बड़े उद्योग स्थापित कर अधिक से अधिक सुख और सुविधा की वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा|

मानव के बौद्धिक विकास की अपार संभावनाओं को स्वीकार करते हुए यह व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं को विकसित करने के मुक्त अवसर प्रदान करने पर बल देता है| व्यक्तियों के आपसी प्रतियोगिता को यह स्वस्थ समाज के लिए उपयोगी मानता है| बैन्थम जैसे विचारकों द्वारा समर्थित उपयोगितावाद का सिद्धान्त का यह समर्थन करता है और 'व्यक्तियों को अधिकतम सुख' देने के उद्धेश्य से व्यापक औद्योगीकरण और विशाल बाज़ार को सृजित करने का

प्रयास करता है| विकास का यह मॉडल लोगों के न्यूनतम जीवन स्तर को सुनिश्चित करने, गरीबी उन्मूलन करने और पिछडे देशों में आर्थिक विकास लाने का दावा करता है| विकास के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह प्रोद्योगिकी का अधिकतम प्रयोग करने की इच्छा रखता है| प्रौद्योगिकी के माध्यम से राष्ट्रों और विश्व की भौगोलिक दूरियाँ को मिटाने और कच्चा माल सस्ते दाम पर खरीद कर उद्योगों तक जल्दी से पहुँचाने और निर्मित माल उद्योगों से जल्दी से निकाल प्रचुर मात्रा में बाज़ार में |ने का लक्ष्य साकार करता है| इसको सुविधजनक बनाने के लिए मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार की नीति अपनाने के लिए सरकार पर यह दबाव डालता है| ज्यादा मुनाफा कमाने के ध्येय को पूरा करने के लिए उपभोगतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना और ऐसे निर्मित कृत्रिम माँग को विपुल उत्पादन से पूरा करना पूँजीवादी व्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है| विपुल उत्पादन हेतु प्रकृति का विदोहन ऐसी व्यवस्था का अपरिहार्य हिस्सा बन जाता है| उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का जन्म भी पूँजीवाद का ही परिणाम है|

विकास का पूँजीवादी मॉडल राजनीतिक सत्ता से सैद्धान्तिक स्तर पर अर्थव्यवस्था में अहस्तक्षेप की नीति चाहता है| परन्तु व्यवहार में पूँजीपति राजनीतिक सत्ता से गहरे अन्तर-संबन्ध स्थपित करने के लिए प्रयासरत होतें हैं ताकि उनके अनुकूल नीतियाँ और नियम बन सके और उन्हें अनेक सुविधायें उपलब्ध हो सके|

आधुनिक पश्चिमी देशों के इतिहास के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि पूँजीवाद ने राज्य सत्ता को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए साधन सम्पन्न बनाया| राज्य सत्ता के समर्थन के लिए विलुप्त सामन्तों का स्थान पूँजीपतियों ने लिया| पूँजीपतियों का समर्थन और विज्ञान और तकनीकी की सहायता से राज्य ने सभी शक्तियों को अपने हाथ में केन्द्रीकृत कर लिया| राजनीतिक एकीकरण का दौर चला| पूँजीपतियों के समर्थन के बदले में राज्य ने निजी उद्योगों को सार्वजनिक संसाधनो से पूँजी दिलवाने का काम किया| विरोधियों की आवाज को सफलता पूर्वक दबाया गया और चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी सत्ता का वैधानिक बना लिया गया| राष्ट्र राज्यों का उद्भव हुआ और उग्र राष्ट्रवादी सोच और साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की अपरिहार्य आावश्कक्ताओं ने सैनिकवाद को भी बड़े पैमाने पर बढावा दिया| परिणाम स्वरूप विश्व को दो विनाशकारी विश्व युद्ध और उसके भयावह परिणामों का सामना करना पड़ा|

विकास का पूँजीवादी मॉडल की अनेक आलोचना की गई है| जिन आधारों पर इसकी आलोचना की जाती है उनमें से एक प्रमुख आलोचना यह है कि यथार्थ में साधनों पर कुछ ही व्यक्तियों का निजी नियन्त्रण होने और ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने का ध्येय रखने के कारण सम्पन्नता कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित हो जाती है और अधिकांश लोग इससे वंचित रहते हैं| 'कुछ की सम्पन्नता और अधिकांश को पीड़ा' की परिस्थिति के परिणामस्वरूप अन्याय, असमानता और असुरक्षा की भावना व्यापक हो जाती है| कुछ आलोचक का कहना है कि यह विकास और धन-सृजन का इसका दावा भ्रान्ति है| इनकी आर्थिक शक्ति के दबाव में सरकार ऐसे निर्णय लेती है जो सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्र हित के अनुकूल नही होते| ऐसी स्थिति में जिन उद्योगों, संस्थाओं और नियम-कानूनों का विकास होता है

वह केवल पूँजीवादी वर्ग का ही हित साधक बन जाता है| जिनके पास पूँजी की शक्ति है वे इसका दुरूपयोग कर अन्य वर्गों, समाज एवं राष्ट्रों के शोषण करते हैं| इस तरह आम व्यक्ति और राष्ट्र की वास्तविक स्वतन्त्रता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडता है| उपभोगतावादी संस्कृति को बढावा देने और कृत्रिम माँग का सृजन कर प्रकृति का अनावश्यक दोहन करने में यह तनिक भी संकोच नही करता| बेरोजगार, अल्परोजगार, शोषण और वर्ग-संघर्ष भी पूँजीवाद से जुडी समस्यायें हैं| धन-सृजन जैसे अल्पकालिक फायदे आम जन से जुडी हुई क्रमशः बढ़ते संकटों में विलुप्त हो जाते हैं|

11.5 आधुनिक सभ्यता की गाँधीजी द्वारा आलोचना

गाँधीजी पश्चिमी सभ्यता के कटु आलोचक थे| उन्होने आधुनिक सभ्यता के चुंगल मे फसे ब्रिटिश शासन की उपनिवेशवादी-शोषणात्मक नीतियों का कटु पक्ष स्वयं अनुभव किया और माना कि भारत में ब्रिटिश शासन शैतान का शासन बन चुका है और इसे तत्काल समाप्त करना अपरिहार्य बन गया है| अपनी प्रसिद्व पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के नैतिक आधारों पर सन्देह व्यक्त किया| इसमें उन्होंने आधुनिक सभ्यता की उपभोगतावादी प्रवृत्तियों की घोर आलोचना करते हुए कहा कि यह अनैतिक और हिंसावादी है| हिन्द स्वराज आधुनकता, औद्योगीकरण और संसदीय शासन प्रणाली को मानव हित के अनुकूल नही मानते| गाँधीजी ने यह पुस्तक 1909 में लिखी| हिन्द स्वराज या इंडियन होम रूल गाँधी जी का राजनीतिक वसीयतनामा था जिसके मूलभूत विचारों और मान्यताओं को उन्होने पूरे जीवन में कभी नही बदला| हिन्द स्वराज विकास की समस्या को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करके देखता है| यह पश्चिम में प्रचलित आधुनिक समाज की आलोचनात्मक परीक्षण करके न केवल उसके वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोगों पर वार करता है अपितु उसके राजनीतिक, सामाजिक, आार्थिक और शैक्षणिक व्यवस्था पर भी प्रहार करता है| वकीलों, चिकित्सकों और तकनीकशयों की आलोचना करते हुए इसमें रेल और आधुनिक मशीन-तन्त्र को भी अस्वीकार किया है| गाँधीजी ने आधुनिक समाज के राजनीतिक, आार्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को मानव के गरिमामयी और सम्मानजनक जीवन के लिए अवरोध मानकर इन्हे परित्याग करके शाश्वत नैतिक मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, भ्रातृत्व की भावना, इत्यादि को अपनाने पर बल दिया|

गाँधीजी ने आधुनिकता के मूल मे निहित तर्कवाद व विज्ञानवाद पर अत्यधिक महत्व की आलोचना की| उन्होने तर्कवाद की आलोचना की और कहा कि जब तर्कवाद स्वयं के सर्वशक्तिमान होने का दावा करता है तब यह घृणित दानव है| तर्कवाद को सर्वशक्तिमान मानकर उसको महिमामंडित कर भगवान मान कर पूजा करना अनुचित है| उन्होंने कहा कि वे तर्क के दमन की वकालत नही करते लेकिन इस पर स्वभाविक सीमा लगाने की अनुशंसा करते हैं| उनका मानना था कि मानव मस्तिष्क की कुछ सीमायें हैं जिसके कारण सम्पूर्ण सत्य या ईश्वर को मानव केवल तर्क शक्ति के आाधार पर सम्पूर्ण रूप से समझ नहीं सकता| अतः वे सत्य को जानने के लिए तर्क के साथ-साथ भक्ति और ईश्वर में आस्था को भी महत्वपूर्ण मानते हैं| सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पीछे गाँधीजी ने एक सुव्यवस्थित शाश्वत शक्ति का होना बताया

जिसे उन्होंने ईश्वर अथवा परम सत्य के रूप में पहचाना| इसलिए वे मानव जीवन में न ही इहलौकिक विषयों और तत्वों की प्रधानता को स्वीकार करते थे और न ही आध्यात्मिक और नैतिक विषयों को काल्पनिक और व्यर्थ मानकर मनुष्य जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानने के लिए तैयार थे| गाँधीजी के दर्शन में तार्किक ज्ञान, कर्म और आस्था तीनों मार्ग मानव कल्याण और मोक्ष के लिए महत्वपूर्ण है|

मानव कल्याण की जब गाँधी बात करते हैं तब वे मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप में स्वीकार करते हैं और केवल उसके भौतिक सुख-वृद्धि तक कल्याण की अवधारणा को सीमित नही करते हैं| नैतिकता-युक्त सादगीपूर्ण जीवन के पक्षधर गाँधी विलासितापूर्ण जीवन को अनेक कारणों से अनैतिक एवं सम्पूर्ण मानव कल्याण के लिए बाधा मानते थे| इन्हें गाँधी सत्य और सम्पूर्ण विश्व-कल्याण अथवा सर्वोदय उद्देश्य से असंगत मानते थे| इसलिए गाँधी उपयोगितावाद और उसके द्वारा समर्थित किए गए उपभोगतावाद के कटु आलोचक थे|

गाँधीजी का दर्शन आध्यात्मिकता से प्रभावित है| वे उन आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते थे जिन्हें विश्व के सभी प्रमुख धर्मों ने प्रतिपादित किया है| हिन्दू धर्म मे प्रतिपादित अर्थ और काम पुरूषार्थों को धर्मानुसार संयमित कर मोक्ष प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने की बात गाँधीजी किया करते थे| धर्म और मोक्ष उनके लिए आत्मानुशासन या स्वराज, परोपकारी सेवा और सर्वोदय के लक्ष्यों से घनिष्ट रूप में जुडे हुए हैं| गाँधीजी ने देखा कि आधुनिक सभ्यता द्वारा समर्थन किए गए उपयोगितावाद और उपभोगतावाद व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित अथवा स्वार्थी बनाते हैं| ये प्रवृत्तियाँ गाँधीजी के अनुसार न केवल स्वराज, परोपकारी सेवा और सर्वोदय को असम्भव बनाते हैं अपितु व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास को भी बाधित करते हैं|

गाँधीजी मानते थे कि सभी मनुष्य मूल रूप से अच्छे होते हैं| उनमें नैतिक उत्थान और अहिंसा को आत्मसात करने और निस्वार्थ भाव से कत्तव्य करने की क्षमता विद्यमान है| परन्तु गाँधीजी मानते थे कि आधुनिक सभ्यता की चकाचैंध रोशनी ने मानव को भ्रमित किया है| आाधुनिक सभ्यता की इस चकाचैंध रोशनी के कारण मानव नीति को भूलकर अनेक व्यसनों मे लिप्त हो जाता है और विभिन्न सामाजिक, आार्थिक और राजनीतिक बुराइयों को बढ़ावा देता है| पथभ्रष्ट मानव अहिंसा और न्याय का मार्ग छोडकर हिंसा और अन्याय के माध्यम से अपने स्वार्थ पूरा करने का प्रयास करेगा|

हिंद स्वराज में गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता मे लिप्त बुराइयों के कारण उसे असुरी कहा है| गाँधीजी के अनुसार आधुनिक सभ्यता ने इग्लैंड की सजीवता को निगल लिया है| लेकिन इग्लैंड, उनके मतानुसार, इसका परित्याग नहीं करना चाहता क्योंकि वह भौतिकवाद और उपभोगतावाद के चुँगल मे फँस चुका है जिसके कारण वह निरंतर शोषणात्मक व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाने के लिए तत्पर है| धन-संचयन उनके लिए पूजनीय कार्य और पैसा ऐसे लोगों का भगवान बन गया है| अधिकाधिक धन-संचयन के लोभ में वे अपने माल के लिए पूरे विश्व को एक बडे

बाजार में परिवर्तित करना चाहते थे| गाँधीजी की धारणा थी कि भारत को इंग्लैंड देश ने नही जीता वरन् इस पर आधुनिक सभ्यता ने विजय पाई है|

गाँधीजी ने रेल को आधुनिक सभयता का ही देन माना| आधुनिक सभयता द्वारा महत्व दिए गए विज्ञान और तकनीकी ने ही रेल का अविष्कार सम्भव बनाया| आधुनिक सभ्यता द्वारा फैलाये गये अधिकाधिक उत्पादित वस्तुओं की माँग और वितरण के द्वारा इसकी पूर्ति को साकार करने के उपक्रम के रूप में रेल को प्रयोग किया जाने लगा| रेल आर्थिक शोषण का यन्त्र और उसे संबल और सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रशासनिक अथवा सैन्य बल को संचालित करने का प्रभावी साधन भी बना| कच्चे माल को न्यूनतम मूल्य पर भारतीयों से खरीद कर ब्रिटेन तक पहुँचाने तथा वहाँ पर निर्मित उत्पादित वस्तुओं को उँचे दाम पर भारतीय बाजार में बेचने हेतु रेल का प्रयोग किया जाने लगा| शोषण के विरूद्ध उठने वाले आवाज को कुचलने के लिये सैन्य बल को आवश्कतानुसार इधर-उधर ले जाने के लिए रेल का प्रयोग किया गया| अतः यह शोषणात्मक शासन को फैलाने और उसे सुदृढ बनाने में मदद् करने वाला साधन कहा गया| अन्याय और हिंसा के विरूद्ध आवाज उठाने वाले गाँधीजी के लिये रेल का ऐसा प्रयोग निन्दनीय था| प्रकृति के साथ छेड-छाड करने का हर प्रयास गाँधीजी के लिए अस्वीकार्य था| रेल उनके अनुसार स्थान और समय से जुडे मनवीय कौशल की प्राकृतिक सीमाओं को तोड कर अवांछनीय प्रतिस्पर्धा को जन्म देने का काम करता है| बीमारियों को फैलाने और अकाल की परिस्थितियों को जन्म देने के लिए भी गाँधीजी ने रेल को दोषी ठहराया|

गाँधीजी के अनुसार जिस तरह रेल ने अंग्रेजो को भारत में अपना शासन फैलाने और उसे बनाए रखने में मदद की उसी प्रकार वकीलों और जजों ने भी भारत में अंग्रेजों के शासन को स्थायीत्व प्रदान करने का कार्य किया| वकीलों और जजों ने भारत में अंग्रेजों के बनाए कानून को स्वीकृत कर औचित्य प्रदान की है| गाँधीजी का यह भी मानना था कि वकील भी प्रयासरत् रहते हैं कि झगडा कभी भी समाप्त न हो| समाज में झगडा बढ़ाने में उनका निहित स्वार्थ होता है| इसलिए ये लोग संघर्ष-समाधान और शान्ति के लिए कोई सकारात्मक कार्य नही करते|

डॉक्टरों की भी गाँधीजी कटु आलाचना करते हैं| उनकी चीर-फाड पद्धतियाँ और दवाइयों में पशु-वसा और मादक पदार्थों का प्रयोग की गाँधीजी ने आलोचना की है| गाँधीजी ने कहा कि अप्रत्यक्ष रूप से डॉक्टर व्यक्तियों में भोग विलास की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं और आत्म-संयम के गुण को कमजोर करते हैं| नैतिक-आध्यात्मिक दृष्टि को प्रधानता देने वाली गाँधीजी की सोच ने उन्हें डॉक्टरों की उपभोगतावादी-भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढावा देने के अप्रत्यक्ष प्रयास की आलोचना करने के लिए विवश किया|

गाँधीजी आधुनिक शिक्षा की भी आलोचना करते हैं| गाँधीजी के लिए शिक्षा का विशेष अर्थ था| यह महज अक्षरों और आजीविका का प्रबन्ध करने का कौशल विकसित करने की कला नहीं है| यह विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का विकास करने वाली प्रक्रिया है जो उन्हें समाज और विश्व के प्रति अपने धर्म अथवा दायित्व निःस्वार्थ भावना से नियमित रूप से निर्वाह करने की सीख प्रदान करता है| अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था उपनिवेशवादी ब्रिटिश

शासन की आवश्यकता को पूरा करना था न कि भारतीयों का नैतिक और चैतरफा विकास करना| गाँधीजी के अनुसार यह शिक्षा न ही व्यक्ति को आदर्श-पुरूष बनने की ओर ले जाती है और न ही उसे अपनी मानवीय दायित्वों के निर्वाह मे सक्षम बनाती है|

गाँधीजी विज्ञान, तकनीकी और मशीन के विरूद्ध नही थे| वे विरोध करते थे ऐसे वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी प्रयोग और मशीनीकरण का जो मनुष्य का मानव बनने में बाधा उत्पन्न करता हो और उसके शोषण को बढ़ावा देता हो| गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता की अंधाधुन्ध मशीनीकरण की प्रवृत्तियों को केवल नैतिक आधार पर ही नहीं अपितु भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर पडने वाली विपरीत और घातक प्रभाव के आाधार पर भी आलोचना की और विरोध किया| ब्रिटेन की औद्योगीकरण और उपनिवेशवादी नीतियों ने भारत की कुटीर उद्योग को नष्ट कर दिया है| मशीनीकरण और आधुनिक पूँजी के आधार पर स्थापित मिलों व फैक्टरियों ने लोगों को गरीब बना दिया और उनका शोषण किया| स्वयं मिल के मालिकों ने अपार धन सम्पत्ति का संचयन कर भोग-विलास में लिप्त हो गए|उनकी धारणा थी कि भारतीय मिल मालिक भी उतने ही शोषण कर्ता होगें जितने कि अमेरिका या यूरोप के मालिक है|

ठीक ऐसे ही आधुनिक यूरोप की संसदीय शासन व्यवस्था को भी गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता का साधन माना| उनका कहना था कि ब्रिटिश पार्लियामेट (संसद) संसदों की जननी नहीं है वरन् एक बांझ स्त्री और वेश्या हैं जिसने कोई सकारात्मक योगदान नही दिया है| बिना बाहरी दबाव के ब्रिटिश संसद ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया| ईमानदार लोगों का ब्रिटिश संसद में चुनकर आना असम्भव है और जो चुने हुए सदस्य आते हैं वे जनता के बारे में नही, हमेशा अपने हितों के बारे में सोचते है| व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा दबाव मे कार्य करने वाले ऐसे सदस्य जन हित के कार्य स्वप्रेरणा और निष्ठा से नही करते हैं| आगामी चुनाव की चिन्ता भी उन्हें निश्चिन्त होकर सही कार्य करने नही देती| गाँधीजी ने इसे वेश्या के समान इसलिए कहा है क्योंकि यह मंत्रियों के नियत्रण में कार्य करती है जो समय-समय पर बदलते रहते हैं, यह जन हित के प्रति निष्ठावान नही है| यह दुनिया की बातूनी दुकान है जिसकी कार्य प्रणाली में बहुत अधिक धन व समय खर्च होता है| यह अपनी इच्छा लोगों पर थोपती है और इसके सदस्य दलगत नीति से ऊपर नहीं उठते और बिना विचार किए अपने दल को ही वोट देते है|

प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की गाँधीजी ने इस आधार पर भी आलोचना की यह शासन व्यवस्था बहुमत के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमे अल्पमत की अवाज को दबा दिया जाता है या अनसुनी कर दिया जाता है| गाँधीजी ने कहा कि बहुमत का निर्णय हर समय सही हो यह जरूरी नही है और प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की शासन व्यवस्था मे हमेशा बहुमत की निरकुंशता का खतरा बना रहता है| उन्होंने इस विचार का समर्थन नही किया कि संवैधानिक सत्ता द्वारा पारित कानून का आँखमूंद कर समर्थन किया जाए, चाहे वह हमारी आत्मा के विरूद्ध ही क्यों न हो| गाँधी जी का तर्क था कि अन्यायपूर्ण कानून, विशेष कर जब वह अन्तरात्मा के विरूद्ध हो तब उसका विरोध करना

व्यक्ति का कर्तव्य भी है| उनके द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह दर्शन उपर्युक्त भावना और सोच को समाहित करते हुए राजनीतिक स्तर पर आध्यात्मिक प्रगति, स्वराज और सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त करता है|

11.6 गाँधीजी के अनुसार सभ्यता का सही अर्थ

गाँधीजी के अनुसार सही अर्थ में सभ्यता के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं| सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है कि सभ्यता वास्तविकता अथवा सत्य की खोज के प्रति जिज्ञासु है, भौतिक जगत के बाहरी आवरण की चकाचौंध की अनुभूति के प्रति नही| उसकी प्राथमिकता आध्यात्म है, भौतिक और इहलौकिक विषय एवं वस्तु में रूचि तत्पश्चात की बात है| इसमें मनुष्य की क्रियाओं का प्राथमिक उद्देश्य और प्रयास आध्यात्म की ओर बढ़ने के लिए है न कि भौतिक और शारीरिक सुखों को प्राप्त करना|

द्वितीय सिद्धान्त यह है कि सभ्यता तपस्या और सादगी पर आधारित है| यह सिद्धान्त आध्यात्म और नैतिकता के सिद्धान्त से जुडा हुआ है| आध्यात्म और नैतिकता व्यक्ति की अन्तरात्मा की अवाज और उसकी सृजनात्मक शक्ति से जुड़ा हुआ है जिसके आधार पर सबको एक सूत्र में बन्धुत्व भावना से बान्धा जा सकता है| आध्यात्म और नैतिकता का व्यावहारिक रूप तपस्या और सादगी है| सच्चे अर्थ में सभ्यता एक प्रगतिशील और सोद्देश्य विकास है जो मानता है कि यह विश्व भौतिक और रासायनिक रूप से एकत्रीकृत वस्तु नही है अपितु किसी दिव्य आत्मा द्वारा सुनियोजित तरीके से निर्मित है जिसकी संस्कृति सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकारी सेवा, आत्म-पीडा, बन्धुत्व, सहिष्णुता, पारस्परिकता, आदि मूल्यों से परिलक्षित है| यह आत्म-संयम के द्वारा स्वयं की इन्द्रियों पर नियन्त्रण भी है और साथ-साथ सच्ची स्वतंत्रता की अनुभूति भी| इसे गाँधीजी ने स्वराज माना और ऐसे स्वराज से मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य, जिसे उन्होंने परम सत्य या ईश्वर की प्राप्ति के रूप में व्याख्या की, उसको प्राप्त करने की ओर अग्रसर होने की बात कही| गाँधीजी ने इन गुणों से युक्त सभ्यता को भौतिक सम्पत्ति और सुख-सुविधा के प्रति उदासीन बताया और अपना सब कुछ सर्वोदय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न्योछावर करने के लिए तत्पर बताया| ऐसी सभ्यता में व्यक्ति यह सब कुछ किसी बाहरी दबाव में आकर नही करता अपितु स्वयं का नैतिक और सामाजिक दायित्व समझ कर स्वेच्छा से निष्पादित करता है और ऐसा करते हुए वह आनंद की अनुभूति भी करता है|

सच्चे अर्थ में सभ्यता का तृतीय सिद्धान्त गाँधीजी ने आत्मा और शरीर की आवश्यकताओं का संश्लेषण और समन्वयन बताया| दूसरे शब्दों मे यह ईश्वर और इहलौकिक जगत की आवश्यकताओं का संश्लेषण और समन्वयन है| यह शरीर का परित्याग नही अपितु उसमे निहित कमियों को दूर करके सर्वोच्च लक्ष्य - ईश्वर की प्राप्ति - की बात करता है| इहलौकिक जगत को गाँधीजी ने अस्वीकार नही किया अपितु इसमे भी परम सत्य के अंश निहित होने की बात कही जिसके सहारे परम सत्य तक पहुँचने का प्रयास किया जा सकता है| इसलिए जिस तरह शरीर का परित्याग करके परम सत्य को प्राप्त करने का प्रयास अवांछनीय है उसी तरह भौतिक जगत को परित्याग करके उसे प्राप्त करने का प्रयास भी निरर्थक है| इसलिए गाँधीजी ने मन और शरीर को संयमित करते हुए इहलौकिक जगत की मिथ्याओं से खुद

को दूर रखकर मानव जीवन के सर्वोच्च सत्य की खोज के लिए समर्पित होने को कहा| गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सच्ची सभ्यता इसी सीख की नींव पर खड़ी है और मन तथा शरीर और आात्मा की आवश्यकताओं मे सुन्दर समायोजन हेतु आवश्यक परिस्थितियों को उपलब्ध कराती है|

11.7 गाँधीजी का आदर्श समाज - सर्वोदय

गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता पर आधारित पश्चिमी समाज की आलोचना करते हुए भारत को सावधन किया कि वह इस आधुनिक सभ्यता और उसकी संस्कृति को पूर्णतः त्याग दे| विकल्प के तौर पर उन्होंने जिस आदर्श व्यवस्था की रूप रेखा प्रस्तुत की उसे राम राज्य या सर्वोदय के नाम से जाना जाता है| सर्वोदय समाज जिस सिद्धान्त पर आधारित है वह भारतीय संस्कृति की मूल मान्यता 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना को अंगीकृत करता है| सर्वोदय दर्शन के अनुसार व्यक्ति का कल्याण समष्टि के कल्याण में ही निहित है| 'वसुधैव कुटुम्बकम' की सोच पर आधारित यह आदर्श सम्पूर्ण विश्व को एक विशाल परिवार के रूप में देखता है और इस विशाल परिवार की प्रत्येक सदस्य की सुख, समृद्धि, शान्ति और कल्याण की कामना करता है| यह स्वीकार करता है कि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है, वह समाज से अलग नहीं रह सकता है| व्यक्ति का क्ल्याण समाज के कल्याण से जुड़ा हुआ है| उच्च कोटि का चरित्र, सादगी और भ्रातृत्व भावना इस समाज की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं का अभिलक्षण है| यह समाज अहिंसा और सत्य पर आधारित है जिसमे किसी प्रकार का शोषण नहीं है और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को सर्वांगीण विकास करने के अवसर तथा साधन प्राप्त होते है|

रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' मे प्रतिपादित तीन सिद्धान्तों को गाँधीजी ने सर्वोदय समाज के मूल सिद्धान्त के रूप में स्वीकारा| ये हैं :-

(1) 'बके भले में अपना भला समाया हुआ है|' इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति समाज से भिन्न नही है और व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में कोई द्वन्द्व नहीं है, दोनों में सामंजस्य व समन्वय की भावना है| जब समाज का हित साकार होगा तब व्यक्ति का हित भी साकार होगा| इसलिए जब व्यक्ति समाज के हित के बारे में सोचेगा और कार्य करेगा तो उसका स्वयं का भला स्वाभाविक रूप से ही हो जायेगा|

(2) 'वकील और हज्जाम के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए|' सर्वोदय के इस दूसरे सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि श्रम चाहे किसी प्रकार का हो सभी का समान महत्व है| निष्कर्षात्मक रूप से इसका अर्थ यह है कि समाज में हर व्यक्ति की उपयोगिता है, हर व्यक्ति के कार्य का समान महत्व है, चाहे वह कार्य शारीरिक कार्य हो या बौद्धिक कार्य हो| बौद्धिक कार्य (ज्ञान) और शारीरिक कार्य (कर्म) के बीच किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं है| सर्वोदय समाज मे बौद्धिक कार्य को ऊँचा और शारीरिक कार्ये को नीचा न मानकर दोनों को समान महत्व देगा| इस सिद्धान्त में परस्पर सहयोग की भावना को भी महत्वपूर्ण माना गया है, प्रतिस्पर्धा की भावना को अवांछनीय और सामाजिक हित के विपरीत माना

है| परस्पर सहयोग से ही सम्पूर्ण समाज का हित पूरा हो सकता है और जब ऐसा होगा तभी व्यक्ति अपने स्तर पर लाभान्वित होंगे|

(3) 'सादगीपूर्ण और मेहनत करने वाले किसान का जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है|' सर्वोदय का यह तीसरा सिद्धान्त व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को कम करने का सीख देता है| यह शारीरिक श्रम को महत्व प्रदान करते हुए सभी को थोडा बहुत शारीरिक श्रम करने का उपदेश देता है| यह मानता है कि प्रकृति में सब व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ण करने की क्षमता है पर किसी व्यक्ति की स्वार्थ को वह पूरा नही कर सकती| इसलिए समाज के हर व्यक्ति की निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है और इस लिए व्यक्ति को अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना होगा और श्रम करना ही पड़ेगा| तभी समाज में सहयोग पर आधारित जीवन सरल और श्रम साध्य रह पायेगा| जीवन में सरलता, सादगी, नैतिक चरित्र, आत्म नियन्त्रिण, निष्काम भाव से अपने कत्तव्य की पालना करना और बन्धुत्व भावना ही सर्वोदय समाज के मुख्य आधार है|

सर्वोदय अवधारणा के विभिन्न आयाम हैं जिन्हे निम्नलिखित संदर्भ में व्यक्त किया जा सकता है :-

11.6.1 नैतिक आयाम

सर्वोदय समाज का एक महत्वपूर्ण आधार नैतिक जीवन है| नैतिकता व्यक्ति को भौतिक जगत में रहते हुए आध्यात्मिक लक्ष्यों की ओर अग्रसर होने में मदद् करती है| सर्वोदय समाज में व्यक्ति नैतिक नियमों की पालना करते हुए विश्व शान्ति, विश्व-बन्धुत्व, समानता, प्रजातन्त्र, सत्य, प्रेम, सर्व-कल्याण, आदि वांछित मूल्यों को सर्वत्र कायम करने में मदद् ता करता ही है, वह खुद के कल्याण में भी योगदान देता है| नैतिकता साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल देता है| नैतिक नियमों में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को प्राथमिक माना गया है| सर्वोदय धारणा का नैतिक आयाम मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास व आत्मिक उत्थान के प्रति व्यक्ति को सजग बनाता है| साध्य की शुद्धता गाँधीजी के अनुसार तभी सम्भव है जब साधनों की पवित्रता को बनाया रखा जाए| गाँधीजी ने साधनों की पवित्रता नैतिक नियम की अनुपालना से ही सम्भव बताया| नैतिकता की अवहेलना गाँधीजी के लिए सत्य या ईश्वर के विरूद्ध जाने के समान है| अतः आध्यात्मिक द्ष्टि से यह गाँधीजी के लिए स्वीकार्य नही है| व्यवहारिक तौर पर भी नैतिक नियमों की अनुपालना को गाँधीजी ने अपरिहार्य बताया| अनैतिक आचरण अनेक समस्याओं को मानते थे कि मनुष्य तभी सुखी हो सकते हैं, जब वे नैतिक कानून की पालना करें| गाँधीजी के साधन और साध्य सम्बन्धी उक्त विचार गीता का निष्काम कर्म के सिद्धान्त से भी प्रभावित है| गाँधीजी एक कर्म प्रधान व्यक्ति थे|उन्होंने फल की लालसा की अपेक्षा कर्तव्य के निर्वाह पर बल दिया है| कर्तव्यों का निष्पादन गाँधीजी के अनुसार नैतिकता के अभाव मे नही हो सकता| नैतिकता उनके लिए परम सत्य या ईश्वर की योजना अथवा नियम है ै यही सत्य भी है और सत्य प्राप्ति का मार्ग भी| अतः गाँधी के विचार में सत्य साधन भी और साध्य भी है|

11.6.2 धार्मिक आयाम

गाँधीजी के अनुसार सभी धर्म सच्चे हैं| सभी धर्म सच्चाई के मार्ग पर चलकर एक समान ईश्वर तक पहुँचने की बात करते हैं और सभी धर्म समान शश्वत मूल्यों को जीवन में अंगीकृत करने की बात करते हैं| धर्म का अर्थ किसी विशेष पूजा-पाठ और अर्चना की विधी नही है, पर जीवन का मूल तत्व पहचानकर तद्अनुरूप व्यवहार में उसे उतारना है| हर व्यक्ति को अपने धर्म द्वारा प्रतिपादित नियम और मूल्यों को अपनाते हुए धार्मिकता का परिचय देना चाहिए| सर्वधर्म समभाव गाँधी के सर्वोदय की धारणा में केन्द्रीय महत्व रखता है| इसलिए गाँधीजी के अनुसार व्यक्ति को सभी धर्म अथवा मतों का आदर और सहिष्णुता का भाव लिए आपसी सम्बन्धों का संचालन करना चाहिए| उनका मत था कि सभी व्यक्तियों में ईश्वर निवास करता है इसलिए सभी के साथ स्नेह रखना चाहिए और सभी के कल्याण की कामना करनी चाहिए| इसलिए गाँधीजी ने कहा "मेरा धर्म वह सब कुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि वह मुझे उपासना करना सिखाता है| मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें जिससे कि एक ईसाई अच्छा ईसाई बन सके तथा एक मुसलमान अच्छा मुसलमान| मेरा विश्वास है कि परमात्मा एक दिन हमसे ये पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है|" धर्म की गाँधीवादी धारणा में संकीर्ण सम्प्रदायवाद के लिये कोई स्थान नहीं है| गाँधीजी के लिए धर्म की साधना एक सार्वभौमिक आध्यात्मिक सत्ता में आस्था है जिसे ईश्वर या सर्वोच्च सत्य कहा जा सकता है तथा इस आस्था को प्रकट करने का तरीका मानवीय और शाश्वत मूल्यों को लौकिक जीवन मे अंगीकृत करना है| इस तरह आदर्श व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति स्वधर्म को पहचानने का प्रयास करता है और पहचाने हुए धर्म को नियमित रूप से पूर्ण निष्ठा से सम्पादित करता है|

11.6.3 आर्थिक आयाम

सर्वोदय समाज का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण यह है कि वह सभी लोगों का सामान्य रूप से अधिकाधिक कल्याण चाहता है| सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था सत्य और अहिंसा जैसे अनेक नैतिक मूल्यों पर आधारित वर्गविहीन, शोषण विहीन व विकेन्द्रित व्यवस्था है| यह मानवीय सहयोग व सद्भाव द्वारा संचालित होती है, न कि संघर्ष एवं प्रतिस्पर्धा द्वारा| जिसमें अस्तेय एवं अपरिग्रह व्रत का पालन किया जाता है| अतः स्थानीय उत्पादन, स्थानीय उपयोग और विवेक सम्मत वितरण इस मानवीय अर्थव्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त है|

सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था स्वदेशी की धारणा पर भी आधारित है| गाँधी ने स्वदेशी का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया| वे इसे मात्र अर्थशास्त्रीय धारणा के अंतर्गत सीमित नहीं रखना चाहते थे| व्यापक अर्थ में यह ऐसी धारणा है जिसकी परिधि में नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के अर्थ समाहित है| गाँधीजी के लिये स्वदेशी का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा उसके समीपस्थ वातावरण के प्रति निज धर्म का निर्वाह है| इस व्रत के अनुसार अपने देश के धर्म इसकी भाषा, राजनीतिक पद्धति और उपयोग की वस्तुओं को अंगीकार करना है|

गाँधीजी के मतानुसार स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है जिसके अनुसार उन सभी प्रकार के विदेशी सामानों का त्याग करना है जिनका उत्पादन अपने देश अथवा समीपस्थ प्रदेश में होता है तथा जिनके उपयोग के बिना हमारे समाज के कुछ अंग अपनी आजीविका खो देते हैं| यह विदेशी वस्तु के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते हुए यह भी प्रावधान करता है कि हम अपनी आवश्यकता की चीजों को विदेशों से मंगा सकते हैं, विदेशी पूंजी और प्रतिभा का प्रयोग कर सकते हैं, शर्त केवल यह है कि उससे अपने देश के नागरिकों की प्रगति अवरूद्ध न हो और उसका नियंत्रण भारत के द्वारा हो| सर्वोदयी समाज का स्वेदशी व्रत संकीर्णता, घृणा, स्वार्थ, प्रतिद्वंद्विता आदि दोषों से मुक्त है| यह अहिंसा और प्रेम का ही पर्याय है जिसकी पालना से एक ओर अपनी संकल्प शक्ति और बंधुत्व भावना बढ़ती है, दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था टिकाऊ बनी रहती है|

सर्वोदय समाज के अर्थव्यवस्था अंधाधुन्ध मशीनीकरण और बडे-बडे मशीनों पर आधारित व्यापक ओद्योगीकरण पर आधारित न होकर कुटीर उद्योग और अपरिहार्य तथा अत्यावश्यक मशीनीकरण पर आधारित है| यह पूँजोत्पादन अथवा बडे पैमाने पर उत्पादन पर आधारित न होकर अधिकाधिक जनता द्वारा उत्पादन पर आधारित है| उत्पादन में संलग्न लोग वर्ग संघर्ष से दूर हैं| यह व्यवस्था शाषण और हिंसा से मुक्त है और आपसी सहयोग से समाज के लिए उपयोगी उत्पादन आवश्यकता अनुसार करते हैं| यहाँ उत्पादन सेवा की दृष्टि से किया जाता है न कि लाभ कमाने की दृष्टि से और उत्पादन उपभोगतावादी संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए भी नहीं है| प्रकृति के संसाधनों का अनावश्यक दोहन न हो ऐसी चिन्ता के प्रति सर्वोदय समाज की अर्थव्यवस्था जागरूक है|

आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एक ओर लक्षण जो सर्वोदय समाज में निहित है, वह ट्रस्टीशिप है| गाँधीजी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शोषण का कारण मानते हैं| गाँधीजी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में ट्रस्टीशिप का एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त दिया है| वे व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व के बिना एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयास करते हैं| वे व्यक्तिगत सम्पत्ति को रखते हैं और उसकी बुराइयों को अहिंसा, सत्य और परोपकार के साधनों के माध्यम से दूर करना चाहते हैं| सर्वोदय समाज में सम्पत्ति को न्यास के रूप में समझा जाता है| गाँधीजी के अनुसार ट्रस्टीशिप का विचार उस चेतना पर आधारित है कि प्रत्येक सम्पत्तिवान व्यक्ति का यह समझना चाहिए कि उसके पास जो सम्पत्ति है वह उसने समाज से प्राप्त की है| सर्वोदय समाज में धनी एक न्यासी की तरह व्यवहार करेंगे| उसे अपने पास उपलब्ध सम्पत्ति से केवल उतना ही प्रयोग करना चाहिए जो उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी है, अन्य सभी सम्पत्ति उसे समाज के हित साकार करने में लगा देना चाहिए| गाँधीजी ने सम्पत्ति में केवल भौतिक सम्पत्ति ही नहीं बल्कि अ-भौतिक सम्पत्ति जैसे बौद्धिक क्षमता भी शामिल की है| ट्रस्टीशिप को अपनाते हुए सर्वोदय समाज में सम्पत्तिवान व्यक्ति भी स्वैच्छा से सरल और त्यागमय जीवन व्यापन करते हैं| ट्रस्टी के रूप में वे अपरिग्रह और समन्वय भावना अंगीकृत करते हैं| इस तरह सर्वोदय समाज अमीरों और गरीबों की बीच विषमता से मुक्त है|

11.6.4 राजनीतिक आयाम

गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित करता है| रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है| पर गाँधीजी ऐसे आदर्श राजनीतिक व्यवस्था को साकार करने की कठिनाइयों से अवगत थे| वैकल्पिक तौर पर उन्होंने एक ऐसी सर्वोदयी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया जो राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण, सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत, न्याय, समानता और भ्रातत्व के भाव पर आधारित है और जो आदर्श स्थिति की ओर बढने के लिए सदैव प्रयासरत है|गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधर पर संचालित करता है| रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है| पर गाँधीजी ऐसे आदर्श राजनीतिक व्यवस्था को साकार करने की कठिनाइयों से अवगत थे| वैकल्पिक तौर पर उन्होंने एक ऐसी सर्वोदयी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया जो राजनीतिक आध्यात्मिकीकरण, सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत, न्याय, समानता और भ्रातत्व के भाव पर आधारित है और जो आदर्श स्थिति की ओर बढने के लिए सदैव प्रयासरत है|गाँधीजी की आदर्श राजनीतिक व्यवस्था एक राज्यविहीन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के जीवन को नैतिक मूल्यों के आधार पर संचालित करता है| रामराज्य के नाम से जानने वाले इस राज्य में व्यक्ति पर नियन्त्रण करने वाली राज्य अथवा सरकार की कोई बाहरी सत्ता नहीं है|

गाँधीजी के सर्वोदयी समाज में राजनीति मैकियावलीवाद अथवा कपट, अवसरवाद, निजी स्वार्थ अथवा भ्रष्टता, शोषण और हिंसा से मुक्त है| इसमें यह सोच सर्वत्र विद्यमान है कि अच्छे परिणामों की प्राप्ति के लिए अच्छे व नैतिक साधनों का प्रयोग अपरिहार्य है और इस रूप में साधन व साध्य अभिन्न हैं| धर्म विहीन राजनीति पाप है और आत्मा का हनन करती है| किसी भी प्रकार की राजनीतिक आवश्यकता आापातकाल के तर्क पर अनैतिक साधनों से पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके दूरगामी परिणाम भयावह होते हैं| राजनीति में अतः धर्म को प्रविष्ट कराना आवश्यक है| पर धर्म का अर्थ 'मत' या 'धर्म विशेष' की मान्यता अथवा कोई विशेष पूजा-पाठ अथवा अर्चना की विधि नहीं है अपितु सभी धर्मों द्वारा मान्य शाश्वत मूल्यों अथवा उनका सार है| धर्म सत्य तथा अंहिसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है| इसलिए सर्वोदयी समाज में सहभागिता धार्मिक चेतना तथा धार्मिक प्रयोजन से परिलिक्षित है| सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता इसके आवश्यक गुण हैं|

गाँधीजी ने व्यैक्तिक जीवन को नैतिक मूल्यों से अनुप्रेरित और अनुशासित करने की जरूरत पर बल दिया| ऐसा स्व-शासन ही उनके सपनों का स्वराज है| ऐसे स्वराज में व्यक्ति के वृहत स्वरूप जैसे समूह, समुदाय, समाज और राष्ट्र क्रमशः एक दूसरे से घनिष्ठ और सकारात्मक सम्बन्ध रखते हैं| इस सहअस्तित्व में सभी इकाइयाँ एक दूसरे के हित साधक हैं और विश्व शान्ति और कल्याण के लिए समर्पित हैं|

गाँधीजी की मान्यता थी कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए| कर्तव्यों का इमानदारी से निर्वाह न केवल व्यवस्था में न्यान, समानता, स्वतंत्रता, इत्यादि मूल्यों को प्रतिस्थापित करने में सहायक होंगे अपितु अधिकारों को भी सुनिश्चित करेंगे| गाँधीजी का समस्त जीवन, विशेषतः उनका स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, लोकतान्त्रिक मूल्यों के लिए संघर्ष और समर्थन के लिए समर्पित रहा| आजाद भारत के लिए गाँधीजी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे| उन्होंने लोकतन्त्र को लोकप्रिय मूल्यों जैसे न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, शान्ति के अनुकूल माना| उनके अनुसार लोकतन्त्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्रता पूर्वक समानता से अपने विचारों और अपनी इच्छाओं को व्यक्त और प्राप्त कर सकते हैं| तदापि उन्होंने ऐसी व्यवस्था में भी अमर्यादित व्यक्तिवादी आकांक्षाओं को लोकतान्त्रिक पद्धतियों और साधनों से प्राप्त करने का समर्थन नही किया| इसी आधार पर उन्होंने पाश्चात्य लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की कटु आलोचना की|

गाँधीजी सत्ता अधिग्रहण अथवा शक्ति स्वार्थपरता की राजनीति के विरूद्ध थे| यों तो वे आदर्श के तौर पर जन प्रतिनिधियों की शासन व्यवस्था के स्थान पर प्रत्यक्ष प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का समर्थन करते थे| परन्तु भारत में विद्यमान परिस्थितियों की दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए ऐसे सर्वाधिक रूप से विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को स्थापित करना चाहते थे जो जन सहभागिता को ज्यादा से ज्यादा संभव बनाते हों| उनके सपनों का भारत ग्राम स्वराज के सिद्धान्तों पर आाधारित है| प्रतिनिध्यात्मक शासन जहाँ और जितना भी अपरिहार्य हो वहाँ गाँधीजी ने इस बात को याद रखना जरूरी समझा कि यह ब्रिटिश संसद जैसी संस्था न बन जाए जो प्रतिनिधियों के हाथों की कटपुतली बनकर जन हित और नैतिकता को विस्मृत कर शुद्र दलगत राजनीति पर आाधारित मिथ्यावादी और स्वार्थी व्यवस्था बन जाए| आदर्श लोकतंत्र न ही स्वयं की व्यवस्था एवं सत्ता की रक्षा के लिए हिंसा एवं दमन के साधनों का प्रयोग करता है और न ही बहुमत के शासन के उस सिद्धान्त का समर्थन जो विवेक बल की अपेक्षा संख्या-बल को महत्व देते हुए अल्पसंख्यकों की भावनाओं का दमन करके अपने मत और हितों का संरक्षण करता है| इसके अन्तर्गत सभी सबल व दुर्बल के हितों की रक्षा हो और विकास का समान सुअवसर मिलता रहे| राजनीति का संचालन सत्य व अंहिसा के आधार पर ही किया जाए, हिंसा का प्रयोग नहीं किया जाए|

सर्वोदयी समाज में गाँधीजी चाहते थे कि राजनीति राष्ट्र प्रेम की भावना से प्रेरित हो| देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति आदर भाव एवं अपनी अस्मिता और देश की रक्षा सभी नागरिकों का कर्तव्य है| परन्तु ऐसा राष्ट्र प्रेम अन्तर्राष्ट्रीय सदभाव और शान्तिमय सहअस्तित्व का विरोधी नही है| इसमें ऐसी संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है जो स्वयं अपने देश की अलावा अन्य देशों के कल्याण की भावना को समाहित नहीं करती हो या फिर अपने देश को अन्य सभी देशों से श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति रखता हो या अपने राष्ट्र के हितों की पूर्ति के लिए अन्य राष्ट्रों को क्षति पहुंचाने की लालसा रखता हो| गाँधीजी के मतानुसार राष्ट्र प्रेम अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना की पूर्व शर्त है और स्वदेश के प्रति प्रेम न केवल सभी साथी मनुष्यों के प्रति प्रेम है, अपितु यही अन्ततः सार्वभौम प्रेम के उच्चतम शिखर तक

पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है| अतः गाँधीजी चाहते थे कि सर्वोदयी समाज के नागरिक सम्पूर्ण विश्व को एक विशाल मानव परिवार मानकर सभी के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहें|

गाँधीजी मानते हैं कि राज्य उन बाधाओं का हटाने का काम भी करे जो व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में बाधक है| इस दृष्टि से आम नागरिकों को समाजकंटकों की हिंसा से सुरक्षा प्रदान करना शासन का महत्वपूर्ण दायित्व है| इसलिए न्यूनतम पुलिस का प्रबन्ध भी आवश्यक है| परन्तु इनका परम्परागत स्वरूप बदला हुआ होगा| पुलिस का संगठन अहिंसक स्वयं सेवकों के द्वारा होगा जो हिंसा और दमन विहीन प्रकृति के होंगे और स्वयं को जन सेवक समझेंगे| इनका मुख्य कार्य डकैतों और लुटेरों से जनता को सुरक्षा प्रदान करना होगा| जनता उन्हें स्वाभाविक रूप से सहयोग देगी|

ऐसी व्यवस्था में भी गाँधीजी ने संघर्षों के उत्पन्न होने की संभावना को नहीं नकारा| मतभेद और संघर्ष की स्थिति में इनके समाधान के लिए गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा और अनेक अन्य नैतिक मूल्यों पर आधारित सत्याग्रह का प्रयोग करने का उपदेश दिया| क्योंकि गाँधीजी मानते थे कि पवित्र साधन ही पवित्र उद्धेश्य को सुनिश्चित कर सकते हैं इसलिए उनकी दृष्टि में नैतिक मूल्यों की अवहेलना कर किसी भी अन्य विधि का प्रयोग न ही संघर्ष का प्रभावी समाधान कर सकता है और न ही दीर्घगामी शान्ति, सौहार्दपूर्ण समाज और प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है|

11.6.5 सामाजिक आयाम

महात्मा गाँधी के नेतृत्व का उल्लेखनीय पक्ष यह भी है कि उन्होंने सामाजिक सुधारों को राजनीतिक आन्दोलनों के कार्यक्रमों के साथ जोडा| उनके प्रभावशाली नेतृत्व का एक प्रमुख आाधर उनकी भारतीय समाज, परम्परा और संस्कृति की समझ, उसकी उन्नति के बारे में सकारात्मक सोच और भरसक प्रयास थी| उनका दृष्टिकोण संकीर्ण व क्षेत्रीय नहीं था, राष्ट्रीयता तक सीमित भी नहीं था वरन् वह विशद् और अन्तर्राष्ट्रीय था| प्रत्येक समस्या का गहनतम समझ विकसित करना, उनका स्थायी समाधान ढूँढना और समाज के उन्नयन के लिए दृढ संकलपित होकर निस्वार्थ भाव से कार्य करना गाँधीजी की प्रतिभा और महानता का महत्वपूर्ण पक्ष था|

गाँधीजी के अनुसार सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और इसलिए उन्होंने जब भी किसी समस्या के निदान की बात की और प्रयास किया तो वह समग्रता का भाव अपनाये हुआ था| वस्तुतः उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को एक-दूसरे का अनुपूरक मानकर सामाजिक सुधारों के कार्यों और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयत्नों को साथ-साथ चलाने की आवश्यकता पर बल दिया| गाँधीजी ने स्वीकारा कि भारतीय समाज अनेक बुराइयों से ग्रसित है| उनका कहना था कि यदि भारत को अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त करना हो और वह सम्मानपूर्ण स्थान लेना चाहता हो तो उसकी सामाजिक समस्याओं का समाधान तत्काल होना चाहिए|

गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत आदर्श सामाजिक व्यवस्था को एक ऐसी समुदायिक जीवन आधारित व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, परोपकार, आत्मनिर्भरता, परस्पर सम्मान की भावना, इत्यादि जैसे मूल्य व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन का अभिन्न अंग है| यह व्यवस्था न्याय, समता, स्वतंत्रता और परस्पर सहयोग पर आधारित है| यह शोषणमुक्त समाज है जिसमें धार्मिक सहिष्णुता और सौहार्द सर्वत्र विद्यमान है| इसमें वर्ण व्यवस्था है, परन्तु उसमें कालान्तर में आए विकृतियों जैसे अस्पृश्यता को दूर किया गया है| सभी वर्णों के बीच आपस में समानता और आपसी सहयोग का भाव निहित है| सामाजिक महत्व की दृष्टि से सभी कार्य को समान माना जाता हैं और किसी कार्य को या उसके करने वाले को छोटा नहीं समझा जाना चाहिए| एक निःशक्त व्यक्ति के कार्य का उतना ही महत्व है जितना कि एक सवर्ण व्यक्ति के कार्य का हो सकता है| अतः सामाजिक जीवन में सभी को समान अधिकार प्राप्त है और सभी आापसी सहयोग की भावना से समुदायिक जीवन व्यापन करते है|

गाँधीजी की आदर्श व्यवस्था में साम्प्रदायिक एकता को भी बहुत महत्वपूर्ण माना गया है| यह 'सर्वधर्म समभाव' के विचार एवं नीति और साम्प्रदायिक एकता व सद्भाव पर आधारित है| आदर्श व्यवस्था यह अपेक्षा करता है कि प्रत्येक समुदाय के लोग अपने सीमित तथा संकीर्ण हित को त्याग कर राष्ट्रीय और वैश्विक हित के बारे में सोचें एवं कार्य करें| धार्मिक सहिष्णुता को सौहार्दपूर्ण वातावरण इस व्यवस्था के अभिलक्षण हैं| धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का अधिकार सभी को प्राप्त हैं|

आदर्श व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति में अमूलचूल परिवर्तन है| इसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और नैतिक उन्नति के अवसर प्राप्त हैं| स्त्रियाँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाती हैं| यह नारी को व्यापक स्वतंत्रता प्रदान करके उनके सर्वांगीण विकास के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को तत्काल दूर करने के लिए प्रतिबद्ध है| इसमे पुरुष अपनी पत्नी से स्वंय के प्रति स्वामी-भाव की अपेक्षा न रखकर मित्र-भाव रखने की अपेक्षा करता है| पुरुष (पति) द्वारा अर्जित धन में स्त्री (पत्नी) का समान अधिकार है और परिवार में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी लालन-पालन किया जाता है और परिवार की सम्पत्ति में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी समान अधिकार माना जाता है| इन सब के लिए चरित्र निर्माण की नितांत आवश्यकता पर बल देते हुए आदर्श व्यवस्था मे एक नई शिक्षा व्यवस्था, जिसे ''नई तालीम'' अथवा ''बुनियादी शिक्षा'' की व्यवस्था की गई है|

11.8 सांराश

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गाँधीजी ने आधुनिक सभ्यता की कटु अलोचना करके इसे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और कल्याण के लिये अनुपयोगी माना| विश्व में फैले अनेक बुराइयों के लिए गाँधीजी ने इसे दोषी ठहराया| गाँधीजी के लिए मानव अस्तित्व की कुछ आध्यात्मिक प्राथमिकतायें थी जिन्हें मनुष्य कुछ नैतिक मूल्यों को आत्मसात करते हुए प्राप्त कर सकता है| गाँधीजी का मानना था कि आधुनिकता की उपभोगतावादी और संकीर्ण

व्यक्तिवादी सोच ने व्यक्ति को पथभ्रष्ट करके एक विकट परिस्थिति उत्पन्न की है| सर्वत्र नैतिक मूल्यों का क्षय और हिंसा का बढ़ता हुआ प्रयोग दिख रहा है जो मानव अस्तित्व के लिए घातक है| परन्तु मनुष्य को नैसर्गिक रूप से अच्छा मानते हुए गाँधीजी एक आशावादी सोच प्रस्तुत करते हैं जिसमे वे इस बात पर बल देते हैं कि व्यक्ति यदि स्वधर्म की पालना करे तो इस विकट परिस्थिति से स्वयं और विश्व को बचा सकता है| ऐसे युगधर्म की गाँधीजी की सोच किसी विशेष धर्म की या उसके पूजा-अर्चना की विधि की संकीर्णताओं से मुक्त है| धर्म सम्बन्धी समग्र दृष्टि अपनाते हुए गाँधीजी कुछ शाश्वत मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, अस्थेय, अपरिग्रह, इत्यादि को व्यवहारिक जीवन में अपनाने की बात करते हैं| इन्ही आधर पर गाँधीजी एक वैकल्पिक व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं जिसे विभिन्न नामों से जाना जाता है - राम राज्य, स्वराज्य और सर्वोदय| यह आदर्श न केवल वर्तमान की विकट परिस्थितियों और मनुष्य का भटकाव समझने में मदद् करता है अपितु एक अधिक सुन्दर, प्रगतिशील, शान्तिमय उज्ज्वल विश्व के सपने को साकार करने का मार्ग दिखता है|

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक सभ्यता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए|
2. गाँधीजी द्वारा आधुनिक सभ्यता की आलोचना की विवेचना करजिए|
3. मानव अस्तित्व सम्बन्धी गाँधीजी के विचार पर प्रकाश डालिए|
4. विकास का पूँजीवादी मॉडल पर प्रकाश डालिए|
5. गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सच्ची सभ्यता के गुणों की विवेचना कीजिए|
6. गाँधीजी द्वारा प्रस्तुत सर्वोदय समाज की विशेषताओं का वर्णन कीजिए|

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम. के., सत्य के साथ प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 2008
2. गाँधी, एम. के., हिन्द स्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990
3. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थाट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ.यू.पी., दिल्ली, 1973
4. धवन, गोपी नाथ, दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1990

5. भट्टाचार्य, बुद्धदेव, एवोल्यूशन ऑफ द पोलिटिकल फिलासफी ऑफ गाँधी, कलकत्ता बुक हाऊस, कलकत्ता, 1969

6. पटेल एम. एस., दी एजुकेशनल फिलॉसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन पब्लिषिंग हाउस्, अहमदाबाद,1958

7. चटर्जी, मारग्रेट, गाँधी एण्ड द चैलेंज ऑफ रिलिजियस डाइवर्सिटी, प्रोमिला - कम्पनी, नई दिल्ली, 2005

8. वेबर थोमस, गाँधी एज डिसीप्लिन एण्ड मेन्टर, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007